891.2

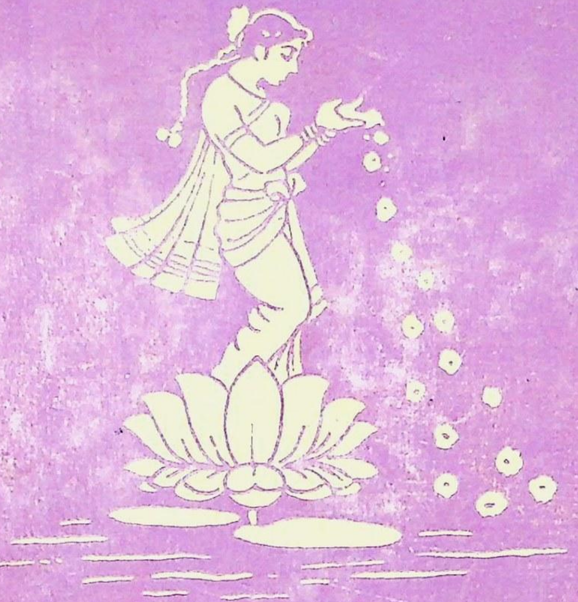

महाकवि भवभूति

891.202
र म २५३२

डॉ० गंगासागर राय

चौखम्बा प्रकाशन

महा भवभूति : डॉ॰ गंगासागर राय

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

७९

महाकवि भवभूति

डॉ० गंगा सागर राय

891'202
र म

चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१

STATE MUSEUM, LUCKNOW
LIBRARY
891'202
Acc. No. I अ
Book No. 2432.

ARY
202.

891.2

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन राष्ट्रभाषा ग्रन्थमाला

७९

महाकवि भवभूति

लेखक

डॉ॰ गंगा सागर राय

एम॰ ए॰, पी-एच॰ डी॰

सर्व भारतीय काशिराजन्यास

दुर्ग रामनगर, वाराणसी

2432

प्राप्ति तिथि 2.3.65

State Museum, Library, Lko.

चौखम्बा विद्याभवन · वाराणसी - १

प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, वि० संवत् २०२१

मूल्य : ५-००

© The Chowkhamba Vidya Bhawan,
Chowk, Varanasi-1
(India)
1965

Phone : 3076

891.202

THE

VIDYABHAWAN RASHTRABHASHA GRANTHAMALA

79

MAHĀKAVI BHAVABHŪTI

(A Comprehensive Criticism of the dramas of Bhavabhūti)

BY

Dr. Ganga Sagar Rai

M. A., Ph. D.

All India Kashiraj Trust
Fort-Ramnagar,
Varanasi.

THE

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI-1

1965

Also can be had of

THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

Publishers and Antiquarian Book-Sellers

POST BOX 8, VARANASI-1 (India) PHONE : 3145

श्रद्धेय गुरुवर्य

डॉ० सूर्यकान्त जी शास्त्री

को

सादर

प्राक्कथन

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

महाकवि भवभूति का स्थान संस्कृत-नाटककारों में बहुत ऊँचा है। उत्तर-रामचरित, मालतीमाधव और महावीरचरित ये तीनों नाटक संस्कृत-साहित्य की निधि हैं। इनमें भी उत्तररामचरित भाषा, भाव और नाटयकला इन तीनों दृष्टियों से अपना विशेष स्थान रखता है जिसके कारण भवभूति का यश सर्वत्र छाया हुआ है। भवभूति के विषय में विद्वानों ने पर्याप्त अध्ययन भी किया है। उनके जीवनवृत्त और काव्यकला दोनों के विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।

मुझे यह देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि डा० गंगा सागर राय ने भवभूति को अपने अध्ययन का विषय बनाकर उपलब्ध समस्त सामग्री पर सूक्ष्म विचार किया है। उनके इस अध्ययन का फल महाकवि भवभूति नामक इस पुस्तक में एकत्र संकलित है। इससे उनकी अनुसंधान-शक्ति और विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। भवभूति सम्बन्धी समस्त जानकारी को एकत्र प्राप्त करके सभी पाठक इससे लाभान्वित होंगे। भवभूति ने जिस पद्मपुर का उल्लेख किया है वह पार्वती, सिन्धु और मधुमती नदियों के क्षेत्र में होना चाहिये और इस दृष्टि से प्राचीन पद्मावती या पवाया की संभावना अधिक प्रतीत होती है। कालप्रियानाथ एवं कालपी की पहचान भी अधिक संभव है। वहाँ के शिव-मंदिर की यात्रा या मेले के समय भवभूति के नाटकों का अभिनय किया गया ऐसा स्वयं उनके उल्लेख से विदित होता है।

लेखक ने प्रत्येक नाटक की विशेषताओं पर पृथक्-पृथक् विचार किया है। इन नाटकों में जो सांस्कृतिक सामग्री है उस पर भी विचार किया है और इन तीनों को सम्मिलित कर भी कवि की समीक्षा की है।

कालिदास और भवभूति इन दोनों के तुलनात्मक अध्ययन का प्रारंभ श्री द्विजेन्द्रलाल राय ने किया था। इन दोनों कवियों की आलोचना के प्रति सभी संस्कृत-पाठकों का मन जाता है क्योंकि दोनों कवियों की कल्पना उस उच्च कोटि की है जहाँ अन्य नाटककार पीछे रह जाते हैं। लेखक डा० गंगा सागर राय ने इस ओर एक पृथक् अध्याय में ध्यान दिया है।

हमारी सम्मति में भवभूति की काव्यशक्ति और कल्पना का विस्तार दण्डकारण्य के वन-पर्वतों के समान है। किन्तु, फिर भी कालिदास कालिदास ही हैं और भारत में तो क्या विश्व में भी उनकी प्रतिभा के समकक्ष कोई कवि या नाटककार नहीं है। अतएव प्राचीन आचार्यों ने कालिदास को जो सरस्वती का विलास कहा वह यथार्थ ही था। फिर भी किसी कवि के लिये कालिदास की छाया तक पहुँच जाना बहुत बड़े श्रेय की बात है और निस्सन्देह भवभूति उसपद तक पहुँचते हैं। ऐसे श्रेष्ठ नाटककार और कवि के विषय में इस नूतन समीक्षात्मक अध्ययन का मैं स्वागत करता हूँ। मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि अभिनव लेखक के रूप में डा० गंगा सागर राय की मार्ग पर और प्रगति हो।

काशी विश्वविद्यालय
२६।१२।६४

वासुदेव शरण

वक्तव्य

महाकवि भवभूति संस्कृत नाटककारों में अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। भाव, भाषा, और शैली सभी दृष्टियों से इनके नाटक महत्त्वपूर्ण हैं। भारतीय मनीषा बहुत प्राचीन काल से इन नाटकों पर रीझती आयी है। उन्होंने संस्कृत नाट्य-साहित्य में अभिवृद्धि की और सुरभारती का अपनी लेखनी से शृंगार किया। उनके तीनों नाटकों——महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित—विशिष्ट नाट्यकृति हैं और उत्तररामचरित में तो उनकी शक्ति और शैली प्रौढ़ता की पराकाष्ठा को प्राप्त कर गयी है।

प्रस्तुत ग्रंथ छः प्रकरणों में विभक्त है। प्रथम प्रकरण में महाकवि के जीवनवृत्त, काल, स्थान, परिवार आदि के विषय में विमर्श किया गया है। द्वितीय से चतुर्थ प्रकरण तक क्रमशः महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित की विवेचना की गई है। इन विवेचनाओं में नाटक के हर पहलू पर विचार किया गया है और विना किसी पूर्वाग्रह के स्वतंत्र तथा तटस्थ समीक्षा की गई है। पाँचवें प्रकरण में महाकवि भवभूति की कृतियों का सामान्य समीक्षण किया गया है तथा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सामग्री का विस्तृत रूप में विवेचन किया गया है। षष्ठ प्रकरण में महाकवि कालिदास और महाकवि भवभूति का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस तुलना में तटस्थ दृष्टिकोण को अपनाया गया है।

महावीरचरित के पाठ के विषय में विचार प्रस्तुत करने की इच्छा रहने पर भी समयाभाव से नहीं कर सका। आशा है कभी पूरा कर सकूँगा।

ग्रंथ के अन्त में कई परिशिष्ट जोड़े गये हैं जिनमें भवभूति की पुनरुक्तियों, सुभाषित, भवभूति के विषय में प्रशंसात्मक पद्यों आदि को दिया गया है। आशा है इस रूप में पुस्तक अधिक उपयोगी होगी।

इस ग्रंथ के निर्माण में मैं श्रद्धेय गुरुवर्य पं० बलदेव उपाध्याय जी का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। महाकवि भवभूति के वे मर्मी पारखी तथा प्रख्यापक हैं। उनके मौखिक उपदेशों तथा अभीष्ट पुस्तकों के प्रदान से ग्रंथ समाप्त हुआ है। उनके प्रति मैं सादर प्रणति प्रस्तुत करता हूँ। भारतीविद्या के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० वासुदेव शरण जी अग्रवाल ने प्राक्कथन लिखकर ग्रंथ को महिमान्वित किया है। लेखक उनके प्रति नतमस्तक है। मेरे मित्र पं० रमाकान्त झा तथा श्री पारसनाथ रायजी, एम. ए., एल-एल. बी. साधुवाद के भाजन हैं।

काशी,
मकर संक्रान्ति, २०२१
१४-१-६५

—गंगा सागर राय

विषय-क्रम

पृष्ठ

प्रथम प्रकरण

जीवनवृत्त तथा परिचय ३

भवभूति : परिचय ४

श्रीकण्ठपदलाञ्छन ५

भवभूति का निवासस्थान ७

भवभूति तथा उम्वेक ११

मण्डन, सुरेश्वर, विश्वरूप तथा भवभूति १६

कालप्रियनाथ ... १७

भवभूति का समय ... २१

भवभूति का परिवार ... २३

भवभूति के गुरु २४

भवभूति का पाण्डित्य २५

भवभूति के उपास्यदेव ३१

भवभूति की प्रसिद्धि ३३

भवभूति की रचनायें ... ३५

द्वितीय प्रकरण

महावीरचरित ३९

कथानक ३९

नाटक का शीर्षक ४४

कथानक में परिवर्तन ... ४४

चरित्र-चित्रण ४६

महावीरचरित : समीक्षा ५२

तृतीय प्रकरण

मालतीमाधव ५८

कथानक ५८

नाटक का नामकरण ... ६६

पृष्ठ

कथावृत्त का आधार ६६
चरित्र-चित्रण ... ६७
मालतीमाधव : समीक्षण ७५

चतुर्थ प्रकरण

उत्तररामचरित ८३

कथानक ८३
प्रथमाङ्क का प्रयोजन ... ८५
कथावस्तु का आधार ... ९५
चरित्र-चित्रण ... ९६
उत्तररामचरित : समीक्षा ... १०६
उत्तररामचरित के दोष ... ११७

पञ्चम प्रकरण

भवभूति : समीक्षण १२०

भवभूति की शैली ... १२०
भवभूति की भाषा १२५
काव्य-प्रकर्ष ... १२७
प्रकृति-वर्णन १३४
करुणरस १३९
नाटच-कला १४३
भवभूति की दृष्टि में प्रेम १४७
मित्रता का आदर्श १५२
सन्तान के सम्बन्ध में धारणा १५३
वैवाहिक जीवन का आदर्श १५४
मधुरवाणी का महत्त्व १५४
हास्य-व्यंग्य १५५
कर्त्तव्यनिष्ठा १५६
भवभूति का नियतिवाद १५८
भवभूति : आशावादी कवि १५९
सामाजिक चित्रण १६०
भवभूति की नारी ... १६१

भवभूति के गुण ... १६५
भवभूति के दोष ... १६८

षष्ठ प्रकरण

भवभूति एवं कालिदास ... १७०
उत्तररामचरित और अभिज्ञानशाकुन्तल ... १७५
कालिदास और भवभूति में भावसाम्य ... १८५

परिशिष्ट

१. भवभूति की पुनरुक्तियाँ ... १८९
२. अन्य ग्रन्थों में भवभूति के उल्लेख तथा उद्धरण ... १९८
३. भवभूति के छन्द ... १९९
४. अलंकार-विधान ... २००
५. भवभूति द्वारा अन्य ग्रन्थों के उद्धरण ... २०१
६. भवभूति के नाटकों के सुभाषित ... २०४
७. भवभूति की प्रशस्तियाँ ... २०९

महाकवि भवभूति

प्रथम प्रकरण

जीवनवृत्त तथा परिचय

महाकवि भवभूति संस्कृत-नाटक-साहित्य के ऐसे जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं जिनकी दूरगामिनी ज्योति काल की अबाध बाधाओं को बाधित करती हुई चतुर्दिक् प्रसृत होती तथा आलोक फैलाती चली आ रही है। वे बने मार्ग पर चलने वाले नहीं हैं, अपितु उन थोड़े से नरवरों में हैं जो स्वयं मार्ग का निर्माण करते हैं। संस्कृतनाट्यसाहित्य के वे गतिप्रदाता हैं तथा साथ ही साथ उन्होंने उसे एक नये मार्ग की ओर उन्मुख किया है। कालिदास जैसे रससिद्ध कवि तथा नाटककार के सामने यदि कोई तुलनीय हो सकता है तो वह महाकवि भवभूति ही। यहाँ यह भी टाँक लेना चाहिये कि बहुत बातों में हमारे चरितनायक कालिदास को भी पीछे छोड़ देते हैं। यह बात समीक्षकों को बहुत प्राचीन काल में ही ज्ञात हो गयी थी और उनका निम्नलिखित कथन ऐतिहासिक दृष्टि से अयथार्थ होने पर भी तथ्य का उद्घाटक है—

नाटके भवभूतिर्वा वयं वा वयमेव वा।
उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते॥

यह स्वयं कालिदास के मुख से कहलवाया गया है।

संस्कृत नाटककारों ने करुणरस को अङ्गी नहीं बनाया था। रसराज श्रृंगार के सामने भला वे दूसरे रस को अङ्गी कैसे बनाते। फिर भी करुण को? किन्तु भवभूति ने न केवल मुख्य रस ही बनाया, अपितु स्पष्ट रूप से इसे अन्य रसों का मूलबिन्दु भी करार दिया। अन्य रस इसी के विवर्त मात्र हैं। यदि उनके इस कथन में किसी को विप्रतिपत्ति हो तो आकर उत्तररामचरित में परीक्षा कर ले। भवभूति के प्रखर पाण्डित्य ने उनकी काव्यकला में अनुपम श्रीवृद्धि की है।

संस्कृत साहित्य के लिये भवभूति गौरव हैं। प्रबल एवं उद्भट मीमांसक की भारती का यह कमनीय लास्य स्पृहा की वस्तु है। यदि समीक्षकों को नाटकीय संविधान में कहीं दोष दिखायी पड़ा है तो वहीं वे भवभूति की काव्यकला से अभिभूत हुये बिना भी नहीं रहे हैं। महामहोपाध्याय काणे के शब्दों में संस्कृत नाट्य तथा काव्यसाहित्य के नक्षत्रमण्डल में भवभूति सर्वाधिक देदीप्यमान नक्षत्रों में से एक हैं।[1]

---

१. उत्तररामचरित की प्रस्तावना पृ० १ (चतुर्थ संस्करण)।

भवभूति को सरस्वती पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है और इसका उन्हें अभिमान भी है :—

वश्यवाचः कवेर्वाक्यं सा च रामाश्रया कथा। —महावीरच० १।४

एवं—

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते॥ —उत्तररामच० १।४

भवभूति के नाटकों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भवभूति की यह गर्वोक्ति वस्तुतः यथार्थ है। परवर्ती सभी प्रमुख लेखक तथा नाटककार भवभूति की कला से प्रभावित हुये हैं। परवर्ती साहित्य में भवभूति की प्रभूत प्रशंसा उपलब्ध होती है। डा० एस० के० डे की सम्मति में भवभूति संस्कृत नाटककारों की प्रथम त्रयी में अंतिम होते हुए भी दूसरे नंबर पर (कालिदास के बाद) ही क्रम में आते हैं।[1] नाटक काव्य का चरम प्रकर्ष है—**काव्येषु नाटकं रम्यम्** तथा **नाटकान्तं कवित्वम्**। महाकवि भवभूति का काव्य के इस प्रकर्ष में बड़ा ही विशिष्ट स्थान है।

भवभूति : परिचय

भवभूति के तीनों नाटकों में कुछ न कुछ उनका वैयक्तिक परिचय प्राप्त होता है। सर्वाधिक विस्तृत विवरण उनके महावीरचरित नाटक में मिलता है--

अस्ति दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र केचित् तैत्तिरीयिणः काश्यपाश्चरणगुरवः पंक्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिन उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्र भवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्य आत्मसम्भवः श्रीकण्ठपदलाच्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जातूकर्णीपुत्रः कविर्मित्रधेयमस्माकमित्यत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु।[2]

इसका आशय यह है कि भवभूति के पूर्वज दक्षिणापथ में स्थित विदर्भ प्रदेश के पद्मपुर में निवास करते थे। वे काश्यप गोत्र तथा कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीयशाखा के अनुयायी एवं ब्रह्मवादी थे। वे पञ्चाग्नि का सेवन करने एवं सोमयज्ञ के करनेवाले थे। 'उदुम्बर' उनकी उपाधि थी। भवभूति के पितामह का नाम भट्ट गोपाल था। भवभूति के पिता का नाम नीलकण्ठ था। नीलकण्ठ बड़े

---

१. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर (क्लासिकल पीरिअड) भाग १

२. कुछ प्रतियों में 'तत्रभवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्य प्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम पाठ है और वंशावली इत्यादि का अभाव है। द्र० काणे, 'हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र' भाग २ पृ० ६७९।

यशस्वी थे। भवभूति की माता का नाम जातूकर्णी था। इनका स्वयं का नाम श्रीकण्ठपदलाच्छन भवभूति था। भवभूति व्याकरण, न्याय और मीमांसा (पदवाक्यप्रमाण) में निष्णात थे। इनके गुरु अद्वितीय विद्वान् ज्ञाननिधि थे।

यही परिचय किञ्चित्परिवर्तन के साथ मालतीमाधव नाटक में भी मिलता है। उसका पाठ इस प्रकार है :

अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र ब्राह्मणाः केचित्तैत्तिरीयाः पंक्तिपावनाः काश्यपाः पञ्चाग्नयः सोमपीथिनो धृतव्रता उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति।

ते श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय
भूरिश्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते।
इष्टाय पूर्ताय च कर्मणेऽर्थान्
दारानपत्याय तपोऽर्थमायुः॥ ५॥

तदामुष्यमाणस्य तत्रभवतो भट्टगोपालस्य पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्य पुत्रः श्रीकंठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम कविः।

उत्तररामचरित में यह वर्णन अपेक्षाकृत अत्यन्त संक्षिप्त है :

अस्ति खलु तत्र भवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः भवभूतिर्नाम जातूकर्णीपुत्रः।

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तन्ते।

इन वर्णनों में कोई विरोध नहीं है और महावीरचरित में जो वर्णन मिलता है वह व्यापक तथा प्रामाणिक विवरण है।

श्रीकण्ठपदलाञ्छन

भवभूति के नाम के विषय में वैमत्य है। भवभूति के सभी नाटकों में 'श्रीकण्ठ-पदलाञ्छन भवभूति' नाम मिलता है। प्रश्न यह है कि महाकवि का नाम 'भवभूति' है या श्रीकण्ठ? वास्तविक नाम कौन है तथा उपाधि कौन है? 'भवभूतिर्नाम' यह स्पष्ट बताता है कि कवि का नाम भवभूति है। परन्तु भवभूति के नाटकों के टीकाकार इस विषय में विमति प्रकट करते हैं। मालतीमाधव तथा उत्तररामचरित पर टीका करते हुए वीरराघव कहते हैं कि भवभूति का पैतृक नाम श्रीकण्ठ था परन्तु एक विशिष्ट पद्य की रचना के कारण उनका नाम भवभूति पड़ गया—

श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पितृकृतनामेदम्। ...भवभूतिर्नाम 'साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः' इतिश्लोकरचनासन्तुष्टेन राज्ञा भवभूतिरिति ख्यापितः।

इस विषय में उत्तररामचरित के टीकाकार घनश्याम की भी यही सम्मति है :

'अथ कालिदाससमानकालिकः भोजराजाश्रयः श्रीकण्ठनामा 'साम्ब्रा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः' इति श्लोकनिर्माणवेलागुणवशादानन्दभरितेन राज्ञैव भवभूतिरिति ख्यापितः कविः ।'

मालतीमाधव के प्रसिद्ध टीकाकार जगद्धर की सम्मति में भी वास्तविक नाम श्रीकण्ठ ही है :

'नाम्ना श्रीकण्ठः प्रसिद्धया भवभूतिरित्यर्थः ।'

इसी नाटक में दूसरे टीकाकार त्रिपुरारि भी इसी बात का समर्थन करते हैं—

'भवभूतिरिति व्यवहारे तस्यैव नामान्तरम् ।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकांश टीकाकारों की सम्मति में श्रीकण्ठ वास्तविक नाम है और भवभूति उपनाम । श्रीकण्ठनाम पैतृक है पर बाद में ये उपनाम से ही प्रसिद्ध हो गये और पैतृक नाम पीछे छूट गया । इस विषय में महामहोपाध्याय डा० पी. वी. काणे का कथन है कि भवभूति के पद्य सूक्तिग्रन्थों तथा साहित्यशास्त्र के ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में उद्धृत हैं परन्तु सर्वत्र वे भवभूति के नाम से ही उद्धृत किये गये हैं, श्रीकण्ठनाम कहीं नहीं है । इन नाटकों के टीकाकार भवभूति से कई सौ वर्ष पीछे हुए और बहुत संभव रूप में उनके साथ कोई निश्चित या प्राचीन परंपरा नहीं रखते थे तथा अपनी कल्पनाओं पर आश्रित रहे ।[१] 'भवभूतिर्नाम' में प्रसिद्धिज्ञापक 'नाम' अव्यय भी भवभूतिनाम के प्रचार को ही सूचित करता है ।[२] किन्तु इसके विपरीत टीकाकारों के मान्य नाम को अस्वीकार करना सरल नहीं । केवल इस आधार पर कि वे भवभूति से कई सौ वर्ष पीछे हुए तथा उनके सामने कोई सीधी परम्परा नहीं थी इसलिये उनको वास्तविक नाम का पता न था, उनके मत को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । भवभूति के पिता का नाम नीलकण्ठ भी श्रीकण्ठ नाम की संभावना को प्रकट करता है । डा० बेल्वल्कर टीकाकारों के मत का आश्रय लेते हैं और श्रीकण्ठ नाम का ही समर्थन करते हैं ।

किमप्यस्तु, वास्तविकता यह है कि संस्कृत-साहित्य में भवभूति नाम ही प्रसिद्ध रहा है और परवर्ती साहित्यशास्त्र के आचार्यों में इसी नाम से इनके

---

१. उत्तररामचरित की प्रस्तावना पृ० २

२. सदुक्तिकर्णामृत में भवभूति का निम्न पद्य मिलता है :

कां तपस्वी गतोऽवस्थामिति स्मेराविव स्तनौ ।
वन्दे गौरीघनाश्लेषभवभूतिसिताननौ ॥

आर्यासप्तशती के टीकाकार अनन्त पण्डित ने १·३९ की टीका में कहा है कि 'गिरिजायाः कुचौ वन्दे भवभूतिसिताननौ' लिखने के कारण भवभूति नाम पड़ा ।

नाटकों के पद्यों को उद्धृत किया है। कुछ लोगों की यह भी धारणा है कि भवभूति में लोकोत्तर काव्यशक्ति को देखकर लोगों ने श्री (वाग्देवी) नित्य इनके कण्ठ में निवास करती हैं यह मानकर इनका श्रीकण्ठनाम कल्पित किया।[1] परन्तु इस मत का कोई साधक प्रमाण उपलब्ध न होने से इसे प्रमाण कोटि में मानना ठीक नहीं होगा। श्रीकण्ठपदलाञ्छन शब्द का अर्थ बताते हुए टीकाकार घनश्याम कहते हैं कि—

'श्रीकण्ठ इति पदं नाम लाञ्छनं व्यवहारः यस्य श्रीकण्ठाख्य इत्यर्थः। श्रीकण्ठस्य शिवस्य पदे पादावेव लाञ्छनं बिरुदं यस्येति वार्थः। शिवपादाब्जनिरत इति यावत्।'

भवभूति शब्द की व्याख्या करते हुए घनश्याम कहते हैं कि—

'भवात् शिवात् भूतिः भस्म सम्पत् यस्य ईश्वरेणैव जातु द्विजरूपेण 'विभूतिर्दत्ता तदा प्रभृति भवभूतिरिति प्रसिद्धो जात इति च परावरविदो विदन्ति'।[2]

भवभूति का निवासस्थान

भवभूति का निवासस्थान भी सन्देह और वैमत्य का विषय है। मालतीमाधव तथा महावीरचरित नाटकों की प्रस्तावना में भवभूति अपने को दक्षिणापथान्तर्गत विदर्भ प्रदेश के पद्मपुर का निवासी बताते हैं—

अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्—मालती०

प्रसिद्ध टीकाकार जगद्धर तथा त्रिपुरारि पद्मपुर को पद्मावती का पर्याय मानते हैं। दक्षिणापथ का प्रचलित अर्थ है दक्षिण भारत। ग्वालियर के स्वर्गीय श्री एम० वी० लेले ने अपने 'मालती माधव सार वा विचार' नाम के ग्रंथ में यह सिद्ध किया कि पद्मावती (आधुनिक पवाया) भवभूति की जन्मभूमि थी।[4] यह नगर विदर्भ (आधुनिक दकन के बरार) में स्थित नहीं था। मालती-

---

१. लोकातिगकविशक्तिदर्शनाद्वाग्देवी नित्यकालमस्य कण्ठे वसतीति मत्वा तदानीं तनैः भवभूतेः श्रीकण्ठ इति विशेषणं परिकल्पितम्।

२. उत्तररामचरित, पृ० ४ (काणे, सम्पादित, संस्करण ४)

३. द्र० राजशेखर कृत 'काव्यमीमांसा' अध्याय १८ : माहिष्मत्या परतो दक्षिणापथः यत्र महाराष्ट्रमाहिषकाश्मकविदर्भकुन्तलक्रथकैशिक सूर्पारककाञ्चीकेरलकावरेमुरलवानवासकसिंहलचौडदण्डकपाण्ड्यपल्लवगाङ्गनासिक्यकौङ्कणकोल्लगिरिबिल्लारप्रभृतयो जनपदाः। विन्ध्यदक्षिणपादमहेन्द्रमलयमेकलपालमञ्जरसह्यश्रीपर्वतादयः पर्वताः।

४. द्र०, म० म० मिराशी, 'स्टडीज इन इण्डोलाजी,' भाग १ पृ० २२-२३

माधव नाटक में इस नगर के सूक्ष्म तथा व्यापक वर्णन से वे पद्मपुर को पद्मावती मानते हैं। वे कहते हैं कि ये नाटक कालप्रियानाथ के सम्मुख अभिनीत हुये जो प्रायेण उज्जयिनी के महाकाल माने जाते हैं, पर वस्तुतः यह उज्जयिनी के महाकाल का वर्णन न होकर कालपी के किसी शिव-मंदिर का उल्लेख है। क्योंकि पद्मावती कालपी के कालप्रियानाथ से दक्षिण में है अतः सूत्रधार द्वारा कहे दक्षिणापथ की संगति बैठ जाती है।

परन्तु श्री लेले के ये तर्क विश्वासार्ह प्रतीत नहीं होते। किसी कवि के लिये यह आवश्यक नहीं कि जहाँ जन्म लिया हो वहीं का सूक्ष्म तथा व्यापक वर्णन करे। जन्मभूमि को छोड़कर अन्यत्र बसना तथा वहाँ का वर्णन कोई अनहोनी बात नहीं। दूसरे, जैसा कि राजशेखर की काव्य मीमांसा के उद्धरण से स्पष्ट किया गया है। दक्षिणापथ से दक्षिणभारत का ही आशय है।

डा० आर० जी० भण्डारकरने मालती माधव नाटक पर अपनी टिप्पणी में लिखा कि 'भवभूति की जन्म-भूमि नागपुर प्रदेश में चन्द्रपुर या चांदा के समीप कहीं प्रतीत होती है। इए प्रदेश में आज भी तैत्तिरीय शाखा के महाराष्ट्र ब्राह्मण रहते हैं जो आपस्तम्व सूत्र का व्यवहार करते हैं। इसके दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व प्रदेश में इसी वेद तथा सूत्र के अनुयायी तैलङ्ग ब्राह्मण रहते हैं।[१] जेनरल कनिंघम ने इस प्रश्न पर विचार किया और बताया कि मालतीमाधव में वर्णित पद्मावती का दृश्य ग्वालियर राज्य के नरवार के अनुकूल है। उनका कहना है कि मालतीमाधव में वर्णित सिन्धु नदी स्पष्टतः सिन्ध का द्योतक है जिसके तट पर नखार स्थित है तथा पार्वती नदी सिन्ध से ५ मील दूर बहने वाली पारा है। मधुमती तथा लवणा नामक स्रोत भी इसकी पुष्टि करते हैं। मधुमती दक्षिण की मोहवार या मधुवार है तथा लवणा उत्तर की लुण या नुन है। भवभूति मधुमती तथा सिन्धु के संगम के समीप सुवर्णविन्दु तीर्थ का उल्लेख करते हैं। इसका ऐक्य समीपस्थ सुनेन्दु या सोनेन्दु से स्थापित किया जा सकता है।[२] परवर्ती उत्खनन-विभाग के प्रयासों ने यह सिद्ध किया है कि पद्मावती सिन्धु तथा पार्वती के संगम पर अवस्थित वर्तमान पयाया है जो ग्वालियर से ४० मील दक्षिण है।

डा० बेल्वल्कर इस विषय में तो निश्चित हैं कि भवभूति का जन्मस्थान पद्मपुर विदर्भ में था पर वे कहते हैं कि इस नाम का कोई स्थान उन्हें बरार

---

१. मालतीमाधव (१९०५) नोट्स, पृ० ८

२. कनिंघम, क्वाइन्स आफ मेडिवल इण्डिया, पृ० २२ (म० म० मिराशी द्वारा उद्धृत, 'स्टडीज इन इन्डोलाजी', भाग १ पृ० २२)

(विदर्भ) में नहीं मिला है अतः नवीन तथ्यों के न मिलने तक यह तो निश्चित नहीं कहा जा सकता कि पद्मपुर किस स्थान पर था पर इतना माना जा सकता है कि वह बरार में था; ग्वालियर राज्य में नखार के समीप नहीं।

महामहोपाध्याय डा० वासुदेव विष्णु मिराशी ने भवभूति के जन्मस्थान के विषय में विशेष अन्वेषण किया है और उनका निष्कर्ष है कि पद्मपुर विदर्भ में ही है। यह पद्मपुर भण्डारा जिले की आमगाँव जमीन्दारी में छोटा सा ग्राम है। यह ग्राम दक्षिण-पूर्व रेलवे की नागपुर-कलकत्ता लाइन पर आमगाँव रेलवे स्टेशन से लगभग ढाई मील दूर है। इस ग्राम का क्षेत्रफल १४१६ एकड़ है। इसके लिये उन्होंने प्रमाण यह दिया है कि दुर्ग जिले के पानाबार जमीन्दारी के मुख्य केन्द्र मोहल्ला में एक ओर खुदा हुआ एक ताम्रपत्र मिला है। यह वाकाटक राजाओं के दानपत्र को सूचित करने वाले तीन या चार पत्र-प्रकारों में से एक है। इस पर केवल दो सम्राटों का निर्देश है—एक तो सम्राट् उपाधिधारी तथा बहुत से बड़े वैदिक यज्ञों के करने वाले प्रवरसेन प्रथम का तथा दूसरे उसके पौत्र तथा उत्तराधिकारी का। द्वितीय राजा के नाम निर्देश के स्थान पर ही यह पत्र खण्डित हो गया है। यह पत्र पद्मपुर से लिखा गया है। डा० मिराशी का कहना है कि इस पत्र पर **'वासकात्' 'स्थानात्' विजयस्कन्धावारात्'** आदि पद पद्मपुर के साथ सम्बद्ध नहीं हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि इस दानपत्र का कर्ता वहाँ अस्थायी रूप से गया था। अपितु, उसकी वह राजधानी थी। डा० मिराशी यह भी कहते हैं कि वाकाटकों की राजधानी परिवर्तित होती रही है। उनकी प्राचीनतम राजधानी नन्दिवर्धन थी तथा प्रवरसेन द्वितीय राजधानी को प्रवरपुर में लाया। प्रवरसेन द्वितीय के सद्यः बाद भवदत्तवर्मा ने विदर्भ को आक्रान्तकर नन्दिवर्धन में अपनी राजधानी बनायी। ऐसी अवस्था में यह बहुत संभव है कि वाकाटकों ने अपनी राजधानी पद्मपुर में बनायी हो। यहीं भवभूति उत्पन्न हुये थे। किन्तु वाकाटकों का ८ वीं सदी में पद्मपुर पर आधिपत्य न था। अंतिम वाकाटक सम्राट् हरिषेण का साम्राज्य लगभग ५०० ई० में ही समाप्त हो गया था। अतः उचित संरक्षक के अभाव में भवभूति कन्नौज के प्रतापी शासक यशोवर्मा के संरक्षण में चले आये।

डा० मिराशी कहते हैं कि विदर्भ वर्तमान बरार तक ही सीमित न था अपितु इससे व्यापक था। वर्तमान बरार में पद्मपुर से मिलता उन्हें कोई स्थान नहीं मिला है। विदर्भ के चांदा तथा भण्डारा जिलों में छः ग्राम पद्मपुर, पद्मापुर

---

१. उत्तररामचरित (रामाज लेटर हिस्ट्री, हारवर्ड ओरियण्टल सीरिज) भूमिका पृ० ३२

या पदमपुर नाम के मिले हैं । भण्डारा आमगाँव जमीन्दारी के पद्मपुर से आपने भवभूति के पद्मपुर का साम्य माना है । यहाँ के प्राकृतिक दृश्य बड़े ही मनोरम हैं और हो सकता है इनसे भवभूति को अपने प्रकृतिवर्णनों में सहायता मिली हो । यहाँ बहुत ध्वंशावशेष तथा शिवमूर्ति उपलब्ध हुई है । इसके अतिरिक्त इस स्थान के समीपवर्ती स्थानों में कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के ब्राह्मण रहते थे । सम्प्रति पद्मपुर में कोई ब्राह्मण परिवार नहीं है पर पड़ोस के स्थानों में तैतिरीय शाखा के कई ब्राह्मण अब भी हैं ।

इन प्रमाणों के आधार पर डा० मिराशी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आमगाँव का पद्मपुर ही भवभूति का जन्म स्थान था ।[1]

परन्तु, डा० मिराशी के तर्क प्राथमिक रूप से यदि स्वीकार भी कर लिये जांय तो भी ये सन्देह से परे नहीं हैं । जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है विदर्भ के दो जिलों में पद्मपुर नामक छः ग्राम सम्प्रति मिलते हैं । यदि अन्य स्थानों की ऐतिहासिक स्थिति का सर्वेक्षण नहीं होता तो उनके महत्व या प्राचीन अस्तित्व के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता । इसके अतिरिक्त यह भी कोई आवश्यक नहीं कि कालप्रवाह का डेढ़ सहस्र वर्षों तक सामना करते हुये सभी नगर वर्तमान ही रहें ।

महामहोपाध्याय डॉ० पी० वी० काणे ने डॉ० मिराशी की स्थापना का समीक्षण किया है ।[2] आपका मन्तव्य है कि स्वयं डॉ० मिराशी ने विदर्भ में पद्मपुर नाम के ६ ग्रामों का उल्लेख किया है तथा यह भी स्वीकार किया है कि विदर्भ में अब तक कहीं उत्खनन नहीं हुआ है जिससे प्राचीन ध्वंशावशेषों का पता चले । ऐसी परिस्थिति में आमगाँव के पद्मपुर को भवभूति का जन्मस्थान मानना तर्कसम्मत नहीं प्रतीत होता । इसके अतिरिक्त पद्मपुर को वाकाटकनरेशों की राजधानी भी किसी अन्य प्रमाण से ज्ञात नहीं है जब कि उनकी नन्दिवर्धन तथा प्रवरपुर की राजधानी सुपरिचित है ।

ऐसी परिस्थितियों में पद्मपुर की पहचान अनिश्चित है। हाँ पद्मावती से उसका साम्य स्थापित करना ठीक नहीं क्योंकि मालतीमाधव में पद्मावती नगरी के सूक्ष्म वर्णन से पता चलता है कि विदर्भ की राजधानी कुण्डिन पुर से विदर्भराज के मंत्री का पुत्र माधव अपने पिताके द्वारा प्रत्यक्षतः तो अध्ययन के लिये पर

---

१. द्रष्टव्य, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, अङ्क ११ में उनका निबन्ध तथा 'स्टडीज इन इण्डोलाजी' ग्रंथ भाग १ में 'वर्थप्लेस आफ भवभूति' नामक निबन्ध पृ० २१-३४

२. उत्तररामचरित, भूमिका, पृष्ठ ७-९ (संस्करण १९६३)

वस्तुतः मालती को प्राप्त करने के लिये पद्मावती भेजा जाता है। मालती पद्मावती के मंत्री भूरिवसु की कन्या है इससे यह प्रतीत होता है कि पद्मावती नगरी भवभूति के समय में विदर्भ से बाहर थी। भवभूति ने दण्डकारण्य, गोदावरी तथा जनस्थान का भी बहुत ही व्यापक तथा सूक्ष्म वर्णन किया है। यह उनके दण्डकारण्य के प्रगाढ परिचय तथा उसके प्रति प्रेम का द्योतक है।

भवभूति तथा उम्बेक

प्रसिद्ध नाटककार भवभूति तथा प्रचण्ड मीमांसक उम्बेक की एकता का प्रश्न भी विद्वानों में मतवैभिन्य का विषय बना हुआ है। सर्वप्रथम स्वर्गीय शङ्कर पाण्डुरङ्ग पण्डित ने गउडवहो (गौडवध) की अपनी भूमिका में यह प्रश्न उठाया। भवभूति के सभी नाटकों में उनका परिचय उपलब्ध होता है। वहाँ वे नाटक भवभूति, जिनकी उपाधि श्रीकण्ठ है, कृत बताये गये हैं। श्रीपण्डित ने उल्लेख किया कि उन्हें इन्दौर के श्री एम० वी० लेले से मालती माधव का एक ५०० वर्ष प्राचीन हस्तलेख प्राप्त हुआ है जिसमें षष्ठ अङ्ककी समाप्ति में इसे उम्बेक कृत बताया गया है। वहाँ उम्बेक का विशेषण 'श्रीकुमारिल-स्वामिप्रसादप्राप्तवाग्वैभवः' दिया गया है। इसका आशय यह निकला कि भवभूति तथा उम्बेक एक ही व्यक्ति थे तथा वे प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल के शिष्य थे। इस नाटक के तृतीय अङ्क के अन्त में भी इसे कुमारिल के शिष्य द्वारा रचित बताया गया है। यहाँ उन प्रमाणों को उपन्यस्त किया जाता है जिनके आधार पर उम्बेक तथा भवभूति की एकता सिद्ध मानी जाती है:

(१) कुमारिल के श्लोवार्तिक पर उम्बेक की तात्पर्य टीका के आरम्भ में यह पद्य मिलता है :

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

यह पद्य भवभूतिके मालतीमाधव नाटक का है। भवभूति के पद्यों की उनके ग्रंथों में पुनरावृत्ति परिचित बात है। इस आधार पर यह सिद्ध होता है कि भवभूति तथा उम्बेक एक ही व्यक्ति थे।

(२) भवभूति तथा उम्बेक की एकता के विषय में दूसरा तर्क है कि चित्सुखाचार्य अपनी तत्त्वप्रदीपिका टीका में दोनों का ऐक्य मानते प्रतीत हो रहे हैं। तत्त्वप्रदीपिका वह अंश इस प्रकार है :

"तस्माच्छास्त्रं शब्दविज्ञानादसंनिकृष्टे बुद्धिरिति लक्षणमलक्षणम्। तथा आप्तवाक्यं शब्दप्रमाणमिति नैयायिकानामपि।

आप्तोदीरितवाक्येषु मालतीमाधवादिषु।
व्यभिचारान्न तद्युक्तमाप्तत्वास्यानिरुक्तितः॥

स्वकपोलकल्पितमालतीमाधवादिवाक्येषु प्रमाण्याभावादतिव्याप्तिः। नहि पुरा आप्त एव सन् नाटकनाटिकादिप्रबन्धविरचनमात्रेणानाप्ती भवति भवभूतिः। उक्तं चैतदुम्बेकेन–'यदाप्तोऽपि कस्मैचिदुपदिशति न त्वयाऽननुभूतार्थविषयं वाक्यं प्रयोक्तव्यम्। यथा अङ्गुल्यग्रे हस्तियूथ-शतमास्ते इति। तत्रार्थव्यभिचारः स्फुटः।"[1]

यहाँ चित्सुख्याचार्य ने शब्द-प्रमाण में अतिव्याप्ति दोष प्रदर्शित कर नैया-यिकों के आप्तप्रमाण में भी इस दोष को दर्शाया है। उनका कहना है कि शास्त्र-निर्माता होने से भवभूति आप्त हैं पर मालती, माधव आदि पात्रों के कपोलकल्पित वाक्य आप्तवचन नहीं माने जायेंगे और इन कपोलकल्पित नाट-कों की सृष्टि से वे अनाप्त भी नहीं होंगे। चित्सुखाचार्य कहते हैं कि यही मत उम्बेक का भी है। यहाँ भवभूति को उदाहृत करने के बाद उम्बेक को उद्धृत करने का यह आशय प्रतीत होता है कि दोनों एक ही व्यक्ति हैं, यद्यपि प्रत्यक्षतः उक्त नहीं है। चित्सुखी में दोनों की अभिन्नता मानने का यह अनुमान प्रत्यग्रूपभगवान् या प्रत्यक्स्वरूप भगवान्[2] नामक ग्रंथ कर्ता के चित्सुखाचार्य की तत्त्वप्रदीपिका के ऊपर 'नयनप्रसादिनी' नामक टीका के इस प्रकरण से पुष्ट होता है। 'नयनप्रसादिनी' के कर्ता ने भवभूति तथा उम्बेक का तादात्म्य स्थापित किया है। आप कहते हैं :

'भवभूतिरुम्बेकः। एतदेव ग्रंथान्तरस्थेन तद्वचनेन संमतयति उक्तं चैतदिति।'

उम्बेक के मीमांसक होनेकी बात परवर्ती ग्रन्थों से ज्ञात होती है। षड्दर्शन-समुच्चय के कर्ता हरिभद्रसूरि हैं जिसपर गुणरत्न नामक जैन विद्वान् ने टीका की है। उन्होंने निम्न श्लोक में उम्बेक को कारिका का वेत्ता कहा है:

---

१. निर्णयसागर संस्करण पृ०२६५ (१९१५ ई०)

२. प्रत्यग्रूप भगवान् अपने समय के एक प्रौढ़ विद्वान् थे। इनके गुरु का नाम प्रत्यक् प्रकाश था जो सन्यासी थे। नयनप्रसादिनी में 'महाविद्याविडम्बन' के लेखक वादीन्द्र का उल्लेख किया है वादीन्द्र का समय १२२५ ई० सन् के लगभग है। प्रत्यग्रूप रचित ग्रंथों को कापी १४९० ई० में की गई मिलती है अतः, इनका समय १३००–१४०० ई० के लगभग माना गया है। द्र०, पं० बलदेव उपाध्याय कृत, संस्कृतसुकविसमीक्षा' पृ० ३२०–३२१ तथा महाविद्या-विडम्बन (गायकवाड़ ओरियण्टल सीरिज) की भूमिका पृ० १४।

ओम्बेकः कारिकां वेत्ति तन्त्रं वेत्ति प्रभाकरः ।
वामनस्तूभयं वेत्ति न किञ्चिदपि रेवणः ॥

यहाँ कारिका से कुमारिल के श्लोकवार्तिक का आशय ही लेना उचित है क्योंकि वार्तिक के व्याख्याकार के रूप में उम्बेक टीकाकारों द्वारा मान्य हैं। श्रीहर्ष के 'खण्डनखण्डखाद्य' पर टीका लिखने वाले आनन्दपूर्ण ने श्लोक वार्तिक के श्लोकों को उद्धृत किया है तथा उस पर 'उवैक' की टीका का भी निर्देश किया है। बोधघनाचार्य ने भी अपनी पुस्तक 'तत्त्वशुद्धि' में उम्बेक का निर्देश किया है।[1]

(३) जैसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है मालतीमाधव नाटक की ५०० वर्ष प्राचीन एक हस्तप्रति में उसे कुमारिलशिष्य उम्बेक-कृत बताया गया है।

इन प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि नाटककार भवभूति तथा श्लोकवार्तिक के टीकाकार उम्बेक दोनों एक ही व्यक्ति हैं। परन्तु इस विषय पर अद्यावधि मतसाम्य नहीं हो सका है। श्री कुप्पुस्वामी शास्त्री का इस विषय में विचार यह था कि भवभूति तथा उम्बेक एक ही व्यक्ति थे।[2] इसी मत का समर्थन महामहोपाध्याय डा० पी० वी० काणे ने भी किया है।[3] पं० एस० आर० रामनाथ शास्त्री भी इसी मत को मानते हैं। पं० बलदेव जी उपाध्याय ने अपने संस्कृतसाहित्य के इतिहास तथा संस्कृतसुकवि समीक्षा में इसी मत का सयुक्तिक समर्थन किया है।

परन्तु इन मान्य विद्वानों के समर्थन के विपरीत कुछ विद्वानों ने इस मत का विरोध तथा खण्डन किया है। इनमें मुख्य स्वर्गीय डा० सी० कुन्हन राजा तथा महामहोपाध्याय डा० मिराशी हैं। डा० कुन्हन राजा ने 'ये नाम केचिदिह' इत्यादि पद्य के श्लोकवार्तिक की टीका के आरम्भ में अस्तित्व को अप्रामाणिक माना है। इसका कारण यह है कि एक तो इसके आरम्भ में होने से मंगल श्लोक के होने के लिये स्थान नहीं रहता जो टीका के आरम्भ में अवश्य रहा होगा और दूसरे, इस स्थान पर यह श्लोक नितान्त अनुपयुक्त है क्योंकि मीमांसा के ग्रंथ में इस श्लोक की आवश्यकता नहीं है। उनका कहना

---

१. द्र०, पं० बलदेव उपाध्याय, संस्कृतसुकविसमीक्षा, पृ० ३१९–२०।

२. प्रोसीडिंग्स ऑफ सेकेण्ड ओरियण्टल कान्फ्रेन्स, (१९२३) पृ० ४१०–१२

३. उत्तररामचरित (काणे-सम्पादित), भूमिका तथा हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, खण्ड ५ पृ० ११८८–११९२।

है कि भवभूति तथा उम्बेक की एकता की परम्परा को जानने वाले किसी व्यक्ति ने इस श्लोक को टीका के आरम्भ में हासिये पर लिख दिया होगा और बाद में किसी लिपिक ने इसे आरम्भ में कर दिया होगा।[1] डॉ० मिराशी ने इस तर्क का खण्डन किया है। उनका कहना है कि सभी ग्रन्थों के आरम्भ में मंगल-श्लोक नहीं होते। स्वयं मण्डन के भावनाविवेक में मंगलश्लोक का अभाव है। मिराशी ने इस श्लोक की टीका के आरम्भ में अनुपयुक्तता को भी नहीं माना है। हो सकता है भवभूति की ही भाँति उम्बेक को भी आलोचनाओं का शिकार होना पड़ा हो। तथापि, यह होने पर भी यह कोई आवश्यक नहीं कि कोई व्यक्ति दूसरे के श्लोक को उद्धृत न करे। स्वयं उम्बेक ने ही महाभारत के इस श्लोक को उद्धृत किया है :

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥
—उद्योगपर्व, १७८।४८

इसी प्रकार दण्डी के काव्यादर्श के आरम्भ में आने वाला—

चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम ।
मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

श्लोक उवट के सर्वानुक्रमणी भाष्य में मंगलश्लोक के रूप में प्रयुक्त है।[2]

किन्तु यह तर्क उचित प्रतीत नहीं होता। यद्यपि यह कोई अनहोनी बात नहीं है कि दूसरे के श्लोक को अन्य व्यक्ति रख दे तथापि यह तो एक प्रचलित बात के समर्थन में आती है। यह तो अन्य प्रमाणों से तथा प्राचीन टीकाकारों से ज्ञात हुआ कि भवभूति तथा उम्बेक एक ही व्यक्ति हैं। दूसरे के श्लोकों को उद्धृत करने का यह आशय तो नहीं हो सकता कि अपने श्लोकों को लोग नहीं रखते।

डॉ० कुन्हन राजा ने भवभूति के मीमांसक उम्बेक होने की धारणा का इस आधार पर खण्डन किया है कि भवभूति में मीमांसा के प्रति कोई विशेष आग्रह नहीं दिखाई पड़ता। भवभूति का विशेष आग्रह वेदान्त पर है।[3] डॉ० राजा का

---

१. द्र० तात्पर्य टीका की डा० राजा की प्रस्तावना, पृ० ३० तथा आगे।

२. दण्डी के 'सर्वशुक्ला सरस्वती' पर विज्जका का यह कटाक्ष प्रसिद्ध है :

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता ।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥

३. तात्पर्यटीका की भूमिका, पृ० २५, २६

यह तर्क भी सहज समाधेय है। इस बात का भवभूति अपनी प्रस्तावनाओं में निर्देश करते हैं कि उनका परिवार श्रोत्रिय ब्राह्मणों का है। श्रोत्रिय कर्मकाण्डी होते ही हैं और कर्मकाण्ड मीमांसा पर आधृत है। इस प्रसंग में वे अपने कुल में हुये वाजपेय यज्ञ तथा वेदाध्ययन का भी निर्देश करते हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वे मीमांसक नहीं थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपना विशेषण 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' दिया है। वाक्य का अर्थ मीमांसा ही किया गया है।

चित्सुखी के पूर्वनिर्दिष्ट वचन का भी भवभूति से सम्बद्ध अर्थ होने में विद्वानों ने विप्रत्तिपत्ति प्रदर्शित की है। 'अनाप्ती भवति भवभूतिः' उक्तं चैत-दुम्वेकेन' पर इन लोगों का कहना है कि यदि दोनों की एकता अभीष्ट होती तो चित्सुखी में 'उक्तं च तेनैव' ऐसा पद होता। यद्यपि 'नयनप्रसादिनी' टीका के कर्ता प्रत्यग्रूप भगवान् दोनों को एक ही मानते हैं पर संभवतः उनकी मान्यता तत्काल में प्रचलित इस धारणा पर ही आधृत है कि दोनों एक हैं।

डा० मिराशी ने दोनों की एकता को न मानते हुये यह तर्क दिया है कि उम्वेक तथा भवभूति का समय भिन्न है। उनका कहना है कि उम्वेक कुमारिल तथा मण्डन दोनों के बाद में हुये। उम्वेक का सर्वप्रथम निर्देश करने वाले बौद्ध दार्शनिक शान्तरक्षित के 'तत्त्व संग्रह' के टीकाकार कमलशिला हैं जिन्होंने उबेयक' (उम्वेक) के स्वतः प्रामाण्य के सिद्धान्तों का खण्डन किया हैं। कमलशिला का समय ८००–८२५ ई० माना गया है अतः उम्वेक ८०० ई० से प्राचीन नहीं हो सकते। उनके रचनाकाल को ७७५ ई० माना जा सकता है। भवभूति का समय आठवीं सदी का प्रारम्भिक अंश है अतः कालक्रम की दृष्टि से दोनों भिन्न-भिन्न समय में हुये।[1]

डा० मिराशी का यह कालभेद भी समाधेय है। उम्वेक का समय उन्होंने ७७५–८०० ई० माना है। यह संभव है कि उम्वेक ७५० ई० में भी रहे हों। उधर भवभूति का समय भी ८ वीं सदी का प्रथम चतुर्थांश माना गया है। उनके लिये भी यह संभव है कि वे ७५० में भी जीवित रहे हों। प्रथमतः नाटकों की रचना कर तथा उसमें प्रौढ़ि प्राप्त कर भवभूति मीमांसा की ओर झुके होंगे और वार्धक्य में मीमांसा के ग्रन्थों पर उन्होंने टीकाकी होगी।[2] उबेयक या उम्वेक तथा भवभूति नामों में पार्थक्य के कारण यह कल्पना भी सारवती प्रतीत नहीं होती कि दोनों भिन्न प्रदेशों के हैं। भवभूति के नाटकों के अध्ययन से भवभूति का द्रविड़ भाषाओं में नैपुण्य भी प्रतीत होता है।[3] उत्तररामचरित

---

१. 'स्टडीज इन इण्डोलाजी', भाग १ पृ० ४१
२. कागे, उत्तररामचरित की प्रस्तावना, पृ० २५
३. तत्रैव, पृ० २७

के टीकाकार घनश्याम ने तो स्पष्टतः उन्हें द्रविड़देशीय स्वीकार किया है।[1] सबसे बड़ी बात यह है कि भवभूति तथा उम्बेक की एकता परम्परया अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही है। १३००–१४०० ई० के प्रत्यग्रूप भगवान् ने इसे स्पष्टतः निर्दिष्ट किया है। अतः इस परम्परा की निस्सारता को प्रमाणित करने वाले किसी स्पष्ट प्रमाण के अभाव में उम्बेक तथा भवभूति को पृथक्-पृथक् व्यक्ति मानना समीचीन नहीं है।

मण्डन, सुरेश्वर, विश्वरूप तथा भवभूति

याज्ञवल्क्य स्मृति पर 'विश्वरूप की बालक्रीडा' नामक टीका है जिस पर विभावना नामक व्याख्या है। इसमें एक पद्य में विश्वरूप को प्रणाम किया गया जिनका भवभूति तथा सुरेश्वर भी नाम है।[2] विदारण्य के 'शङ्कर-दिग्विजय' में उम्बेक तथा मण्डन को एक बताया गया है। यही ग्रन्थ विश्वरूप तथा मण्डन का भी तादात्म्य सिद्ध करता है (७.११६; ८.३२, ६३) इन वर्णनों के आधार पर मण्डन, सुरेश्वर, विश्वरूप, भवभूति तथा उम्बेक एक ही व्यक्ति ज्ञात होते हैं। किसी समीक्षक ने तो बालक्रीडा तथा उत्तररामचरित के कथनों में साम्यता भीं ढूंढ़ निकाली है। उपाध्यायजी की भी सम्मति यही प्रतीत होती है कि जिस प्रतिभाशाली ने नाटको में अपना नाम भवभूति रखा, मीमांसा में उसी ने अपना नाम उम्बेक रखा तथा कालान्तर में आचार्य, शङ्कर द्वारा सन्यासी बनाये जाने पर उसी का नाम सुरेश्वर पड़ा।[3]

किन्तु भवभूति तथा उम्बेक की एकता मानने पर भी विद्वान् मण्डन तथा विश्वरूप को एक नहीं मानते। उम्वेक को भी इनसे वे भिन्न ही मानते हैं। महामहोपाध्याय काणे का कहना है कि उम्बेक कुमारिल के शिष्य थे तथा उन्होंने कुमारिल के श्लोकवार्तिक और मण्डन के भावनाविवेक पर टीकायें लिखीं। भावना विवेक के एक स्थल पर उन्होंने कई पाठों को बताया है। कोई व्यक्ति

---

१. उत्तररामचरित अङ्क २ श्लोक ७ के बाद वासन्ती की उक्ति 'कुमारलक्ष्मणस्यापि पुत्रः हन्तमातर्जीवामि' के 'मातर्जीवामि' पर टीका करते हुये घनश्याम कहते हैं—'द्रविडस्त्रीस्वभावोक्तिः। एवं वदता कविना निजं द्राविडत्वं प्रकटितमित्यूह्यम्।'

२. यत्प्रसादादयं लोको धर्ममार्गस्थितः सुखी।
भवभूतिसुरेशाख्यं विश्वरूपं प्रणम्य तम्॥—म. म. गणपति शास्त्री द्वारा बालक्रीडा की प्रस्तावना में उद्धृत।

३. संस्कृत-सुकवि-समीक्षा, पृ० ३२२

अपने ग्रन्थ की ही टीका में कई पाठों को उद्भावित नहीं कर सकता। अतः ये एक व्यक्ति नहीं।

वर्तमान स्थिति में हम इतना ही कह सकते हैं कि भवभूति तथा उम्वेक एक ही व्यक्ति थे पर सुरेश्वर और विश्वरूप के साथ भवभूति की एकता निश्चित नहीं है।

कालप्रियनाथ

इस सन्दर्भ में यह प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है कि कलप्रियनाथ कहाँ हैं जिनके सामने भवभूति के नाटकों का प्रदर्शन हुआ था। कालप्रिय या कालप्रियानाथ का उल्लेख भवभूति के तीनों नाटकों के आरम्भ में मिलता है :

(१) अत्र खलु भगवतः कालप्रियनाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयामि—

—उत्तररामचरित, पृ० ४ (काणे सम्पादित)

(२) संनिपतितश्च भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्राप्रसङ्गेन नानादिगन्तवास्तव्यो जनः।

—मालतीमाधव, पृ० ५ (निर्णय सागर प्रेस, सं० १९३६)

(३) भगवतः कालप्रियनाथस्य यात्रायामार्यमिश्राः समादिशन्ति।

—महावीरचरित, पृ० २ (चौखम्बा संस्करण)।

इस कालप्रियानाथ के स्थान के निर्णय में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं। प्रचलित रूप में कालप्रिय का आशय उज्जैनी के भगवान् शंकर के महाकाल मन्दिर से लिया जाता है।[२] किन्तु कुछ लोगों ने इसे कालपी के मन्दिर से सम्वद्ध किया है। कालप्रिय का उल्लेख राजशेखर की काव्यमीमांसा में भी है—

"तथा हि यो वामनस्वामिनः पूर्वः स ब्रह्मशिलायाः पश्चिमः यो गाधिपुरस्य दक्षिणः स कालप्रियस्योत्तर इति।"

(अध्याय १७)

काव्यमीमांसा के बड़ौदा संस्करण के सम्पादक की राय में कालप्रियनाथ का मन्दिर भी अवश्यमेव कन्नौज के ही अन्तर्गत था। उनका कहना है कि

---

१. द्र०, काणे, हि. आ. धर्म०, भाग ५, खण्ड २, पृ० ११९६;
उत्तर रामचरित, प्रस्तावना पृ० २४

२. कालप्रियनाथस्य महाकालास्पदस्य शंभोः—मालतीमाधव पर त्रिपुरारि की टीका।

भवभूति कन्नौज के राजा यशोवर्मा (८वीं सदी) के समकालीन थे तथा यशोवर्मा के सभा पण्डित थे। अतः भवभूति के लिये यह अस्वाभाविक नहीं कि वे कन्नौज के प्रधान देवता कालप्रियनाथ का उल्लेख करें। साथ ही टीकाकारों का यह मत भी कि वे पद्मपुर या उज्जैनी के महाकाल का निर्देश करते हैं सुतरां अयथार्थ है।[1]

प्रो० मिराशी कालप्रियनाथ को उज्जैन का महाकाल या पद्मपुर के देवता नहीं मानते। वे कहते हैं कि यदि नाटक पद्मपुर में ही प्रथम अभिनीत हुआ होता तो भवभूति को अपना विस्तृत परिचय देने की आवश्यकता न पड़ती क्योंकि वहाँ के लोगों को तो वे सुपरिचित ही थे। दूसरे, यह महाकाल का भी निर्देश नहीं है क्योंकि भवभूति कट्टर शैव न थे अपितु धर्म के विषय में उदार दृष्टि रखते थे तथा समस्त देवी देवताओं से ऊपर एक ब्रह्म को मानते थे। उनके तीनों नाटकें में से केवल मालतीमाधव में शिवकी स्तुति है वह भी हास्योत्पादक है। अतः वे कालप्रियनाथ को कालपी का सूर्य-मन्दिर ठहराते हैं[2]।

जहाँ तक मिराशी का यह कहना है कि यदि पद्मपुर में ये नाटक अभिनीति होते तो भवभूति को अपना विस्तृत परिचय देने की अपेक्षा नहीं थी क्योंकि वहाँ के लोगों को वे तथा उनके पूर्वज परिचित थे; यह उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। भवभूति के 'मालतीमाधव' में यह स्पष्ट लिखा है कि भगवान् काल प्रियनाथ की यात्रा में नाना दिग्दिगन्तों से यात्री आते थे—

---

१. द्र० काव्यमीमांसा बड़ोदा संस्करण (१९३४) में ग्रंथान्त में दी हुई टिप्पणियाँ, पृ० २४३-८

२. द्र० मिराशीकृत 'स्टडीज इन इण्डोलाजी' भाग १ पृ० ३४-४२

डा० डी० सी० सरकार भी कालप्रियानाथ को कालपी से ही सम्बद्ध करते हैं। १० वीं सदी के प्रथम चतुर्थांश में दक्न के राष्ट्रकूटवंशी इन्द्र तृतीय ने कन्नौज के प्रतिहारवंशी राजा पर चढ़ाई की। उसकी सेना कालपी में रुकी थी जहाँ उसने यमुना को पार किया। इसका निर्देश गोविन्द चतुर्थ के काम्बे फलक (प्लेट) में इस प्रकार मिलता है:

यन्माद्यद्द्विपदन्तघातविषमं कालप्रियप्राङ्गणं
तीर्णा यत्तुरगैरगाधयमुना सिन्धुप्रतिस्पर्धिनी।
येनेदं हि महोदयारिनगरं निर्मूलमुन्मूलितं
नाम्नाद्यापि कुशस्थलमिति ख्यातिं परां नीयते॥

डा० सरकार ने अभिलेखों के आधार पर भी कालपी और कालप्रिय का ऐक्य स्थापित किया है। द्रष्टव्य, सरकार 'स्टडीज इन द ज्याग्राफी आफ एन्स्येण्ट एण्ड मेडिवल इन्डिया,' पृ० २४१-२४५

सन्निपतितश्च भगवतः कालप्रियनाथस्य यात्राप्रसङ्गेन नाना दिगन्त-वास्तव्यो जनः । —मालतीमाधव पृ० ३ (चौख. सं०)

यदि उस यात्रा में दूर-दूर के यात्री आते थे तो फिर उन्हें भवभूति के कुल का ज्ञान कैसे होता ? और यदि भवभूति की प्रसिद्धि इतनी हो गयी थी कि नानादिग्देशान्तर के लोग उन्हें जानते थे तो फिर उन्हें अपना परिचय कहीं भी देने की आवश्यकता न थी चाहे वे नाटक उज्जैनी में अभिनीत हों या कालपी में । वस्तुतः उनकी अपनी शैली थी जो परिचय की पक्षपातिनी थी ।

प्रो० मिराशी का यह कहना भी संगत नहीं ठहरता कि भवभूति कट्टर शैव नहीं थे अतः यह आवश्यक नहीं कि कालप्रिय का मेला उज्जैनी का महाकाल मेला ही हो । यदि भवभूति केवल जनसम्मर्द में अपने नाटकों को अभिनीत कराना चाहते थे तो भी कदाचित् कालपी से अधिक जनसम्मर्द उज्जैनी के महाकाल मंदिर में ही जुटता रहा होगा । महाकाल मंदिर की प्रसिद्धि भवभूति से बहुत पहले स्थापित हो चुकी थी जैसा कि कालिदास (ई० पू० प्रथम सदी) के मेघदूत से ज्ञात होता है ।

कालप्रियनाथ की कालपी में अवस्थिति बताते हुये प्रमाण दिया गया है कि कृष्ण द्वारा शप्त साम्ब ने सूर्यदेव की मूर्तियों की तीन स्थानों पर प्रतिष्ठा की—

साम्बः सूर्यप्रतिष्ठां च कारयामास तत्त्ववित् ।
उदयाचले च संश्रित्य यमुनायाश्च दक्षिणे ॥
मध्ये कालप्रियं देवं मध्याह्ने स्थाप्य चोत्तमम् ।
मूलस्थानं ततः पश्चाद् अस्तमाना चले रविम् ।
स्थाप्य त्रिमूर्तिं साम्बस्तु प्रातर्मध्यापराह्णिकम् ॥

वराहपुराण, १७८।५५-५७

इससे पता चलता हैं कि यमुना के दक्षिण तीर पर साम्ब ने कालप्रिय का मन्दिर बनाया । काम्बे प्लेट में प्राप्त निम्न श्लोक से भी कालप्रिय के यमुना तीर पर होने का पता चलता है :

यन्माद्यद्द्विपदन्तघातविषमं कालप्रियप्राङ्गणं
तीर्णा यत्तुरगैरगाधयमुना सिन्धुप्रतिस्पर्धिनो ।
येनेदं हि महोदयारिनगरं निर्मूलमुन्मूलितं
नाम्नाऽद्यापि जनैः कुशस्थलमिति ख्यातिं परां नीयते ॥

इस पद्य में प्राप्त कालप्रिय का प्राङ्गण स्पष्ट निर्देश करता है कि यमुना

के तीर पर कालप्रिय प्राङ्गण था।[१] इसकी पुष्टि काव्य-मीमांसा के पूर्वोद्धृत अंश से भी हो जाती है।

इन प्रमाणों के साथ ही जब हम यह भी पाते हैं कि भवभूति के आश्रय-दाता कन्नौज के यशोवर्मा थे जिनके संरक्षण में कवि ने अपनी कीर्ति का विस्तार किया तो कालप्रियनाथ की कालपी से एकता मानने का प्रमाण महत्त्वपूर्ण लगने लगता है क्योंकि कालपी से कन्नौज केवल ७५ मील उत्तर ही है। सूर्य और चन्द्र काल के नियामक भी हैं अतः कालप्रियनाथ कहा जाना कोई असंभव नहीं। यदि कालपी में कालप्रियनाथ का प्रसिद्ध मेला लगता रहा होगा तो भवभूति के नाटकों का वहाँ प्रदर्शन कोई असंभव बात नहीं।

किन्तु यह पक्ष भी संभावनामात्र ही कहा जाता है, क्योंकि यह निरापद नहीं। इसके विरुद्ध कई आक्षेप बहुत ही महत्त्वपूर्ण किये जा सकते हैं। सबसे प्रधान आक्षेप यह है कि वराहपुराण के जिस वचन को आधार मानकर यह सिद्धान्त उपन्यस्त किया गया है डा० काणे ने उसके प्रामाण्य में ही सन्देह प्रकट किया है। वे कहते हैं कि स्वयं वराहपुराण में कहा गया है कि साम्ब ने भविष्य-पुराण में पुनरावृत्ति की तथा सूर्य की मूर्तियों को स्थापित किया (अ० १७७. ११)। यद्यपि इसका निश्चित प्रमाण नहीं है कि वराहपुराण कब बना, पर सम्बद्ध अंश निश्चितरूपेण ८ वीं और नवीं सदी के बाद के हैं, क्योंकि वे भविष्यपुराण के परिष्कृत संस्करण हैं[२]।

इसके अतिरिक्त सूर्य के किसी अन्य मन्दिर वा मूर्ति के साथ 'नाथ' शब्द सम्बद्ध नहीं मिलता। सूर्य की किसी यात्रा का भी अन्यत्र संकेत न मिलना कालपी के सूर्य मन्दिर से एकता मानने में बाधक है। कालप्रिया काली या गौरी हो सकती हैं और उनके नाथ भगवान् शिव हैं। इस प्रकार कालप्रिय का अर्थ

---

१. कालप्रियप्राङ्गण की कालपी से साम्यता सिद्ध करने के महामहो-पाध्याय मिराशी का ग्रंथ 'स्टडीज इन इण्डोलाजी' देखिये पृ० ३४-४२। इसके खण्डन के लिये देखिये म० म० डा० पी. वी. काणे उत्तररामचरित की प्रस्तावना।

2. There is no definite evidence to show when the Varāha-Purāṇa was composed but relevant passages about sun temples in it are late and certainly later tham the 8th and 9th century A. D. as they are admittedly a revised version of the Bhaviṣya.

उत्तररामचरित की प्रस्तावना, पृ० १६

भगवान् शङ्कर ठहरता है। भगवान् शङ्कर के नामों से काल शब्द भी बहुशः सम्बद्ध मिलता है। उदाहरणार्थ महाभारत अनुशासनपर्व में शिव के सहस्रनामों में 'कालपूजितः' (१७।९४) मिलता है। इसी प्रकार शान्तिपर्व (२८४।९४) में कालनाथ तथा द्रोणपर्व (२०२।१०४) में 'काल' में नाम मिलता है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालप्रिय या कालप्रियानाथ का आशय भगवान् शङ्कर से है। यह बहुत स्वाभाविक है महाकाल मंदिर में जहाँ सहस्रों नर-नारी ज्योतिर्लिङ्ग का दर्शन करने इकट्ठे होते रहे हैं भवभूति को अपने नाटकों के प्रदर्शन के लिये आकर्षित करता रहा हो।

वर्तमान परिस्थिति में हम केवल संभावना ही प्रकट कर सकते हैं और कालपी को 'कालप्रिय' मान सकते हैं। कालपी के पक्ष में दिये डा० मिराशी और सरकार के तर्क अपना विशेष महत्त्व रखते हैं।

भवभूति का समय

यह हर्ष का विषय है कि जहाँ भास के समय निर्धारण में विद्वान् लोग एक सहस्र वर्ष का अन्तर रखते हैं और कालिदास के विषय में ५ शताब्दी आगे-पीछे तक घूमते हैं वहाँ भवभूति का समय सीमित समय में निश्चित किया जा सकता है। कश्मीर के पण्डित कल्हण ने ११५८–५९ के लगभग राजतरङ्गिणी की रचना की। इसमें कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा का निर्देश है। कल्हण के अनुसार गौडवहो के कर्ता वाक्पतिराज तथा भवभूति इन्हीं यशोवर्मा के आश्रित थे :

कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्॥

—राजतरंगिणी ४।१४४

वाक्पतिराज का स्थान प्राकृत-साहित्य के कवियों में नितान्त उदात्त है। इनका गउडवहो (गौडवधः) प्राकृत का एक उत्कृष्ट काव्यग्रंथ है। इन्होंने भवभूति की प्रशंसा नीचे उद्धृत पद्य में की है जिससे पता चलता है कि भवभूति इनसे कुछ प्राचीन या कमसे कम समसामयिक थे :

भवभूइजलहिनिग्गय—कव्वामयरसकणा इव फुरन्ति।
जस्स विसेसा अज्जवि वियडेसु कहाणिवेसेसु॥

—गउडवहो, पद्य ७९९

संस्कृत मे इसका रूप इस प्रकार होगा—

भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु॥

इस पद्य में अज्जवि (अद्यापि) पद यह संकेत करता है कि भवभूति वाक्पतिराज से कुछ प्राचीनतर ही हैं।

कल्हण ने राजतरङ्गिणी में लिखा है कि भवभूति तथा वाक्पतिराज के आश्रयदाता यशोवर्मा को काश्मीर-नरेश ललितादित्य ने पराजित किया और अपनी विजयपताका गौडदेश (बंगाल) तक फैलायी। कनिंघम के अनुसार ललितादित्य के राज्यारोहण का समय ६९३ ई० है। शङ्कर पाण्डुरङ्ग पण्डित ललितादित्य के राज्य का समय ६९५–७३२ बताते हैं।[1] पर अन्य विद्वान् जो चीनदेशीय प्रमाणों का आश्रय लेते हैं ललितादित्य का समय ३३ वर्ष पीछे बताते हैं। उनके अनुसार ललितादित्य ने ७२४–७६० में शासन किया। गउडवहो (पद्य ८२७–८३१) एक सूर्यग्रहण का निर्देश करता है। डाक्टर जैकोबी ने ज्योतिषीय गणना के आधार पर यह सिद्ध किया है कि ऐसा सूर्यग्रहण कन्नौज में १४ अगस्त ७३३ ई० को दृश्य था। ललितादित्य ने यशोवर्मा को परास्त कर मारा नहीं, अपितु उसे अपना वशवर्ती बनाकर छोड़ दिया। डाक्टर भण्डारकर ने जैन प्रमाणों के आधार पर यह माना है कि यशोवर्मा ७५३ ई० में मरा।[2] चूँकि गउडवहो में इस सूर्यग्रहण का निर्देश है अतः इसका समय ७३३ ई० के कुछ बाद का होगा। वाक्पतिराज के वर्णन से यह स्पष्ट है कि उनके गौडवधः के रचना के समय भवभूति पर्याप्त ख्यात हो चुके थे और संभवतः कीर्तिशेष भी हो चुके थे। इसका अनुमान गौडवधः के 'अद्यापि' पद से होता है।

यहाँ यह भी निर्देश करना उचित है कि यदि कल्हण ने अपनी राजतरङ्गिणी में भवभूति तथा वाक्पतिराज को यशोवर्मा का आश्रित न बताया होता तो इसके लिये प्रमाण नहीं है कि दोनों समकालीन ही थे। यह भी संभव है कि कल्हण ने मात्र वाक्पतिराजकृत भवभूति की पूर्वोद्धृत प्रशंसा के आधार पर ही यह अनुमान कर लिया हो। तथापि, इतना तो कहा ही जा सकता है कि भवभूति वाक्पतिराज से अवस्था में बड़े थे और संभवतः अपने वार्धक्य में इन्होंने कान्यकुब्जेश्वर का आश्रय प्राप्त किया हो। भवभूति के ग्रन्थों में यशोवर्मा का कहीं संकेत तक नहीं मिलता जो इसी सन्देह को पुष्ट करता है।

भवभूति के समय का निश्चय कल्हण की राजतरंगिणी के अतिरिक्त अन्य साक्ष्यों से भी होता है। वे कालिदास से निश्चितरूपेण परवर्ती हैं जिनके ग्रन्थों से वे परिचित हैं।[3] वे बाण से भी परवर्ती हैं क्योंकि बाण उनसे अपरिचित हैं।

---

१. द्रष्टव्य, गउडवहो की उनकी प्रस्तावना, पृ० २०६।

२. डॉ० भण्डारकर की मालतीमाधव की प्रस्तावना पृ० १३–१७।

३. द्र०, टोडरमल संपादित, 'महावीरचरित' की भूमिका, पृ० ३९-४३; बेल्वल्कर, उत्तररामचरित, पृ० ४०; काणे, उत्तररामचरित की भूमिका, पृ० ३१।

वाक्पतिराज के अतिरिक्त भवभूति का सर्वप्रथम निर्देश करने वाले राजशेखर (८८०–९२०) हैं, जिन्होंने निम्न पद्य में भवभूति का निर्देश किया है :

बभूव वल्मीकभवः पुरा कवि-
स्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भतभूतिरेखया
स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः ॥

बालरामायण, १।१६

वामन ने अपने काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति में भवभूति के पद्यों को उद्धृत किया है। महावीरचरित (१।५४) के **'दोर्लालाञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभङ्गोद्यत'**—को काव्यालङ्कार (१।२।१२) में वामन ने गौडी रीति के उदाहरण के रूप में उपन्यस्त किया है। इसी प्रकार उन्होंने उत्तररामचरित के (१।३८) के **'इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिनयनयोः'** को ४।३।६ में रूपक के उदाहरण रूप में उद्धृत किया है । कल्हण के अनुसार वामन जयापीड के सभापण्डित थे—

मनोरथः शङ्खदत्तश्चटकः सन्धिमांस्तथा ।
बभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मंत्रिणः ॥

जयापीड का समय ७७९–८१३ ई० है । अतः वामन का समय भी आठवीं सदी का उत्तरार्ध और नवीं का प्रथम चतुर्थांश माना जा सकता है ।[१]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भवभूति बाण से पश्चाद्वर्ती तथा वामन और संभवतः वाक्पतिराज से भी पूर्ववर्ती हैं । बाण का समय ७वीं सदी का प्रथमार्ध है । अतः भवभूति इसके बाद हुये होंगे । वामन का समय नवीं सदी का अंतिम चरण है अतः भवभूति इससे पूर्व हो चुके होंगे । वाक्पतिराज ७३३ के लगभग जीवित थे अतः भवभूति का समय भी उस समय या उससे कुछ पहले स्थिर किया जा सकता है । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भवभूति ७ वीं सदी का अन्तिम चरण तथा आठवीं सदी के प्रथम चरण (या आठवीं सदी के मध्यभाग) के बीच था ।

भवभूति का परिवार

जैसा कि पहले निर्देश किया गया है भवभूति का जन्म प्रसिद्ध ब्राह्मण-वंश में हुआ था । इनके पञ्चम पूर्वज का नाम महाकवि था जिन्होंने वाजपेययज्ञ का अनुष्ठान किया था । इनके पितामह का नाम भट्टगोपाल तथा पिता का नाम

---

१. साहित्यशास्त्र के ग्रंथों में भवभूति के अन्य उद्धरणों के लिये देखिये टोडरमलकृत महावीरचरित की भूमिका, पृ० २९ तथा इस ग्रंथ का परिशिष्ट ।

नीलकण्ठ था ।[1] इनके परिवार के पूर्वज श्रोत्रिय, बहुश्रुत, यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठाता तथा तपस्वी हुआ करते थे । इस बात को भवभूति ने मालतीमाधव में स्पष्टरूप से कहा है ।

ते श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय
भूरिश्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते ।
इष्टाय पूर्ताय च कर्मणेऽर्थान्
दारानपत्याय तपोऽर्थमायुः ॥

—मालतीमाधव १।५

इनके कुल के ब्राह्मणों की संज्ञा 'उदुम्बर' थी । ये कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अनुयायी, काश्यप गोत्र में उत्पन्न, व्रती, पञ्चाग्नि का सेवन करने वाले, सोमपायी तथा पङ्क्तिपावन थे ।[2] पंक्तिपावन ब्राह्मण की परिभाषा मनुस्मृति में इस प्रकार की गई है :

अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ।
श्रोत्रियाऽन्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ॥
त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ।
ब्रह्मदेयात्मसन्तानो ज्येष्ठसामग एव च ।
वेदार्थवित्प्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः ॥
शतायुश्चैव विज्ञेयाः ब्राह्मणाः पंक्तिपावनः ॥ ३।१८४-६ ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भवभूति का जन्म अत्यन्त कर्मनिष्ठ तथा विद्वान् ब्राह्मण-वंश में हुआ था । भवभूति पर अपने वंश का प्रभाव पड़ा और उन्होंने वाग्देवी को अपनी वश्या बनाया ।

भवभूति के गुरु

भवभूति ने अपने गुरु का नाम ज्ञाननिधि बताया है । ज्ञाननिधि को भवभूति यथार्थनामा अर्थात् नामानुरूप गुण वाले (ज्ञान की राशि) बताते हैं :

---

१. तदामुष्यायणस्य तत्र भवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसंभवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः···· ।—महावीरचरित की प्रस्तावना; महाकवि के अनुल्लेख के साथ ऐसा ही वचन मालतीमाधव में भी है ।

२. द्र० मालतीमाधव तथा महावीरचरित की प्रस्तावनायें ।

श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणां यथाङ्गिराः ।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिः गुरुः ॥

—महावीरचरित १।५

'परमहंसानां श्रेष्ठः' से अनुमान होता है कि संभवतः वे सन्यासी थे। संन्यासियों का 'परमहंस' अभिधान प्रचलित है। अपने 'ज्ञाननिधि' नामक गुरु की प्रशंसा भवभूति ने मालवीमाधव नाटक में भी की है :

गुणैः सतां न मम को गुणः प्रख्यापितो भवेत् ।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः ॥

—मालतीमाधव १।७

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भवभूति के गुरु का नाम ज्ञाननिधि था। वे अपने समय के अति प्रसिद्ध विद्वान् रहे होंगे।

परन्तु क्योंकि भवभूति ने अनेक शास्त्रों में उच्चकोटि की विद्वत्ता प्राप्त की थी अतः बहुत संभव है उन्हें अन्य गुरुओं से भी शिक्षा लेनी पड़ी हो। जैसा कि 'उम्वेक' और भवभूति की एकता के प्रसंग में कहा गया है। ५०० वर्षों की प्राचीन मालतीमाधव की एक हस्त प्रति के छठवें अङ्क की समाप्ति पर भवभूति को 'श्रीकुमारिलस्वामिप्रसादप्राप्तवाग्वैभव' वताया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि भवभूति ने कुमारिल से भी शिक्षा प्राप्त की थी। कुमारिलभट्ट मीमांसा के प्रचण्ड विद्वान् थे, जिन्होंने अपने प्रवल पाण्डित्य तथा युक्तिकौशल से वौद्धों को परास्त किया था। इनसे भवभूति ने मीमांसाशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की थी।

भवभूति का पाण्डित्य

महाकवि भवभूति विविध शास्त्रों के निष्णात पण्डित थे। इनका जन्म विद्वान् तथा कर्मनिष्ठ ब्राह्मण-वंश में हुआ और इन्हें विद्वत्ता का रिक्थ परम्परया उपलब्ध हुआ था। इनके नाटक साहित्यशास्त्र में इनके प्रगाढ़ पाण्डित्य के द्योतक हैं। कुमारिल के श्लोकवार्तिक पर टीका लिखने के कारण इनका प्रौढ़ मीमांसक होना भी सुतरां सिद्ध है। स्वयं भवभूति ने अपने तीनों नाटकों में 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' विशेषण अपने लिये प्रयुक्त किया है। इससे यह स्पष्ट है कि वे पद (व्याकरण) वाक्य (न्याय) तथा प्रमाण (मीमांसा) के ज्ञाता थे। मालतीमाधव में उन्होंने स्पष्ट रूप से वेद, उपनिषद्, साङ्ख्य तथा योग का ज्ञाता बताया है :

यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च
ज्ञानं तत्कथनेन किं नहि ततः कश्चिद् गुणो नाटके ।
यत्प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्धयोः ।।–१।८

[जो वेदों का अध्ययन, उपनिषदों, साख्य एवं योग का ज्ञान है उसके कथन का क्या लाभ ? उनसे नाटक में कोई लाभ नहीं । यदि वाणी में प्रौढ़ता तथा उदारता है एवं अर्थ का गौरव है तो वही पाण्डित्य तथा वैदग्ध्य का गमक है ।]

इससे यह स्पष्ट है कि भवभूति नाना शास्त्रों के विदग्ध पण्डित थे पर, वे अपने ज्ञान का मात्र प्रदर्शन नहीं करना चाहते थे । पर, उनके गुण सज्जनों को सद्यः अवभासित हो जाते हैं, जैसा कि उनकी स्वयं की घोषणा है :

गुणैः सतां न मम को गुणः प्रख्यापितो भवेत् ।।
—मालतीमाधव, १।७

महाकवि को अपने कर्तृत्व तथा पाण्डित्य पर पूरा भरोसा है । यदि कोई उनकी कृति की निन्दा करता है तो उनकी पूरी आस्था है कि कहीं और कभी इसका प्रशंसक भी कोई होगा—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ।।
—मालतीमाधव १।६ (निर्णयसागर सं० संख्या ८)

[इस पद्य की जगद्धर ने इस प्रकार टीका की है—तीन प्रकार के पुरुष होते हैं—१. मूर्ख, २. अद्वैत वेदान्ती जो काव्य-रस में विरस होते हैं और ३. सहृदय रसिक । जो कोई मूर्ख हमारें नाटकों को निन्दा करते हैं वे अल्पज्ञ हैं या मूर्ख हैं उनके लिये यह मेरी कृति नहीं और जो मुमुक्ष (दूसरी कोटि के पुरुष) मेरी निन्दा करते हैं वे किमपि (पर ब्रह्म) को जानते हैं उनके लिये भी यह मेरा प्रयास नहीं, सम्राट् के लिये कौपीन नहीं बुना जाता है । तीसरे प्रकार का जो मेरा समानधर्मी है वह कहीं उत्पन्न होगा या है क्योंकि काल निस्सीम है तथा पृथ्वी भी लम्बी-चौड़ी है ।[1]]

---

१. इह तावत्त्रिविधाः पुरुषाः । केचिदज्ञा एव । केचिदद्वैतमतमग्नमनसः काव्यरसविरसाः । इतरे सहृदयहृदयामोदिकाव्यमव्यरसभररसिकाः । तत्राद्यान्प्रत्याह ये केचिदज्ञा नोऽस्माकमिह प्रबन्धेऽवज्ञामवधीरणं प्रथयन्ति ख्यापयन्ति । नाम संभावनायाम् । सम्भाव्यत इव न तु वास्तवमित्यर्थः । ते

भवभूति का पाण्डित्य इस उच्चकोटि का था कि सरस्वती उनकी वशवर्तिनी थीं। जिधर जैसे चाहा वैसे घुमाया। इसका उन्होंने बड़े संभार और अभिमान के साथ स्वयं वर्णन किया है :

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते ।—उत्तररामचरित १।२

तथा

वश्यवाचः कवेर्वाक्यं सा च रामाश्रया कथा ।—महा० १।४

यह तो हुई भवभूति की अपने पाण्डित्य के विषय में स्वयं की उक्तियाँ। इसके अतिरिक्त जब हम उनके नाटकों का अध्ययन करते हैं तो यत्र-तत्र उनमें ऐसी ज्ञानराशि पिरोई मिलती है जो उन्हें शास्त्रों में विचक्षण दर्शाती है। भवभूति जैसा सर्वशास्त्रों में निष्णात पण्डितकवि सुरभारती का शृंगार है। पाण्डित्य और वैदग्ध्य का ऐसा अपूर्व स्वर्णसौरभसंयोग विरल कवियों में ही मिलता है। यहाँ उनके नाना शास्त्रों में पाण्डित्य का समासरूप में निर्देश किया जाता है। वैसे तो इनके ग्रंथों के अध्ययन से पदे-पदे उनके पाण्डित्य का पता चलता है।

भवभूति के नाटकों में उनके वैदिक साहित्य के विस्तृत ज्ञान का पता चलता है। उत्तररामचरित के चतुर्थ अङ्क का यह श्लोक इस प्रकार है :

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां
ये व्यवहारास्तेषु मा संशयोऽभूत ।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषिक्ता
नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति ॥ १८ ॥

[अरुन्धती कौसल्या से कह रही हैं--प्रकट ब्रह्मज्योति वाले ब्राह्मणों के वचन में तुझे संशय न हो। इनकी कल्याणकारिणी वाणी में लक्ष्मी (सिद्धि) वसती है। ये फलहीन वाणी को नहीं बोलते।]

किमपि किञ्चिदल्पं जानन्ति। तान्प्रति तांल्लक्षीकृत्य मम नैष यत्नः। न हि बधिरे गीयते। यद्वा किं शब्द आक्षेपे। ते किं जानन्ति। किंतु न जानन्तीत्यर्थः। द्वितीयान्प्रत्याह—ये नाम निश्चये। वैषयिकसुखविमुखा मुमुक्षव इहावधीरणामाचरन्ति ते किमपि वाङ्मनसगोचरं परं ब्रह्म जानन्ति ते नमस्यास्तान्प्रति मम नैष यत्नः। न हि सम्राजमधिकृत्य कौपीनं सूत्र्यत इति भावः। अन्त्यान्प्रत्याह—मम समानधर्मा तुल्यगुणः कोऽपिजन उत्पत्स्यते जन्माप्स्यत्यस्ति विद्यते वा तं प्रत्येष यत्न इति भावः। इहाल्पज्ञत्वेन साधर्म्यमनौद्धत्याय। बहुज्ञत्वे साधर्म्यं कदर्थदुर्जनविवर्जनायेत्युभयत्रविवक्षा....काल इत्यादि....॥

निर्णय सा० सं. पृ० ७–८

भवभूति के इस श्लोक से यह स्पष्ट पता चलता है उनके ध्यान में ऋग्वेद का निम्न मंत्र अवश्य था—

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि ।।
--ऋग्वेद, १०।७१।२

इस मंत्र का अंतिम चरण तथा उपर्युक्त श्लोक के तृतीय चरण का साम्य द्रष्टव्य है ।

इसी प्रकार उत्तररामचरित का निम्नाङ्कित श्लोक भी उनके वैदिक ज्ञान का परिचायक है :

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याश्च सम्पदः ।
वैराजा नाम ते लोकास्तैजसाः सन्तु ते शिवाः ।।

[जहाँ आनन्द तथा मोद हैं एवं जहाँ पुण्य सम्पत्तियाँ (अणिमादिक सिद्धियाँ) हैं ऐसे तेजोयुक्त तथा मङ्गलकारी वैराज नामक लोक तुझे प्राप्त हों ।]

भवभूति का यह पद्य ऋग्वेद के निम्नलिखित मंत्र को ध्यान में रख कर लिखा जान पड़ता है :

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ।।
ऋग्वेद, ९।११३।११

इस मंत्र की प्रथम पंक्ति तथा भवभूति के पद्य की प्रथम पंक्ति नितान्त समान हैं ।

चौथे अङ्क के प्रारम्भ में ही सूत्रों के 'षडर्घ्याः भवन्ति' वाले वचन का पता लगता है । वशिष्ठ के लिये मधुपर्क देने के लिये जो हिंसा हुई है वह 'नामांसो मधुपर्को भवति' का परिचायक है । वहाँ भवभूति ने स्पष्टरूप में लिख भी दिया है कि यह वेदविहित तथा धर्मसूत्रकारों द्वारा निर्दिष्ट है—'समांसो मधुपर्क' इत्याम्नायं बहुमन्यमानाः श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा महाजं वा निर्वपन्ति गृहमेधिनः । तं हि धर्म धर्मसूत्रकाराः समामनन्ति—उत्तररामचरित, चतुर्थ अङ्क, श्लोक १ के कुछ बाद । समांस मधुपर्क का उल्लेख महावीरचरित के इस पद्य में भी है--

संज्ञप्यते वत्सतरी सर्पिष्यन्नं च पच्यते ।—३।२

भवभूति का ब्राह्मण-साहित्य से भी प्रगाढ़ परिचय था ।

महावीरचरित में विश्वामित्र सूर्यवंशी राजा दशरथ के कुलपुरोहित वशिष्ठ जी की प्रशंसा में कह रहे हैं :

न तस्य राष्ट्रं व्यथते न रिष्यति न जीर्यति।
त्वं विद्वान् ब्राह्मणो यस्य राष्ट्रगोपः पुरोहितः॥ —३।१८

इससे ऐतरेय-ब्राह्मण के अंतिम अध्याय (अ० ४०) की पुरोहितप्रशंसा से तुलना कीजिये। दोनों का साम्य स्पष्ट है। यह पद्य अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

उत्तररामचरित के चतुर्थ अंक में यह पता चलता है कि भवभूति को अश्व-मेध याग का पूर्ण परिचय प्राप्त था। वह अंश यह है--

"लवः—दृष्टमवगतं च।
बटवः—कथं ज्ञायते।
लवः—ननु मूर्खाः पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम्।"

यहाँ काण्ड शब्द निस्सन्देह शतपथ-ब्राह्मण के तेरहवें काण्ड का सूचक है जिसमें अश्वमेध यज्ञ का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। तैत्तिरीय-ब्राह्मण (३।८।९।४) में अश्वमेध का वर्णन है। अस्तु, कृष्ण यजुर्वेदी होने तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होने के कारण अङ्गों सहित कृष्ण यजुर्वेद का अध्ययन तो सिद्ध ही है।

पुराणों में प्रसिद्ध वैदिक ज्ञान-परम्परा का भी भवभूति को सम्यक् ज्ञान था। महावीरचरित में परशुराम जनक को सूर्यशिष्य याज्ञवल्क्य का शिष्य कह रहे हैं:

त्वं ब्रह्मण्यः किल परिणतश्चासि धर्मेण युक्त-
स्त्वां वेदान्तेष्वचरमर्षिः सूर्यशिष्यः शशास।—३।२६

पुराणों में वैशम्पायन से अधीत वेद का याज्ञवल्क्य द्वारा वमन एवं पुनः भगवान् भुवनभास्कर सूर्यदेव के प्रसाद से शुक्ल यजुर्वेद की प्राप्ति बहुवर्णित है (द्र० विष्णु पुराण, ३।५; श्रीमद्भगवत १२।६; ब्रह्माण्ड २।३५; वायु १।६१) इससे यह स्पष्ट है कि भवभूति को पुराणों एवं वैदिक परम्परा का सम्यक् ज्ञान था।

महावीरचरित के इस आद्य पद्य में ही उपनिषदों के बहुत से गूढ़ तत्त्वों का सन्निवेश है—

अथ स्वस्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने।
त्यक्तक्रमविभागाय चैतन्य ज्योतिषे नमः॥

—महावीरचरित, १।१

[स्वाधार में स्थित, नित्य, पापनाशक, उत्पत्त्यादिक्रमविभागविरहित, चैतन्य-ज्योति को नमस्कार है।]

इस पद्य से मिलते-जुलते उपनिषदों में अनेक वाक्य मिलते हैं; यथा--एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थम्, श्वेताश्वतर, १।१२; नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां, तत्रैव, ६।१३; तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिः, बृह० उप० ४।४।१६।

उपनिषदों तथा वेदान्त के विवर्त, शब्दब्रह्म, आदि शब्दों का भवभूति ने यत्र-तत्र प्रयोग किया है। उत्तररामचरित में जनक आत्मघातियों के लिये अन्धतामिस्र नरक का वर्णन करते हैं :

अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकास्तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिनः इत्येवमृषयो मन्यन्ते ।।--उत्तररामचरित, ४।३ के अनन्तर

यह स्पष्टतः ईशावास्योपनिषद् के निम्न मंत्र की ओर संकेत है :

असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।।--ईशो० ३

भवभूति के नाटकों में योगशास्त्र के सिद्धान्तों का भी स्थान-स्थान पर निर्देश मिलता है। 'समधिकदशनाडीमध्यस्थितात्मा' में भवभूति ने योग और तंत्र का अद्भुत सामञ्जस्य किया है। महावीरचरित अङ्क ३ में क्रुद्ध परशुराम से कहे वशिष्ठ के वचन योगसूत्र के सिद्धान्तों से आपूर्ण हैं।

साहित्यशास्त्र के सिद्धान्तों से भवभूति का व्यापक परिचय था और उनमें उन्होंने गम्भीर पाण्डित्य प्राप्त किया था। उनका 'एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्' रस सम्प्रदाय की एक पुष्ट स्थापना है और रसविषयक भवभूति की सुलझी धारणा का उद्घाटक है। रसों के अनेक प्रकारों एवं प्रयोगों को वे भलीभाँति जानते थे—भूम्ना रसानां गहनाः प्रयोगाः—मालतीमाधव १।४। आगे यथावसर हम भवभूति की रसविषयिका धारणा का विवेचन करेंगे। साहित्य में पाण्डित्य और वैदग्ध्य के गमक प्रौढ़ि, उदारता और अर्थगौरव का उन्हें ध्यान था—

यत्प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्धयोः ।।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भवभूति का पाण्डित्य अद्भुत था। उन्होंने अनेक शास्त्रों का गम्भीर तथा व्यापक अध्ययन किया था, जिसकी यत्र-तत्र झलक दिखाई पड़ती है। ज्ञान उनके जीवनरस में मिल गया था और उसी के साथ प्रवाहित होता था। अपने ज्ञान की कवायद उन्हें पसन्द नहीं थी इसीलिये उन्होंने उसका ऐसा निरर्थक प्रदर्शन कहीं नहीं किया है जो दर्शकों वा पाठकों के मन में विक्षिप्ति वा उचाट उत्पन्न करे। उनकी स्थापना भी तो थी—

यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च
ज्ञानं तत्कथनेन किं नहि ततः कश्चिद् गुणो नाटके ।।

भवभूति के उपास्यदेव

जैसा कि भवभूति के नाटकों की प्रस्तावनाओं से विहित है भवभूति का जन्म श्रोत्रिय ब्राह्मणवंश में हुआ था जो कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का अनुयायी था। इनके पूर्वज वैदिक यज्ञों का सम्पादन करते थे और एक पूर्वज ने वाजपेय यज्ञ का भी अनुष्ठान किया था। मीमांसक होने से कर्मकाण्ड के प्रति भवभूति की भी अभिरुचि रही होगी। यह सुतरां सिद्ध है। वे परमब्रह्म के प्रशंसक थे तथा आत्मतत्त्व के भी ज्ञाता थे जैसा कि महावीरचरित की प्रस्तावना के मंगलश्लोक से स्पष्ट है :

अथ स्वस्थाय देवाय नित्याय हतपाप्मने ।
त्यक्तक्रमविभागाय चैतन्यज्योतिषे नमः ॥

—महावीरचरित, १।१

किन्तु लोक में भवभूति भक्त भी थे केवल ज्ञानी ही नहीं वा यह भी कह सकते हैं कि उनका भक्त रूप अधिक व्यापक था जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है :

प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीनां
तत्पावनं रघुपतेः प्रणिनाय वृत्तम् ।
भक्तस्य तत्र समरंसत मेऽपि वाच-
स्तत्सुप्रसन्नमनसः कृतिनो भजन्ताम् ॥

—महावीरचरित १।७

[आदिकवि मुनिश्रेष्ठ प्राचेतस वाल्मीकि ने श्रीरामचन्द्र का जो पावन-चरित लिखा उसमें भक्त होने से मेरी वाणी भी श्रद्धापूर्वक आसक्त हो गयी; उसे प्रसन्नमना विद्वज्जन ग्रहण करें।]

भवभूति के नाटकों के अध्ययन से यह पता चलता है कि वे किसी देवता के कट्टर समर्थक और अन्यों के विनिन्दक न थे। इस विषय में वे शान्त तथा सौम्य प्रकृति के थे तथा समन्वयवादी कहे जा सकते हैं। धर्म के विषय में उनके विचार उदार थे। यथावसर उन्होंने विभिन्न देवताओं की स्तुतियाँ एवं प्रार्थनायें की हैं। भगवान् राम के प्रति उनकी अनुरक्ति तथा श्रद्धा पूर्वोद्धृत पद्य से स्पष्ट है। उनके दो नाटकों के नायक भी मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र हैं। अतः यह मानना स्वाभाविक है कि भवभूति की आसक्ति वैष्णव धर्म के प्रति है। अलका के मुख से श्रीरामचन्द्रजी के विषय में वस्तुतः यह भवभूति के हृदय का ही उद्गार है :

इदं हि तत्त्वं पुरुषार्थभाजा-
मयं हि साक्षात्पुरुषः पुराणः ।
त्रिधा विभिन्ना प्रकृतिः किलैषा
त्रातुं भुवि स्वेन सतोऽवतीर्णा ॥—महावीरच०, ७।२

[यह परमार्थज्ञानियों का परम तत्त्व है, यह साक्षात् पुरातन पुरुष है, यह तीन भागों (ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश अथवा सत्त्व, रज एवं तम) में विभक्त प्रकृति ही है जो पृथ्वी पर स्वयं सज्जनों की रक्षा वा मुक्ति के लिये (रामरूप में) अवतीर्ण हुई है ।]

यही बात वशिष्ठ के मुख से भी भवभूति कहलवा रहे हैं :

क्षमायाः स क्षेत्रं गुणमणिगणानां खनिः
प्रपन्नानां मूर्तः सुकृतपरिपाको जनिमताम् ।
कृपारामो रामो बहिरिव दृश्योपास्यत इति
प्रमोदाद्वै तस्याप्युपरि परिवर्तामह इमे ॥
—महावीर०, ७।३३

[श्रीराम क्षमा के आस्पद, गुणरूपी मणियों के निधान, शरणागत प्राणियों के साक्षात् पुण्यफल, परमदयालु एवं वाह्य दृष्टि से उपासित हो रहे हैं । आनन्द से हम अपने को उत्कृष्ट मान रहे हैं ।]

इन उदाहरणों से वह स्पष्ट है कि भवभूति भगवान् राम के उपासक हैं । किन्तु, अन्य देवताओं के प्रति भी उनमें समानरूपी भक्ति ही लक्षित हो रही है । किसी के प्रति न तो विशेष दुराग्रह है और न किसी से विद्वेष । मालती-माधव की प्रस्तावना में उन्होंने भगवान् शङ्कर, गणेश एवं सूर्यदेव की स्तुति की है । शिव की स्तुति इस प्रकार कर रहे हैं :

चूडापीडकपालसङ्कुलगलन्मन्दाकिनीवारयो
विद्युत्प्रायललाटलोचनशिखिज्वालाविमिश्रित्विषः ।
पान्तु त्वामकठोरकेतकशिखासन्दिग्धमुग्धेन्दवो
भूतेशस्य भुजङ्गवल्लिवलयस्रङ्नद्धजूटा जटाः ॥—मालती० १।१

[शिर में अवस्थित माला में विद्यमान नरक पालों में व्याप्त और गिरते हुये मन्दाकिनीजल से युक्त, विद्युत्वत् ललाट से स्थित लोचन की ज्वालाओं से मिश्रित कान्तिवाली, केतकी पुष्प के अग्रभाग का सन्देह उत्पन्न करने वाली, चन्द्रमा तथा सर्पो से आवेष्ठित भूतनाथ भगवान् शङ्कर की जटायें आप लोगों की रक्षा करें ।]

इसी नाटक के अन्य श्लोक में सूर्यदेव की भी स्तुति की गयी है :

कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्ते !
धुर्यां लक्ष्मीमिह मयि भृशं धेहि देव ! प्रसीद ।
यद्यत्पापं प्रतिजहि जगन्नाथ ! नम्रस्य तन्मे
भद्रं भद्रं वितर भगवन् ! भूयसे मङ्गलाय ॥

—मालतीमा० १।३

इसी प्रकार गणेश (मालती० १।२), पूर्ववर्ती कवियों (उत्तर० १।१) आदि की भी स्तुति की गई है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भवभूति की यद्यपि भगवान् श्रीराचन्द्र के प्रति विशेष आस्था है तथापि वे शिव, गणेश, आदि देवताओं के प्रति भी आस्थावान् हैं । कालप्रियानाथ के मेले में इनके नाटकों का प्रथम अभिनय भी उन्हें शिव के प्रति श्रद्धालु बताता है ।

भवभूति की प्रसिद्धि

मालतीमाधव की प्रस्तावना के एक श्लोक से विदित होता है कि भवभूति को अपने जीवन-काल में कटु आलोचनाओं का सामना करना पड़ा । उस समय लोग उनकी कृतियों से प्रभावित न हुये और उलटे भवभूति को तीव्र आक्षेपों का शिकार होना पड़ा । पर, अपनी कृतियों के प्रति भवभूति आस्थावान् तथा दृढ़ विश्वासी बने रहे ! इस स्थिति का उन्होंने स्पष्ट संकेत नीचे उद्धृत इस पद्य में किया है :

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी[1] ॥

—मालतीमाधव १।६

यहाँ यह कह देना उचित है कि बहुत संभव रूप में महावीरचरित भवभूति की प्रथम रचना है और उसके बाद की रचना मालती-माधव है। महावीरचरित के प्रणयन के बाद आलोचकों ने भवभूति पर आक्षेप किये होंगे जिसका संकेत उन्होंने इस पद्य में किया है। परन्तु मालती-माधव की रचना के बाद भी आलोचकों को पूर्ण परितोष न हुआ होगा यद्यपि विरोध की धारा मन्द पड़ गयी होगी । इसी लिये उत्तररामचरित में भी भवभूति को यह कहना पड़ा :

---

१. इस पद्य की व्याख्या पहले दी जा चुकी है ।

सर्वथा व्यवहर्त्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता ।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ॥
—उत्तर० १।५

[सूत्रधार—चाहे जैसा भी हो व्यवहार तो करना ही चाहिये । स्त्रियों के चारित्र्य तथा वाणी की निर्दोषता के विषय में लोक दोषदर्शी होता ही है ।]

पर, भवभूति पर इन आलोचनाओं का कोई असर नहीं पड़ा और आलोचकों की उन्होंने उपेक्षा की ।[१] परवर्ती साहित्य में भवभूति की कृतियों की खूब प्रशंसा हुई । समीक्षकों ने भवभूति को कालिदास से बड़ा स्थान दिया—

कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः ॥[२]

भवभूति के ही समकालीन वाक्पतिराज ने भवभूति की नीचे दिये पद्य में प्रशंसा की है :

भवभूति जलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति ।
यस्य विशेषा अद्यापि कथानिवेशेषु ॥ —गउडवहो, ७९९

नवीं सदी के अन्त तथा दशवीं के प्रारम्भ में होने वाले महाकवि राजशेखर ने अपने को भवभूति का अवतार बताया है :

बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा
ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूति रेखया
स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः ॥
—बालरामायण

यों तो भवभूति की प्रशंसा में अनेकों वचन मिलते हैं जिनका अन्यत्र,

---

१. लोकनिन्दा पर कवि को ध्यान नहीं देना चाहिये । इस विषय में राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' में दिये ये श्लोक स्मरणीय हैं :

जनापवादमात्रेण न जुगुप्सेत चात्मनि ।
जानीयात्स्वयमात्मानं यतो लोको निरङ्कुशः ॥
प्रत्यक्षकविकाव्यं च रूपं च कुलयोषितः ।
गृहवैद्यस्य विद्या च कस्मैचिद्यदि रोचते ॥
—काव्यमीमांसा, अध्याय, १०

२. इसके उत्तर में कालिदास के प्रशंसकों की यह उक्ति है : तरवः पारिजाताद्याः स्नुहिवृक्षो महातरुः ।

उपन्यास किया जायेगा पर जिन प्रमुख ग्रन्थों में और कवियों के द्वारा भवभूति के पद्यों को उद्धृत किया गया है वे इस प्रकार हैं :

(१) क्षेमेन्द्र—औचित्य विचार चर्चा, (२) राजशेखर--काव्यमीमांसा, बालरामायण, (३) धनञ्जय--दशरूपक, (४) धनपाल--तिलकमञ्जरी, (५) वामन--काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति, (६) कल्हण--राजतरङ्गिणी, (७) महिमभट्ट—व्यक्तिविवेक ।[1]

भवभूति की प्रसिद्धि और लोकप्रियता के अनेकों वचन उपलब्ध होते हैं। धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरी में भवभूति की प्रशंसा में निम्नश्लोक लिखा है :

स्पष्टभावरसा चित्रैः पदन्यासैः प्रवर्तिताः ।
नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना ॥

—तिलकमञ्जरी, ३०

सोड्ढल की उदयसुन्दरी का यह वचन भी उल्लेखनीय है :

मान्यो जगत्यां भवभूतिरार्यः
सारस्वते वर्त्मनि सार्थवाहः
वाचं पताकामिव यस्य दृष्ट्वा
जनः कवीनामनुपृष्ठमेति ॥

भवभूति की रचनायें

कुमारिल के श्लोकवार्तिक पर टीका, जो कि अभी विवाद-विषय ही है, के अतिरिक्त भवभूति के तीन रूपक उपलब्ध हैं—महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित। इनमें महावीरचरित तथा उत्तररामचरित में भगवान् श्रीराम का चरित्र वर्णित है। मालतीमाधव में मालती तथा माधव की प्रेम-लीलायें हैं। इनका विस्तृत विवेचन आगे प्रस्तुत किया जायेगा।

यहाँ यह प्रश्न विचारणीय है कि इन रूपकों की रचना का क्रम क्या है—कौन नाटक सर्वप्रथम लिखा गया तथा कौन सबसे अन्त में ? इन नाटकों में कुछ सामग्री ऐसी उपलब्ध होती हैं जिनसे हम इनकी आनुपूर्वी का अनुमान लगा सकते हैं। इस सामग्री से यह प्रतीत होता है कि भवभूति की आद्य रचना महावीरचरित है। इस निष्कर्ष के लिये हम निम्नलिखित प्रमाण रख सकते हैं :

---

१. अलङ्कारशास्त्र के ग्रंथों में भवभूति के उद्धरण के लिये द्रष्टव्य, इस ग्रन्थ का परिशिष्ट।

महावीरचरित की प्रस्तावना में भवभूति का विस्तृत परिचय दिया हुआ है। इससे यह अनुमान होता है कि उस समय भवभूति की प्रसिद्धि नहीं हुई थी अतः कवि को अपना विस्तृत परिचय देना आवश्यक था। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि यही परिचय तो ईषत् परिवर्तन के साथ मालतीमाधव में भी उपलब्ध होता है फिर क्यों न उसी को भवभूति की आद्य कृति मानी जाय। इसके उत्तर में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि मालती-माधव में 'ये नाम केचिदिह' इत्यादि पद्य इस बात का संकेत करता है कि भवभूति की कृति की अवमानना उस समय प्रारम्भ थी अतः कोई पूर्ववर्ती रचना अवश्य रही होगी। यह पूर्ववर्ती रचना महावीरचरित ही हो सकती है क्योंकि उत्तररामचरित के निर्माण के समय उनकी कीर्ति स्थिर हो चुकी थी। इसी लिये उसमें उन्हें अपना व्यापक परिचय देने की अपेक्षा न थी। महावीरचरित में प्रसिद्ध रामकथा से बहुत परिवर्तन भी किया गया है (जिसका आगे उल्लेख करेंगे) अतः जनता की भावना को ठेस लगी होगी और बहुत संभव है कि भवभूति की अवमानना में यह भी एक कारण रहा हो। अतः प्रतीत होता है कि भवभूति की आद्यकृति महावीरचरित है और इसके अनन्तर मालतीमाधव की सर्जना हुई। उत्तररामचरित उनकी अन्तिम कृति है। इसका कारण यह है कि उनकी यह कृति कुछ दोषों के होने पर भी उनकी नाट्यकला तथा काव्यकला दोनों का चूडान्त परिपाक है। इसके निर्माण के समय उनकी कीर्ति-पताका चतुर्दिक् फहरा चुकी थी जिसकारण उन्हें इसमें अपना विस्तृत परिचय देने की अपेक्षा न थी। विरोध का स्वर भी अब मन्द पड़ गया था अतः अपने विरोधियों के प्रति भी वे अपेक्षया शान्त हो गये थे। उत्तररामचरित के अन्त में जो भरतवाक्य है उसमें भी इस नाटक को परिणतप्रज्ञ कवि की कृति कहा गया है।[1] अतः यह मानना स्वाभाविक है कि यह नाटक अंत में लिखा गया—

पाप्मेभ्यश्च पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा
मङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गङ्गेव च।
तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः
शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतप्रज्ञस्य वाणीमिमाम्॥

—उत्तररामचरित, ७।२०

---

१. कुछ लोग इस पद्य के तृतीय चरण के 'तामेतां' के स्थान पर 'वाल्मीकेः' पाठ रखते हैं और इस प्रकार शब्दब्रह्मविदः परिणतप्रज्ञस्य कवेः को वाल्मीकि के साथ अन्वित करते हैं। इनके मत से उत्तररामचरित अंतिम रचना नहीं है।

इन प्रमुख कृतियों के अतिरिक्त शार्ङ्गधरपद्धति, सदुक्तिकर्णामृत, रसिकजीवनी, सूक्तिमुक्तावली आदि ग्रन्थों में भवभूति के नाम से बहुत से पद्य उद्धृत हैं जिनमें अनेकों भवभूति की इन पूर्वोल्लिखित कृतियों में उपलब्ध नहीं होते। यहाँ यह प्रश्न सहजरूप में उपस्थित होता है कि क्या भवभूति का अन्य कोई भी ग्रन्थ था जो सम्प्रति अनुपलब्ध है? यह कोई अनहोनी बात नहीं कि भवभूति ने कोई अन्य ग्रन्थ लिखा हो। सम्प्रति हम यही कह सकते हैं कि भवभूति का कोई अन्य ग्रन्थ रहा होगा जिससे ये पद्य उद्धृत किये गये।

द्वितीय प्रकरण

महावीरचरित

महाकवि भवभूति-प्रणीत 'महावीरचरित' नाटक भगवान् श्रीराम के जीवन-चरित पर आधृत है। बहुत संभव रूप में यह भवभूति की आद्य कृति है। यह नाटक सात अङ्कों में विभाजित है।

कथानक

प्रथम अङ्क—महर्षि विश्वामित्र अपने आश्रम पर यज्ञ करने वाले हैं। यज्ञ की रक्षा के लिये वे महाराज दशरथ से उनके दो पुत्रों राम और लक्ष्मण को अपने आश्रम पर लाये हैं। विश्वामित्र ने विदेहराज महात्मा सीरध्वज जनक को भी निमंत्रित किया है। सीरध्वज जनक स्वयं यज्ञ में दीक्षित होने से विश्वामित्र के यज्ञ में नहीं जाते पर अपने अनुज कुशध्वज को अपनी दो पुत्रियों सीता और ऊर्मिला के साथ विश्वामित्र के यज्ञ में भेज देते हैं। कुशध्वज को पुत्रियों के साथ आता देख राम और लक्ष्मण उनसे प्रश्न करते हैं कि यह कौन आ रहा है। विश्वामित्र उनसे कुशध्वज का परिचय देते हैं। कुशध्वज आकर विश्वामित्र को प्रणाम करते हैं। उन्हें क्षत्रियोचित संस्कारों से संस्कृत तेजस्वी उन कुमारों को देखकर कुतूहल होता है और विश्वामित्र से उनके विषय में जिज्ञासा प्रकट करते हैं। विश्वामित्र राम और लक्ष्मण का परिचय देते हैं। सभी स्वस्थ होकर बैठते हैं कि इसी समय राम के तेज से अहल्या का उद्धार हो जाता है। वह जय-जयकार करती है। कुशध्वज उसके बारे में पूछते हैं। विश्वामित्र बताते हैं कि यह औचथ्य गौतम की स्त्री अहल्या है। प्राचीन काल में इन्द्र इस पर आसक्त हुये। इस पाप से अहल्या प्रस्तर हुई। रामचन्द्र के तेज से उसे इस पाप से मुक्ति मिली। राजा राम के इस प्रभाव से प्रभावित होते हैं। सीता का भी अनुरागोदय होता है। राजा सोचते हैं कि यदि धनुर्भङ्ग की प्रतिज्ञा न की गयी होती तो सीता का परिणय राम के साथ कर दिया जाता।

इसी समय लङ्काधिप राक्षसराज रावण का सर्वमाय नामक पुरोहित राक्षस वहाँ उपस्थित होता है और कहता है कि राक्षसराज रावण ने उसे अयोनिजा सीता के साथ परिणय के निमित्त याचना करने के लिये भेजा है। राजा सीरध्वज इस समय यज्ञ में दीक्षित हैं। उन्होंने आप लोगों के पास मुझे भेजा है। सीता इसे सुनकर खिन्न हो जाती हैं। लक्ष्मण को रावण की इस प्रार्थना तथा उसके

अनाचारों को स्मरण कर अमर्ष उत्पन्न हो जाता है पर राम उसकी वीरता की प्रशंसा करते हैं। किसी का उत्तर न पाकर राक्षस अपने प्रस्ताव को दुहराता है।

इसी समय सुकेतु की कन्या, सुन्द की स्त्री एवं मारीच की माता भीषण आकृति वाली ताटका नामक राक्षसी वहाँ आती है। उसे देखकर कन्यायें सहम जाती हैं। विश्वामित्र राम से उसे मारने के लिये कहते हैं। पहले तो राम उसे स्त्री समझकर नहीं मारना चाहते पर, विश्वामित्र के द्वारा पुनः आज्ञप्त होने पर उन्हीं को प्रमाण मान उसका वध करते हैं। ताटका का वध देखकर राक्षस दुःखी होता है। राक्षस पुनः रावण के प्रस्ताव को कहता है। विश्वामित्र उसे टाल जाते हैं और भगवान् कृशाश्व से प्राप्त जृम्भकास्त्र राम को देते हैं। राम कहते हैं कि ये लक्ष्मण के साथ हमको मिलें। दिव्यास्त्रों के प्राप्त होने पर राम उन्हें यह कह कर विदा करते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर वे उपस्थित हो जाँय। राक्षस के द्वारा पुनः प्रस्ताव करने पर कुशध्वज कहते हैं कि इस विषय में सीरध्वज ही प्रमाण हैं। विश्वामित्र की आज्ञा से राजा स्मरण मात्र से वहाँ शिव के धनुष को मँगा लेते हैं और राम उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाते हैं जिससे वह टूट जाता है। राक्षस इस राम के उत्कर्ष को देखकर खिन्न हो जाता है। कुशध्वज आनन्दातिरेक में विह्वल हो जाते हैं। वे कहते हैं कि राम को तो सीता प्राप्त ही हो गई, लक्ष्मण को उर्मिला प्राप्त हो। विश्वामित्र इसका अनुमोदन करते हैं तथा माण्डवी और श्रुतिकीर्ति को भरत एवं शत्रुघ्न को देने के लिये कहते हैं। राजा प्रसन्न होकर कहते हैं कि जहाँ स्वयं विश्वामित्र ही दाता तथा ग्रहीता हैं ऐसा जनकों तथा रघुवंशियों का सम्बन्ध किसे अच्छा नहीं लगेगा। विश्वामित्र आकाशस्थ शुनःशेप से कहते हैं कि वह अयोध्या जाकर वशिष्ठ से सब समाचार कहे कि ऋषियों के साथ दशरथ को लेकर मिथिला आवें और सीरध्वज के यज्ञ से निवृत्त होने पर विवाह-मंगल हो। इस पर राक्षस अपना आक्रोश प्रकट करता है। इसी समय वहाँ मारीच और सुबाहु नामक राक्षस आते हैं। विश्वामित्र दोनों कुमारों को आज्ञा देते हैं कि वे इन राक्षसों को मारें।

द्वितीय अङ्क—द्वितीय अङ्क का प्रारम्भ लङ्का से होता है। दूत ने मिथिला से लौट कर सब समाचार यथावत् निवेदन कर दिया है। राम के इस उत्कर्ष से माल्यवान् को चिन्ता हो रही है। मारीच, सुबाहु एवं ताटक के मारे जाने पर उसे आश्चर्य है। एक ओर तो रावण की याचना का प्रत्याख्यान एवं दूसरी ओर राक्षसहन्ता राम को सीता की प्राप्ति ये दोनों माल्यवान् के लिये चिन्ता के विषय हैं। ऋषिगण भी अस्त्र-प्रदान कर राम की शक्ति-संवर्धना कर रहे हैं एवं देवगण उसका अनुमोदन कर रहे हैं। इन सभी विषयों पर वह

विचार कर रहा है। सूर्पणखा आकर उसे रावण के चिन्तित होने की सूचना देती है।

इसी समय महेन्द्रपर्वत-निवासी परशुराम का पत्र लेकर दूत आता है और माल्यवान् को देता है। परशुराम राक्षसोंद्वारा दण्डकारण्यवासी मुनियों के सन्तप्त किये जाने का उल्लेख कर कहते हैं कि 'उन्हें मैंने अभय कर दिया है। आप लोग राक्षसी को रोक दें नहीं तो मैं क्रुद्ध हो जाऊँगा।' सूर्पणखा से माल्यवान् कहता है कि 'यदि किसी प्रकार परशुराम राम के प्रति क्रुद्ध हो जाँय तो इसी में राक्षसों भलाई है। यदि परशुराम शिवधनुष को तोड़ने वाले को पा जाँय तो क्षमा नहीं करेंगे एवं युद्ध में यदि दोनों मारे जाँय तो यह और श्रेयस्कर होगा।' यह सोचकर वह परशुराम को उत्तेजित करने के लिये महेन्द्रपर्वत को जाता है।

मिश्रविष्कम्भक के बाद पता चलता है उत्तेजित परशुराम मिथिला में पहुँच गए हैं और वे अपने गुरु शिव के धनुष को भङ्ग करने वाले राम से भेंट करना चाहते हैं। यद्यपि राम परशुराम से भेंट करने में प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं तथापि सीता एवं सखियाँ सन्त्रस्त हैं। राम उनसे मिलने के लिये आगे बढ़ते हैं पर सीता उन्हें रोकती हैं। वे सीता के स्नेहवशात् रुक जाते हैं। परशुराम भी वहाँ आ जाते हैं। राम उनके सामने हो जाते हैं और राम के अलौकिक सुन्दर वपु को देखकर परशुराम प्रभावित होते हैं। वे कहते हैं कि उनके द्वारा स्वामी कार्तिकेय के परास्त किये जाने पर भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न होकर यह परशु उन्हें दिया है। राम के व्यवहार से परशुराम प्रसन्न होते हैं। परशुराम कन्याओं को भीतर जाने का आदेश देते हैं।

राम और परशुराम के इस प्रकार वार्तालाप करते समय ही वहाँ शतानन्द तथा जनक भी आ जाते हैं। परशुराम कुछ कटु वचन राम को कहते हैं पर राम शान्त रहते हैं। कन्चुकी आकर कङ्कणमोचन के लिये राम को अन्तःपुरमें ले जाता है। परशुराम यह कहकर उन्हें जाने देते हैं कि मैं वनवासी हूँ अतः देर तक यहाँ नहीं रुक सकता। दशरथ के यहाँ से आकर सुमंत्र कहता है कि वसिष्ठ तथा दशरथ आपलोगों को परशुराम के साथ बुला रहे हैं।

तृतीय अङ्क—वसिष्ठ तथा विश्वामित्र परशुराम से शान्ति की प्रार्थना करते हैं। पर, परशुराम उसमें अपनी अपकीर्ति समझते हैं। वे कहते हैं कि 'बिना शत्रु-संहार किये आचार्य भगवान् शङ्कर तथा आचार्यपत्नी भगवती पार्वती को मुँह दिखाने में असमर्थ हूँ।' विश्वामित्र कहते हैं कि यदि गुरुजनों का ध्यान करते हैं, तो ये महर्षि वसिष्ठ परमेष्ठी ब्रह्मा की सन्तान तथा भृगु के भाई होने से पूज्य हैं। ये शतानन्द भी भृगु के दूसरे भाई अङ्गिरा के प्रपौत्र हैं।

पर परशुराम उनकी बात नहीं सुनते। परशुराम के कठोर वचनों से शतानंद कुपित हो जाते हैं। वे तथा परशुराम परस्पर कठोर वचनों का व्यवहार करते हैं। अन्ततः शतानन्द शापोदक लेते हैं पर लोग उन्हें रोक देते हैं। परशुराम जनक का भी अपमान करते हैं और जनक धनुष उठा लेते हैं पर, ब्राह्मण पर अस्त्र उठाने से लोग उन्हें विरत करते हैं। दशरथ भी कुपित हो जाते हैं और कहते हैं कि दुर्दान्तों का दमन करने वाला राजा ही होता है। अज्ञ को उपदेश तो गुरु करता है पर जो विज्ञ होकर भी दुर्दान्त होता है उसके दमयिता क्षत्रिय ही हैं। जामदग्न्य परशुराम उनका उपहास करते हैं और कहते हैं कि धर्म, ब्रह्मज्ञान तथा धनुर्विद्या में स्वयं भगवान् शङ्कर उनके उपदेष्टा हैं। विश्वामित्र के साथ भी उनका कलह हो जाता है। इसी समय वहाँ श्रीरामचन्द्र उपस्थित हो जाते हैं और कहते हैं कि वे उद्धत परशुराम पर विजय प्राप्त करेंगे। जनक सबको राम-विजय का विश्वास दिलाते हैं।

चतुर्थ अङ्क—चतुर्थ अङ्क के आद्य श्लोक से ज्ञात होता है कि श्रीरामचन्द्र के अतुलित तेज-प्रताप से धर्षित होकर क्षत्रियों के शत्रु परशुराम परास्त हो गये। मिथिला में ही हमें माल्यवान् तथा सूर्पणखा मंत्रणा करते दिखायी पड़ते हैं। माल्यवान् सूर्पणखा से राक्षसों में व्याप्त फूट का वर्णन करता है। वह यह भी कहता है कि राम तथा रावण में वैर भी सहज संभव है—वह किसी न किसी प्रकार होकर ही रहेगा अतः उपाय से राम पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। दशरथ ने कैकेयी को वरदान देने को कहा है। कैकेयी की दासी मन्थरा अयोध्या से मिथिला भेजी गयी है। सूर्पणखा उसी की देह में प्रविष्ट होकर राम का वनवास मांगे। स्वभावतः सदाचारी राम पितृ-आज्ञा का उल्लंघन नहीं करेंगे। वे लक्ष्मण के साथ वन जाँय। वन जाने पर वे हतश्री हो जायेंगे और उनपर विजय संभव है। रावण का मित्र वालि उन्हें मार डालेगा और वालि पर उन्होंने विजय पा ली तो रावण पर भी पा लेंगे। ऐसी स्थिति में विभीषण राज्य का अधिकारी होगा। वहाँ सीता भी हर ली जायेंगी। संभव है राम अन्य उपाय न होने पर आत्मघात ही कर लें। सूर्पणखा को ये सब बातें समझा कर माल्यवान् चला जाता है। वसिष्ठ, विश्वामित्र, जनक तथा दशरथ परस्पर प्रशंसा करते हुये दिखायी पड़ते हैं। राम भी परशुराम के साथ विनीत रूप में वहाँ पहुँचते हैं। उन्हें परशुराम के प्रति कटु वचन कहने का खेद है। विश्वामित्र यज्ञ में व्यस्त होने के कारण लौटना चाहते हैं। वे अनुमति प्राप्त कर तथा आशीर्वाद देकर वसिष्ठ के साथ सिद्धाश्रम को प्रस्थान करते हैं। परशुराम भी लौटते हैं और जाते समय अपना धनुष राम को देते हैं तथा दण्डकारण्यवासी मुनियों के सन्तापदायी राक्षसों को मारने के लिये भी राम से कह जाते हैं।

इसी समय अवकाश पाकर मन्थरा के शरीर में प्रविष्ट सूर्पणखा भी वहाँ पहुँचती है। वह राजा दशरथ के द्वारा कैकेयी को दिये गये वरदान का स्मरण करा कैकेयी के दो वरदानों को कहती है जिससे एक के द्वारा राम, लक्ष्मण एवं सीता का अविलम्ब बनवास तथा दूसरे के द्वारा भरत का आधिपत्य माँगती है। इस सन्देश को राम ही दशरथ के पास ले जाते हैं और किसी प्रकार उनकी अनुमति प्राप्त करते हैं। वे वनको प्रस्थान करते हैं। सभी लोगों को अपार कष्ट होता है। भरत के मामा युधाजित् भी अनुगमन करते हैं। राम किसी प्रकार सबको समझा-बुझाकर लौटाते हैं। भरत पादुका ले लेते हैं और नन्दिग्राम में उसी की पूजा करने का निश्चय करते हैं।

पञ्चम अङ्क—पञ्चम अङ्क के प्रारम्भ में विदित होता है कि गृध्रराज जटायु अपने बड़े भाई सम्पाति को देखने मलय पर्वत की कन्दरा में जाता है। वहाँ सम्पाति के कथनों से यह भी ज्ञात होता है कि यौवन में दोनों भाई उड़कर सूर्य के समीप पहुँच गये। जब जटायु सूर्य की प्रखर किरणों से दग्ध होने लगा तो सम्पाति ने उसे अपने पंखों की ओट में कर लिया। इस प्रकार जटायु की तो रक्षा हो गई पर सम्पाति के पंख जल गये और वह लुन्ज-पुन्ज होकर मलय की तराई में गिर गया। जटायु उससे भेंट करता है। सम्पाति को राम के वन आने के विषय में कुछ पहले से ज्ञात है। वह राम के विषय में पूछता है और जटायु उनके पञ्चवटी में आने का समाचार देता हैं। सम्पाति जटायु से राम, लक्ष्मण एवं सीता की सावधानी से रक्षा करने को कहता है। जटायु वहाँ से विदा हो कर चला आता है। जटायु आते ही रावण के द्वारा सीता का हरण होतें देखता है। वह रावण को मना करता हैं और उसके न मानने पर आक्रमण करता है तथा हमें पीछे सूचना मिलती है कि जटायु इसी युद्ध में धराशायी होता है। राम और लक्ष्मण सीता-हरण से अत्यन्त क्लेश को प्राप्त होते हैं। उनके शोक-संवादों से यह भी ज्ञात होता है कि मृयमाण जटायु के द्वारा उन्हें रावण-द्वारा सीता-हरण का समाचार मिल चुका है। इसी समय मतङ्ग ऋषि के आश्रम से श्रमणा नामक शबरतापसी राम को खोजते वहाँ आती है और वहीं पड़े कवन्ध नामक राक्षस के चंगुल में फंस जाती है। उसके आर्त्तनाद को सुनकर लक्ष्मण कबन्ध को मार डालते हैं। श्रमणा से ही विभीषण के सुग्रीव के पास आने का समाचार मिलता है। विभीषण ने श्रमणा के साथ राम के यहाँ अपना आत्मसमर्पण प्रेषित किया है। श्रमणा यह भी कहती है कि विभीषण के पास सीता की अनुसूया नामकी चादर है। श्रमणा उनसे हनूमान् की भी प्रशंसा करती है।

कवन्ध को भी दिव्य देह की प्राप्ति होती है और बताता है कि माल्यवान् से प्रेरित वालि राम से लड़ने के लिये आ रहा है। श्रमणा वाली और रावण की मित्रता होने का वृत्तान्त बताती है। राम पम्पासर की समीपस्थ भूमि में पहुँचते हैं। वहाँ माल्यवान् द्वारा नियुक्त वाली उनसे लड़ने के लिये आता है और युद्ध में मारा जाता है। मरते समय वह राम की सुग्रीव तथा विभीषण के साथ मित्रता करा देता और बानरों को राम की सहायता करने की आज्ञा देता है। वह सुग्रीव को बानरों का राजा बनाता है।

षष्ठ अङ्क—राम के द्वारा वालि के मारे जाने पर माल्यवान् चिन्तित हो उठा। रावण की दुर्नीति, अतिशय अभिमान तथा विचारशून्यता से उसे महान् क्लेश हुआ। इधर राम की अलौकिक शक्ति तथा सफलता से उसकी चिन्ता और बढ़ गई। हनूमान् के द्वारा सम्पूर्ण लङ्का नगरी जो दूसरों के लिये अगम्य थी जला दी गई और अक्षकुमार भी काल के गाल में भेज दिया गया। पर, रावण पर इसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। अति दृप्त तथा कामासक्त रावण पर इसका कुछ न प्रभाव पड़ा। राम ने समुद्र को भयभीत कर उससे पार उतरने का उपाय पूछा और वानरों की सहायता से समुद्र पर सेतु बांध कर ससैन्य पार उतर गये। राम की वानरी सेना तथा रावण के राक्षसी सैन्य में भयावह युद्ध छिड़ गया। मदोन्मत्त बानरों नें राक्षसों को मृत्यु के घाट उतारना प्रारम्भ किया। अन्ततः रावण और मेघनाद भी युद्ध में उतरे। मेघनाद की भयङ्कर शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण मूर्छित होकर गिर पड़े। राम की सेना में भयङ्कर विषाद की लहर दौड़ गयी। मंत्रणा हुई और हनुमान् सञ्जीवनी औषधि लाने के लिये भेजे गये। औषधि न पहचानने पर वे पर्वत उठा कर ही चल दिये। औषधियों की हवा लगने से लक्ष्मण में चेतना लौट आयी।

राम और राक्षसों की सेना में पुनः तुमुल युद्ध प्रारम्भ होगया। राम और लक्ष्मण के द्वारा काटे जाने पर भी पुनः पुनः रावण तथा मेघनाद के नवीन शिर उत्पन्न हो जाते थे। दिव्यर्षि गण रावण के वध के लिये राम को प्रेरित करते हैं। अन्ततोगत्वा राम और लक्ष्मण दिव्य अस्त्रों से रावण तथा मेघनाद को मार डालते हैं। इस प्रकार सीता-हरण-जन्य कलह की समाप्ति होती है। देवता आनन्द में मग्न हो जाते हैं।

सप्तम अङ्क—सप्तम अङ्क के प्रारम्भ में लङ्का विषण्ण दिखायी पड़ती है। उससे राक्षसों तथा राक्षसेश्वर रावण के मारे जाने का महान् क्लेश है। इसी समय अलका भी वहाँ पहुँच जाती है और लङ्का का राक्षसों की अनीति का वर्णन कर समाधान करती है। विभीषण का राक्षसों के साम्राज्य पर अभिषेक होता है। सीता की अग्नि-परीक्षा होती है और इन्द्र, रुद्र आदि देवता उनके

सच्चारित्र्य की साक्षी देते हैं। सुग्रीव आदि के साथ राम पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर अयोध्या के लिये प्रस्थान करते हैं और हनूमान् को अयोध्या में भरत को आगमन का सन्देश पहुँचाने के लिये भेज देते हैं। मार्ग में श्रीरामचन्द्र वन का दृश्य दिखाते जाते हैं और समुद्र-सेतु आदि कार्यो का विवरण भी देते जाते हैं। अगस्त्य ऋषि के आश्रम के पास पहुँचकर सभी प्रणाम करते है और दैवी वाणी उनका अभिनन्दन करती है। विभिन्न प्राकृतिक दृश्य एवं स्थानों का अवलोकन करते हुये वे अयोध्या पहुँचते हैं। हनूमान् द्वारा सन्देश पाकर भरत एवं शत्रुघ्न सपरिजन उनकी अगवानी करते हैं। सबका प्रेम-मिलन होता है।

अयोध्या में राम के राज्याभिषेक की तैयारी होती है। विश्वामित्र भी इस अवसर पर उपस्थित हो जाते हैं। सविधि वसिष्ठ राम का राज्याभिषेक करते हैं। गन्धर्व यशोगान करते हैं और मंगलवचन के साथ नाटक समाप्त होता है।

इस प्रकार महावीरचरित नाटक में राम का समग्र जीवन-चरित चित्रित किया गया है।

नाटक का शीर्षक

इस नाटक का शीर्षक महावीरचरित है। वस्तुतः यहाँ श्रीरामचन्द्र महान् वीर के रूप में चित्रित किये गये हैं अतः भवभूति ने इसका नाम महावीरचरित या वीरचरित रखा है। इस नाटक में साद्यन्त रामचन्द्र को एक अत्यन्त वीर पुरुष प्रदर्शित किया गया अथवा यों कहा जाय कि यहाँ रामचरित के वीरत्व प्रधान अंश का ग्रहण किया गया है। अतः इस नाटक का नाम महावीरचरित पड़ा--महावीरस्य रामस्य चरितं यत्र अथवा महावीरस्य चरितं महावीरचरितम् तदधिकृत्य कृतं नाटकम् महावीरचरितम्।

कथानक में परिवर्तन

महावीरचरित में भवभूति ने प्रसिद्ध रामकथा में बहुत परिवर्तन भी किया है जिसका संकेत उन्होंने अपूर्वत्वात्प्रबन्धस्य के द्वारा पहले ही दे दिया है। प्रसिद्ध कथा में मुख्य परिवर्तन इस प्रकार है :

१. राम के साथ सीता के विवाह का वृत्तान्त सुनकर रावण का सचिव माल्यवान् चिन्तित होता है। वह राम के द्वारा शिवधनुष के भङ्ग होने का वृत्तान्त परशुराम को सुनाता है जिससे कुपित होकर परशुराम राम का वध

करने के लिये मिथिला में आते हैं। प्रचलित रामचरित में राक्षसों द्वारा परशुराम के उत्तेजित किये जाने का विवरण नहीं मिलता। यह भवभूति की कल्पना का प्रसाद है।

२. राम के वन-प्रेषण का सारा प्रसङ्ग ही भवभूति की मौलिक उद्भावना है। माल्यवान् द्वारा सूर्पणखा को मन्थरा के रूप में मिथिला भेजना और राम का वनवास। प्रचलित रामचरित के अनुसार राम के मिथिला से लौट आने और राज्याभिषेक की तैयारी के अवसर पर कैकेयी राम का चौदह वर्ष का वनवास तथा भरत का राज्य माँगती है। किन्तु महावीरचरित में प्रथमतः तो यह घटना अयोध्या में नहीं घटती अपितु मिथिला में घटती है और वहीं से राम लक्ष्मण तथा सीता के साथ वन के लिये प्रस्थान करते हैं। द्वितीयतः इस नाटक में कैकेयी राम का वनवास नहीं माँगती अपितु यह सूर्पणखा की माया से घटित होता है।

३. वाली और राम के युद्ध के विषय में भी इस नाटक में व्यापक परिवर्तन किया गया है। वाल्मीकीय रामायण में वाली रावण का सहायक नहीं अपितु सुग्रीव का शत्रु है। सुग्रीव के साथ सख्य के कारण ही राम उसे ओट से मारते हैं। परन्तु इस नाटक में वाली रावण का सहायक चित्रित किया गया है और माल्यवान् से प्रेरित होकर राम से लड़ने आता है। प्रत्यक्ष संग्राम में वाली राम के हाथों मारा जाता है।

मुख्यतः वाल्मीकीय रामायण की कथा से इस नाटक मे ये ही अन्तर हैं। किन्तु ये परिवर्तन ऐसे हैं जो द्रष्टा वा पाठक की बद्धमूल भावना को बुरी तरह झकझोर देते हैं और वह भवभूति की कल्पना पर खीझ जाता है। शेष कथा वाल्मीकीय रामायण के अनुकरण पर ही है, जिसके प्रति भवभूति ने इस नाटक के आरम्भ में ही अपनी श्रद्धा प्रकट की है :—

प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीनां
यत्पावनं रघुपतेः प्रणिनाय वृत्तम्।
भक्तस्य तत्र समरंसत मेऽपि वाच-
स्तत्सुप्रसन्नमनसः कृतिनो भजन्ताम्॥

महावीरच० १।७

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि भवभूति ने रामाख्यान में यह परिवर्तन क्यों किया? क्या कारण थे जो उन्हें इन परिवर्तनों के लिये प्रेरित किये? इसका सबसे प्रमुख कारण तो है पात्रों के चरित्र में उत्कर्षाधान। कैकेयी के लिये यह अनुचित था कि वह अपने प्रियपुत्र राम को, जो प्रजा तथा स्वयं उसके भी प्रिय थे,

वन भेजे और इस काम में पति का भी वलिदान करे। भवभूति के लिये यह सह्य न था कि उनके चरितनायक की विमाता इतना बड़ा कुकृत्य करे। इसी लिये इसे वे सूर्पणखा के द्वारा सम्पन्न कराते हैं और वह भी इतनी दूर कि कैकेयी को उसका पता भी न लगे। स्पष्टतः कवि ने कैकेयी को इस कुकाण्ड की छाया तक से बचाया है। इसी प्रकार वाली का वध भी राम के चरित्र पर कलङ्क ही था। राम जैसे आदर्श पुरुष और मर्यादापुरुषोत्तम के लिये यह उचित न था कि वे छिप कर वाली का वध करें। भवभूति को यह बुरा लगा और उन्होंने वाली को रावण का मित्र और उसके हित के लिये राम से युद्ध करते दिखाया है। इस प्रकार वह सम्मुख-युद्ध में मारा जाता है।

चारित्र्योत्कर्षके अतिरिक्त इन नाटकों का अपना मनोवैज्ञानिक महत्त्व भी है। मिथिला से सुदूर दक्षिण महेन्द्रगिरि पर रहनेवाले परशुराम का सद्यः मिथिला में पहुँचना कुछ अस्वाभाविक लगता है। इसलिये कवि ने यह योजना की कि माल्यवान् ने जाकर उन्हें उत्तेजित किया तथा राम पर आक्रमण करने के लिये भेजा। इस प्रकार परशुराम का वहाँ पहुँचना स्वाभाविक लगता है। मिथिला में जनक, दशरथ, विश्वामित्र आदि का परशुराम के प्रति उत्तेजित होना भी यथार्थ स्थिति के अनुकूल है। वालि का सम्मुख युद्ध में मारा जाना भी अधिक मनोवैज्ञानिक है।

चरित्र-चित्रण

राम--राम इस नाटक के नायक हैं। कवि ने उनके चरित्र को प्रस्तुत करने में पर्याप्त सावधानी बरती है और इसके लिये कथानक में यथोचित परिष्कार तथा परिवर्तन भी किया है। राम वीर, निर्भीक, साहसी तथा गुणग्राही के रूप में चित्रित किये गये हैं। वे शत्रु की प्रशंसा करने से नहीं चूकते। जब लक्ष्मण रावण की वीरता पर आक्षेप करते हैं तो राम उसकी प्रशंसा करते हैं :

यद्विद्वानपि तादृशेऽप्यभिजने धर्म्यात्पथोऽपिच्युतः
किंब्रूमोऽत्र तदन्यदेव न वसन्त्येकत्र सर्वे गुणाः।
लीलानिर्जितषण्मुखाद्भगवतः श्रीजामदग्न्यादृते
निर्विघ्नप्रतिपन्नविश्वविजयो वीरस्तु कस्तादृशः॥--१।३३

[विद्वान् होकर एवं तादृश उच्च कुल में जन्म पाकर भी यदि रावण धर्म्य पथ से भ्रष्ट है तो इस विषय में क्या कहा जाय? एक स्थान पर सभी गुण नहीं रहते। कार्तिकेय को लीलापूर्वक जीतने वाले भगवान् परशुराम के अतिरिक्त रावण जैसा त्रैलोक्यविजयी वीर कौन है?]

यही अवस्था परशुराम के प्रति भी है। सभी स्त्रियाँ उन्हें क्षत्रिय-संहारक कह कर सन्त्रस्त हैं किन्तु राम उनकी वीरता की प्रशंसा ही कर रहे हैं--

किमेकदेशेन महाज्ञाननिधेर्माहात्म्यमपह्नियते। य एषः
उत्खातक्षितिपालवंशगहनास्त्रिःसप्तकृत्वो दिशः
कृत्वा विश्रुतकार्तिकेयविजयश्लाघ्यश्च बाह्वोर्बलात्।
सद्वीपामथ काश्यपाय दत्त्वाश्वमेधे महीं
शस्त्रव्यस्तसमुद्रदत्तविषयं लब्ध्वा तपस्तप्यते॥ --२।१९

[क्या इस एक बात से उन महाज्ञानी का माहात्म्य लुप्त होता है ? जिन्होंने इक्कीस बार दिशाओं को क्षत्रियों से शून्य बना दिया और बाहुबल से प्रसिद्ध कार्तिकेय पर विजय प्राप्त की और सम्पूर्ण पृथ्वी को अश्वमेध में कश्यप को दे दी एवं जो स्वयं शस्त्र से संतप्त समुद्र द्वारा दी गई पृथ्वी पर तप करते हैं।]

राम वीर तथा परगुणग्राही के अतिरिक्त धर्मभीरु हैं। जब विश्वामित्र उनसे ताटका को मारने के लिये कहते हैं तो उनका धर्मभीरु मन उसे स्त्री समझकर मारने से हिचकता है। वे कहते हैं : 'भगवन्! स्त्री खल्वियम् (प्रथम अङ्क)। इसी प्रकार वाली को निश्शस्त्र देखकर भी वे उसके साथ युद्ध करने में हिचकते हैं—

दिष्ट्या यदद्य दृष्टस्त्वं सत्यमेतच्च युज्यते।
किं त्वशस्त्रेषु युष्मासु कथं रामोऽस्तु सायुधः॥ --५।५०

[भाग्य से आज आप से भेंट हुई। यह उपयुक्त ही है। किन्तु अस्त्रहीन आप के साथ मैं अस्त्र कैसे धारण करूँ ?]

वीरता, धर्मभीरुता के अतिरिक्त राम में गुरुजनों के प्रति नम्रता विद्यमान है। विश्वामित्र के प्रति वे असीम आदर रखते हैं। लङ्का से लौटते समय विश्वामित्र के प्रदेश में वे विमान से उतरना चाहते हैं पर विश्वामित्र की आज्ञा नहीं होती। वसिष्ठ, दशरथ एवं माताओं के प्रति भी उनमें अत्यन्त आदर है।

राम कोरे वीर ही वा धर्मपालक तथा दुष्टों के दमयिता ही नहीं अपितु हृदय भी हैं। उनकी सहृदयता का पता परशुराम के आगमन से भयभीत सीता के प्रति कहे वचनों से चलता है (२।२१)। वन में सीता के हरे जानपर वन-वन भटकते राम के हृदय में प्राकृतिक दृश्यों को देखकर अनुराग का भाव जागृत हो उठता है। वे भावमुग्ध हो जाते हैं। जब लक्ष्मण उन्हें इस प्रकार देखकर इसका कारण पूछते हैं। राम का उत्तर देखिये—

वत्स ! किं न पश्यसि ।

स्थितमुपनतजम्भारम्भबिम्बैः कदम्बैः
कृतमतिकलकण्ठैस्ताण्डवं नीलकण्ठैः ।
अपि च विघटमानप्रौढतापिच्छनीलः
श्रयति शिखरमद्रेर्नूतनस्तोयवाहः ॥ ५।४२

[भाई ! क्या तुम नहीं देखते ? कदम्ब विकसित होने जा रहे हैं, अत्यन्त मधुर स्वर वाले नीलकण्ठ नाच रहे हैं । काले वर्ण की ऊपर घुमड़ती हुई नूतन मेघमाला पर्वत के शिखर पर लटक रही है ।]

संक्षेप में राम का चरित्र यहाँ आदर्शरूप में अङ्कित है । वे सम्पूर्ण गुणों के आगार, धर्मरक्षक तथा त्रिभुवन-त्राता हैं । वस्तुतः सप्तम अङ्क में महर्षि वसिष्ठ राम के चरित्र का सार ही प्रस्तुत कर रहे हैं :

क्षमायाः स क्षेत्रं गुणमणिगणानां खनिः
प्रपन्नानां मूर्तः सुकृतपरिपाको जनिमताम् ।
कृपारामो वह्रिरिव हृदयोपास्यत इति
प्रमोदाद्वै तस्याप्युपरि परिवर्तामह इमे ॥ ७।३३

लक्ष्मण—लक्ष्मण का चरित्र आदर्श वीर तथा आदर्श बन्धु के रूप में चित्रित किया है। सपूर्ण नाटक में वे राम का छाया की भाँति अनुगमन करते हैं । नाटककार ने परशुराम के साथ उनके विवाद को नहीं दर्शाया है । अन्यत्र जो उनका चरित्र किञ्चित् उद्धत के रूप में प्रदर्शित किया गया है उसका यहाँ अभाव है । राम का रावण की वीरता पर जैसी श्रद्धा है वैसी लक्ष्मण की नहीं । वे जगत् के शत्रु रावण की वीरता के प्रशंसक नहीं । उनकी उक्ति देखिये—

अति हि सौजन्यमार्यस्य तस्मिन्नपि निसर्गवैरिणि निशाचरे बहुमानः ।

× × ×

निरस्तवीर पुरुषाचारस्य का वीरता । (प्रथम अङ्क)

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे वीरपुरुषों की प्रशंसा नहीं करते । वाली की वे भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं—

आर्य ! आर्य ! दिष्ट्या प्राप्तः स वीरगोष्ठीविनोदप्रदानप्रियसुहृन्मघोनः । (पञ्चम अङ्क)

कवन्ध का वध करते लक्ष्मण को देर नहीं लगती । राक्षसों के साथ संग्राम में भी उनका अतुलित पराक्रम व्यञ्जित हुआ है ।

इस प्रकार लक्ष्मण का चरित्र संक्षिप्त होने पर भी उदात्त है । उसमें कहीं भी न्यूनता नहीं दिखायी पड़ती । कवि ने सतर्कता से उसे प्रस्तुत किया है ।

लक्ष्मण का चरित्र वीरता, त्याग, तितिक्षा एवं भ्रातृभक्ति का चरित्र है। उनमें संयम एवं मर्यादा सर्वत्र लक्षित होती है।

दशरथ एवं जनक—दशरथ तथा जनक इन दोनों नृपतियों का चरित्र यद्यपि बीच में थोड़ा-सा ही आया है, तथापि अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। परशुराम के उत्तेजित होने पर महाराज दशरथ उनसे बड़ी दृढता तथा पौरुष के साथ शान्त होने का आग्रह करते हैं।

दुर्दान्तानां दमनविधयः क्षत्रियेष्वायतन्ते
दुर्दान्तस्त्वं वयमपि च ते क्षत्रियाः शासितारः।
सद्यः शान्तो भव किमपरं दम्यसे चाधुनैव
क्व ब्रह्माणः प्रशमनपराः क्षत्रधार्यं क्व शस्त्रम्॥–१।३४

तथा--

अज्ञो वा यदि वा विपर्ययगतज्ञानोऽथ सन्देहभृ-
द्दृष्टादृष्टविरोधि कर्म कुरुते यस्तस्य गोप्ता गुरुः।
निस्सन्देहविपर्यये सति पुनर्ज्ञाने विरुद्धक्रियं
राजा चेत्पुरुषं न शास्ति तदयं प्राप्तः प्रजाविप्लवः॥–१।३५

इससे यह स्पष्ट होता है कि महाराज दशरथ निर्भीक तथा पराक्रमी योद्धा ही नहीं अपितु राजधर्म के ज्ञाता हैं। उनके इस वचन से मनुस्मृति ७,१७-२४ की तुलना करने योग्य है। महाराज दशरथ सत्य के लिये अपने प्राणों की परवा नहीं करते और राम को बन जाने की अनुमति दे ही देते हैं।

महाराज जनक ब्रह्मज्ञानी हैं। याज्ञवल्क्य से उन्होंने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया है। राम उनके ब्रह्मज्ञान की सभी प्रशंसा करते हैं, यथा--

रामः—

उत्पत्तिर्देवयजनाद् ब्रह्मवादी नृपः पिता॥—१।२१

परशुरामः—

स एष राजा जनको मनीषी
पुरोहितेनाङ्गिरसेन गुप्तः।
आदित्यशिष्यः किल याज्ञवल्क्यो
यस्मै मुनिर्ब्रह्म परं विविव्रे॥--२।४३

परशुरामः—

त्वं ब्रह्मण्यः किल परिणतश्चासि धर्मेण युक्त-
स्त्वां वेदान्तेष्वचरमृषिः सूर्यशिष्यः शशास॥—३।२४

परमतत्त्व के ज्ञाता होने के अतिरिक्त महाराज जनक वीर भी हैं। परशुराम

के कठोर वचनों को सुनकर उन्हें क्रोध आ जाता है और वे धनुर्ग्रहण के लिये तत्पर हो जाते हैं। लौकिक व्यवहार में भी जनक महान् हैं। संक्षेप में कवि ने उन्हें राजर्षि के रूप में चित्रित किया है।

परशुराम—महर्षि परशुराम अतुलित पराक्रमी, महान् शिवभक्त एवं तपोनिष्ठ महात्मा हैं। उनका जन्म उत्तम भार्गव कुल में हुआ है। उनके बल, वीर्य की प्रशंसा सभी करते हैं। माल्यवान् के शब्दों में यदि यही प्रकृति तथा भूतगण रहें तो परशुराम की हार किसी से नहीं हो सकती—

तान्येव यदि भूतानि ता एव यदि शक्तयः।
ततः परशुरामस्य न प्रतीमः पराभवम्॥—२।१४

युद्ध में परशुराम ने स्वामी कार्त्तिकेय को भी परास्त कर दिया था। धर्म, ब्रह्मज्ञान तथा धनुर्वेद की शिक्षा उन्होंने साक्षात् भूतभावन भगवान् शङ्कर से प्राप्त की है (३।३७)। उन्होंने क्रुद्ध होकर पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से हीन कर दिया था और अश्वमेध यज्ञकर सम्पूर्ण पृथ्वी महर्षि कश्यप को दक्षिणा के रूप में दे दी। स्वयं वे समुद्र से जमीन मांग कर तपस्या करने चले गये।

तपस्वी तथा संयमी के अतिरिक्त परशुराम के चरित्र का एक दूसरा भी अंश है और वह है उनकी क्रूरता, उद्दण्डता और आत्मश्लाघा। इसी क्रूर स्वभाव के कारण उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी के क्षत्रियों का वध किया। मिथिला में उनके सम्भाषणों से उनकी उद्दण्डता तथा उच्छृंखलता प्रकट होती है। वसिष्ठ, विश्वामित्र, आदि गुरुजनों की अवहेलना इसी उद्दण्डता का परिणाम है। गर्व भी उनमें अत्यधिक लक्षित होता है। राम के द्वारा उनका मानमर्दन होने पर विवेक जागृत हो जाता है।

विश्वामित्र—महर्षि विश्वामित्र का स्थान, इस नाटक में अपेक्षाकृत अन्य ऋषियों के, विशेष महत्त्व रखता है। राम और सीता का परिणय, राम को दिव्यास्त्रों का दान उन्हीं की महिमा है। वे तप तथा तेज के निधान हैं। वे शान्ति के निधान हैं। इस बात का पता हमें आरम्भ में ही लग जाता है:

तदस्मिन् ब्रह्माद्यैस्त्रिदशगुरुभिर्नाथितशमे
तपस्तेजोधाम्नि स्वयमुपनतब्रह्मणि गुरौ॥—१।११

महर्षि विश्वामित्र शम तथा दम के प्रतीक हैं। न्याय्य मार्ग का अवलम्बन ही उनका लक्ष्य है। जिस समय परशुराम और दशरथ में उक्ति प्रत्युक्ति हो रही है उस समय विश्वामित्र दशरथ के पक्ष का समर्थन करते हैं और कहते

हैं कि जानकर जो कुमार्गगामी होता है उसका दमयिता राजा है। लङ्का से लौटते समय जिस समय राम विश्वामित्र के आश्रम के पास पुष्पक विमान से उतरना चाहते हैं उस समय विश्वामित्र उनको विमान से उतरने से इस कारण रोकते हैं जिससे वे शीघ्र अयोध्या पहुँच जायँ।

वसिष्ठ तथा शतानन्द—महर्षि वसिष्ठ शान्त तथा तपस्वी हैं। उनके मन में विक्रिया का लेश भी नहीं। वे परशुराम को समझाते हैं। जहाँ परशुराम के प्रति सभी लोग अपना रोष प्रकट करते हैं वहाँ वसिष्ठ बिल्कुल शान्त रहते हैं। शतानन्द के द्वारा शापोदक लिये जाने पर वे उन्हें रोकते हैं। तृतीय अङ्क के चतुर्थ श्लोक के बाद परशुराम से कहे गये उनके वचन योगशास्त्र में उनकी दक्षता के परिचायक हैं।

शतानन्द तपस्वी तथा संयमी हैं। किन्तु उनके स्वभाव में वह सहन शीलता नहीं जो वसिष्ठ में है। जामदग्न्य परमुराम के साथ वे वाक्कलह में संलग्न हो जाते हैं और अन्ततोगत्वा शापोदक भी उठा लेते हैं। अपने यजमान की वे सर्वप्रकार से रक्षा करते हैं और ऐतरेय ब्राह्मण के 'राष्ट्रगोपः पुरोहितः' को सच्चे अर्थों में सार्थक करते हैं। विश्वामित्र का शतानन्द के प्रति कहा गया निम्नाङ्कित वचन सर्वथा सार्थक है :

न तस्य राष्ट्रं व्यथते न रिष्यति न जीर्यति।
त्वं विद्वान् ब्राह्मणो यस्य राष्ट्रगोपः पुरोहितः॥—३।१८

सीता—जनकनन्दिनी सीता का चरित्र उदात्त है। नारी सुलभ कोमलता तथा संकोच से वे आपूर्ण हैं। राम के प्रथम दर्शन से ही पूर्वराग का उदय होता है और उनके तदनुवर्ती क्रियाकलापों से पुष्ट होता है। जब राम को वह प्रथम बार देखती हैं तभी वे उनके प्रति आकृष्ट हो जाती हैं। जब रामको विश्वामित्र ताटकावधका आदेश देते हैं तो सीता बोल उठती हैं—'**हा धिक् हा धिक्! एष एवात्र नियुक्तः।**' और जब राम स्त्री समझकर उसे नहीं मारना चाहते तो सीता कहती हैं—'**अन्यतोमुख एवास्य चित्तभेदः।**' परशुराम के उग्र रूप को देखकर उनके मन में आशंका तथा भय होता है जिससे वे राम को उनके पास जाने से रोकती हैं।

सीता पति के सुख-दुख में सदैव अनुगामिनी हैं। जिस समय राम के साथ उन्हें वन जानेकी अनुमति मिलती है वे प्रसन्नता से कह उठती हैं—'**दिष्ट्यानुमोदितास्म्यार्यपुत्रेण।**' सीता उपकार के लिये सदैव कृतज्ञ रहती हैं। लङ्का से लौटते समय जब वे जटायु के मृत्युस्थल के पास आती हैं तो कहती हैं—**कथं मम कारणात्तादृशानामपि महानुभावनामीदृशोऽवस्थाविशेषो निशम्यते।**

संक्षेप में सीता का चरित्र आदर्श स्त्री का है। संक्षिप्त होते हुये भी उसका महत्त्व व्यापक है।

रावण—रावण का चरित्र प्रत्यक्षत: इस नाटक में अधिक नहीं। वह—शूर-वीर तभा तपस्वी बताया गया है। वह महान् विद्वान् है। तपस्या से उसने आशुतोष भगवान् भूतभावन शंकर को सन्तुष्ट किया है। इतना गुण होने पर भी वह देवद्रोही, कुमार्गगामी तथा मदोन्मत्त है। छिपकर दूसरे की स्त्री चुराने में उसे जरा भी संकोच नहीं। ऋषि-ब्राह्मणों को उसके वशवर्ती राक्षस सदैव सताया करते हैं। उसे अपने बलका अतिगर्व है और शिर पर आये शत्रु की भी उसे परवा नहीं। नीति का भी वह दृप्ततावश पालन नहीं करता।

माल्यवान्—राक्षसराज रावण का अमात्य माल्यवान् कूटनीति में निष्णात है। सारी घटनाओं का वह सूत्रधार बन कर उन्हें नचा रहा है। परशुराम को प्रेरित करना, वाली का युद्ध में भेजना उसी के बुद्धिविलास हैं। राक्षसों के घर में फैली फूट का वह शमन करना चाहता है यद्यपि इसमें उसे सफलता नहीं मिलती और राक्षसकुल का नाश ही हो जाता है। रावण की दुर्नीति पर उसे खीझ है। अमात्य के पद का वह पूरा निर्वाह करता है और अपने कर्तव्य में ईषत् त्रुटि भी नहीं होने देता। मंत्रिपद को वह साधारण नहीं मानता अपितु वह महान् कष्टकारक है। राजा लोग मदान्ध होकर ययेच्छ व्यवहार करें और सचिव भाग्य विपरीत होने पर भी उसका समाधान ढूँढे—

यत्किञ्चिद्दुर्मदाः स्वैरमाद्रियन्ते निरर्गलम् ।
तत्र तत्र प्रतीकारश्चिन्त्यो वक्रविधावपि ॥–६।३

सूर्पणखा—राक्षसी सूर्पणखा का चरित्र भी इस नाटक में विशेष महत्त्व रखता है। माल्यवान् की प्रेरणा से वही मन्थरा के वेश में जाकर राम का वनवास मांगती है। परन्तु निशाचरी होने पर भी उसका मन यह करने का इच्छुक नहीं यद्यपि माल्यवान् के आग्रह से करती है। राम जब वन जाने को प्रस्तुत होते हैं उस समय भी वह उनकी प्रशंसा करती है। कामवासना का भी उसके संकेत मिलता है जिस कारण वह अपने नाक और कान से हाथ धोती है।

अन्य पात्रों का भी अपने-अपने स्थान पर विशिष्ट महत्त्व है और कवि ने सतर्कता से उन्हें उपस्थित किया है।

महावीरचरित : समीक्षा

महावीरचरित राम-चरित पर आधृत नाटक है अतः भवभूति का कथानक विश्वविश्रुत है। यद्यपि उनकी यह प्रथम कृति है पर विद्वानोंकी दृष्टि में नाटक य

संविधान की दृष्टि से मालतीमाधव की अपेक्षा कहीं श्रेष्ठतर है।[1] भवभूति ने इस नाटक के कथानक के रूप में पूरा रामचरित ग्रहण किया है अतः इतने बड़े कथानक का सन्तुलन रखना कठिन काम है। कथानक को अधिक मनोवैज्ञानिक भूमि पर लाने, चरितनायक के चरित्र को निर्मल रखने तथा नाटकीयता के लिये भवभूति ने इस नाटक के कथानक में पर्याप्त मौलिकता का आश्रय लिया है जिसका निर्देश पहले किया जा चुका है। भवभूति ने यद्यपि कथानक को प्रशस्त बनाने का पर्याप्त प्रयास किया है, पर, उनका यह प्रयास त्रुटियों से परे नहीं। माल्यवान् की सारी नीतियाँ, बुद्धिकौशल और प्रयास इसलिये असफल नहीं होते कि वह कूटनीतिज्ञ नहीं अपितु इसलिये कि नाटककार को राम की विजय दिखानी है। इस प्रकार नाटक का सारा संघर्ष प्रभावुक होने से वञ्चित हो जाता है। परशुराम के साथ दशरथ, जनक, शतानन्द एवं राम का सम्पूर्ण वाग्युद्ध जो दो अङ्कों में व्याप्त है दर्शक को वैरस्य ही उत्पन्न करेगा। इससे भवभूति की काव्यकारिता का प्रकर्ष भले ही द्योतित हो, पर, नाटक में इतने वाक्प्रपञ्च की अपेक्षा नहीं रहती। पद्यों का बहुल प्रयोग भी एक सीमा तक नाटक के प्रकर्ष में सहायक नहीं। षष्ठ अङ्क में युद्ध का सारा दृश्य इन्द्र तथा चित्ररथ के संवादों द्वारा वर्णित है। यद्यपि नाटककार ने रंगमञ्च पर युद्ध के दृश्य को न दिखाने के लिये ही ऐसा किया है पर यह वर्णनात्मक अंश नाटक की अपेक्षा काव्य के अधिक उपयुक्त।[2]

कथानक के अतिरिक्त जब हम संवादों पर दृष्टिपात करते हैं तो देखते हैं कि भवभूति के संवाद पर्याप्त मंजे हुये, भाववाही तथा विभिन्न भावों को दर्शाते हैं। परशुराम के साथ जनक, दशरथ तथा शतानंद के संवाद अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। वीररस-दृप्त ये संवाद दर्शकों के हृदय में अपूर्व रस का सञ्चार करते हैं--भले ही कथानक में कोई गति न दिखायी पड़े। ऐसे संवाद विरल होते हैं। उत्तर-प्रत्युत्तर की अपूर्व कला कवि ने प्रदर्शित की है। इस संवाद में बहुत सी पूर्वकथाओं की शृंखला जुड़ी है जिनका ये संकेत करते हैं। अहल्या का आख्यान, परशुराम द्वारा कार्त्तवीर्य अर्जुन तथा स्वामी कार्तिकेय के पराजय का आख्यान इनसे सूचित होता है। अन्यत्र भी संवादों की छटा पर्याप्त कौशल के साथ प्रदर्शित की गई है। नाटकीय संविधान के अतिरिक्त इन संवादों का अपना

---

१. द्र० एस० के० डे, ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, भाग १ पृ० २८५।

२. टोडरमल, महावीरचरित की भूमिका, पृ० ३२।

पृथक् काव्य सौष्ठव है जिसकी महत्ता का निषेध नहीं किया जा सकता। केवल चित्ररथ तथा इन्द्र का संवाद ही कुछ व्यापक है जो संक्षिप्त हो सकता था।

यह नाटक मुख्यतया वीर रस का है जैसा कि भवभूति ने प्रारम्भ में ही निर्देश किया है :

अप्राकृतेषु पात्रेषु यत्र वीरः स्थितो रसः।
भेदैः सूक्ष्मैरभिव्यक्तैः प्रत्याधारं विभज्यते ॥—१।३

तथा—

तेनेदमुद्धृतजगत्त्रयमन्युमूल-
मस्तोकवीरगुरुसाहसमद्भुतं च।
वीराद्भुतप्रियतया रघुनन्दस्य
धर्मद्रुहो दमयितुश्चरितं निबद्धम् ॥—१।६

[अप्राकृत पात्रों में वीर रस का समावेश हो एवं जो प्रत्येक पात्र में सूक्ष्म तथा अभिव्यक्त भेदों से स्पष्ट हो।—१।३

उन भवभूति ने वीर तथा अद्भुत रस प्रिय होने से धर्मद्रोहियों के लिये रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रका चरित्र लिखा। इसमें जगत्त्रय के दुःख का उन्मूलन वर्णित है तथा यह वीरता, महान् साहस के वर्णनों से पूर्ण तथा अद्भुत है। –१।६]

वीररस का वर्णन इस नाटक की महती विशेषता है। वस्तुतः सम्पूर्ण नाटक वीररस से ओत-प्रोत है। वाक्चातुर्य और पटुता का इसमें आश्रय नहीं। वीर की ही उद्दाम धारा सर्वत्र प्रवाहित है। ताटकादि के वध, परशुराम के साथ संवाद, वाली-युद्ध, लङ्का-युद्ध, आदि सभी दृश्य वीररस के ही परिचायक हैं। ओजोभूयिष्ठा वाणी में वीररस अपना विशेष महत्त्व रखता है। यद्यपि कुछ लोगों को इनके वीररस में त्रुटि दिखायी पड़ी है पर वस्तुतः यह कथन संगत नहीं है।

वीररस के अतिरिक्त भवभूति के इस नाटक में करुण-रस का भी सम्यक् चित्रण किया है। सीता-हरण के अनन्तर राम के विलाप में करुणरस की व्यञ्जना बड़ी ही सटीक हुई है। करुणरस तो वस्तुतः भवभूति का अपना क्षेत्र है। सीता-हरण होने पर राम के इस विलाप में करुण का प्रसार देखिये—

प्रिये हा हा कासि प्रकिर मधुरां वाचमथवा
पराभूतैरित्थं विलपन विनोदोऽप्यसुलभः।
अनिन्द्यः पौलस्त्यो व्रजति परिवादो भयि पुन-
र्यतो वैरे रूढे बहुगुणमनेन प्रतिकृतम् ॥ —५।२८

[हा प्रिये ! तुम कहाँ हो ? मीठी वाणी तो बोलो। अथवा मुझ जैसे निन्दितों के लिये वार्त्तालाप का सुख भी कहाँ सुलभ है ? रावण अनिन्द्य तथा मैं निन्द्य हूँ जिसने वैर होने पर अपना प्रतीकार किया।]

इसी प्रकार वाली के मारे जाने पर वानरों के इस विलाप में भी करुण का प्रभाव दर्शनीय है :

हा वीर हा मघवनन्दन मन्दराद्रि—
निष्कम्पसार जगदप्रतिमल्ल वीर।
उद्दर्पदुन्दुभिनिशुम्भपटुप्रचण्ड—
दोर्दण्डमण्डल गतोऽसि हहा हताः स्मः ॥ —५।६१

[हाय वीर ! हाय इन्द्रनन्दन ! मन्दराचल के समान अचल वीर्यवाले ! संसार में अप्रतिम मल्लयोद्धा ! उद्दण्ड दुन्दभि के मथन करने वाले बाहुदण्ड युक्त ! आप चले गये। हाय-हाय ! हम लोग मारे गये।]

राम-रावण के युद्ध के प्रसङ्गों में अद्भुत तथा वीभत्स रस भी दिखायी पड़ते हैं। शृंगार की एक रेखा परशुराम के आने पर भयभीत सीता को समझाते समय राम के इस वचन में मिलती है :

आतङ्कश्रमसाध्वस व्यतिकरोत्कम्पः कथं सह्यता—
मङ्गैर्मुग्धमधूकपुष्परुचिभिर्लावण्यसारैरयम्।
उन्नद्धस्तन युग्मकुड्मलगुरुश्वासावभुग्नस्यते
मध्यस्य त्रिवलीतरङ्गकजुषोभङ्गः प्रिये मा च भूत् ॥ —२।२१

पात्र तथा चरित्र की दृष्टि से भी यह नाटक उत्तम कोटि का है। यद्यपि भवभूति ने प्रारम्भ में ही 'अप्राकृतेषु पात्रेषु' (१।२) कहा है पर उनके पात्र इसी लोक के जीते जागते प्राणी हैं। उनमें लौकिक प्राणियों की ही नाईं नाना भावदशायें लक्षित होती हैं। यहाँ तक कि राम तक जिन्हें कवि ने अलका के मुख से परब्रह्म कहलाया है पञ्चम अङ्क में करुणरस में ओत-प्रोत हैं। यह सत्य है कि भवभूति के इस नाटक में भास के चारुदत्त अथवा शूद्रक के मृच्छकटिक जैसे अत्यन्त प्राकृतिक पात्र नहीं मिल सकते, और वैसा इस विश्व-विश्रुत आख्यान में किया भी नहीं जा सकता तथापि पात्रों की बहुत सी कोटियाँ इस नाटक में भी पाई जाती हैं। इनके चारित्र्य में विरोधों का दर्शन स्पष्ट है। एक ओर अत्यन्त उदात्तमना राम हैं जो शत्रु की प्रशंसा करने से भी नहीं चूकते तो दूसरी ओर बल से गर्वीला रावण है जो परस्त्री-हरण में भी सङ्कोच नहीं करता। एक ओर यदि उद्धत तपस्वी परशुराम हैं तो दूसरी ओर सर्वथा शान्तमना वसिष्ठ। अन्यपात्रों की स्थिति भी स्पष्ट है।

इस नाटक का काव्यचमत्कार भी अत्यन्त ऊँचा है । माल्यवान् ने जो नाटक की विभिन्न घटनाओं की समानता वृक्ष के विभिन्न अवयवों से दी है वह बड़ी ही मनोरम तथा सम्पूर्ण नाटक के इतिवृत्त की परिचायिका है :

बीजं यस्य विदेहराजतनयायाञ्चाङ्कुरोऽपि स्वसु—
यत्रा तौ परिवञ्चितुं किसलयं मारीचमायाविधिः ।
शाखाजालमयोनिजापहरणं तस्य स्फुटं कोरकाः
कोशाधीशवधोऽनुजस्य गमनं सख्यं तयोस्तेन च ।।—६।१

[सीता की प्रार्थना ही इस वृक्ष का बीज है, सूर्पणखा का राम-लक्ष्मण की वञ्चना के लिये जाना ही अङ्कुर है, मारीच की माया किसलय है, सीता का अपहरण शाखायें हैं, बालि का वध एवं विभीषण का वहाँ जाना तथा उनदोनों की मैत्री ही इसके कोरक हैं ।]

कितनी सुन्दर कल्पना है । सारी नाटकीय घटना को एकत्र स्थापित कर दिया गया है ।

जितनी सूक्ष्मता तथा वारीकी से भवभूति ने मानव-हृदय का चित्रण किया है वह कम ही मिलता है । विश्वामित्र के द्वारा ताटका-वध में राम के नियुक्त किये जाने पर सीता के मन में जो स्वाभाविक भाव उत्पन्न होता है वह मानव प्रकृति के सूक्ष्म अन्वीक्षण का निदर्शक है । करुण-रस के प्रसङ्ग भी इसी प्रकार के हैं ।

कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का भी बड़ी सूक्ष्मदर्शिता तथा तन्मयता के साथ वर्णन किया । सप्तम अङ्क में पुष्पक-विमान पर आरूढ़ होकर लङ्का से लौटते समय विभिन्न प्रदेशों का बड़ा ही मनोरम वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है । हिमालय का वर्णन देखिये—

एते ते सुरसिन्धुधौतदृषदः कर्पूरखण्डोज्ज्वलाः
पादा जर्जरभूर्जवल्कलभृतो गौरीगुरोः पावनाः ।
तत्त्वालोकनिरस्तमोहतमसामध्यात्मविद्याजुषां
यत्रब्रह्मविदां निसर्गमधुरं जागर्ति सौम्यं महः ।। —७।२७

[पुराने भूर्ज वृक्ष से व्याप्त हिमालय के ये पवित्र प्रदेश हैं जिनके शिला-खण्डों को देवापगा गङ्गा धो रही हैं तथा जो कर्पूर खण्ड की भाँति उज्ज्वल हैं । अध्यात्मविद्या में संलग्न रहने वाले ब्रह्मज्ञानियों का सौम्य तेज यहाँ प्रसृत हो रहा है जिन्होंने तत्त्वज्ञान से मोहान्धकार को दूर हटा दिया है ।]

उदय तथा अस्त गिरि का यह एकत्र वर्णन देखिये—

उदयास्ताचलावेतौ यत्क्रोडे बाल्यवार्धके।
विस्रम्भाच्चन्द्रसूर्याभ्यामतीयेते विनिर्भयम् ॥ —७।२३

रावण के द्वारा सीता का हरण किये जाने पर राम करुणा और क्रोध से भर जाते है। बेचारी सीता जो उनकी सहचारिणी थीं हर ली गयीं। शत्रु रावण ने तो उचित प्रतीकार कर लिया। इस शोक से राम जले जा रहे हैं :

न्यक्कारो हृदि वज्रकील इव में तीव्रः परिस्पन्दते
घोरान्धे तमसीव मज्जति मनः संमीलितं लज्जया।
शोकस्तातविपत्तिजो दहति मां नास्त्येव यस्मिन् क्रिया
मर्माणीव पुनश्छिनत्ति करुणा सीतां वराकीं प्रति ॥ —५।२२

[यह तिरस्कार मेरे हृदय में वज्रकील की भाँति पैठा हुआ है। लज्जित मेरा मन घोरान्धतमस् में गोते लगा रहा है। तात जटायु के ऊपर आयी विपत्ति का सन्ताप मुझे जला रहा है और उसके प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं। बेचारी सीता के प्रति करुणा तो मर्मस्थलों का छेदन कर रही है।]

लक्ष्मण जब उन्हें सान्त्वना देते हुये कहते हैं कि आप लोकोत्तरकर्मा हैं। आप के लिये शोक उचित नहीं, तो राम का उत्तर नितान्त अद्वितोय है :

यैर्गुप्तान्यकुतोभयानि भुवनान्यासन्महाभीषव—
स्ते सूर्यान्वयकेतवो नृपतयः पूव तिरस्कारिताः।
कल्पान्तेष्वपि यः स्थिरः स गमितः साधुर्जटायुर्दिवं
पत्नीं हारयता वने यदकृतं लोकैः कृतं तन्मया ॥ —५।२३

[जिन मेरे पूर्वज तेजस्वी सूर्यवंशी राजाओं ने संसार को निर्भय कर उस पर शासन किया उनको मैंने तिरस्कृत कर दिया—उनकी प्रतिष्ठा मैंने गिरा दी, यदि स्त्री को ही निर्भय नहीं कर सका तो लोक की क्या बात ? जो महात्मा जटायु कल्पान्त में भी जीवित रहे उन्हें मैंने मृत्यु के हवाले करवाया और वन में पत्नी का हरण कराने वाला मैंने वही किया जो लोक ने नहीं किया।]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महावीरचरित संस्कृत नाटक साहित्य की एक उत्कृष्ट कृति है जिसमें वर्धिष्णु नाटककार ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। कथानक का संविधान, संवाद, चरित्राङ्कन, काव्य-चमत्कार आदि भी प्रशंसनीय है।

तृतीय प्रकरण

मालतीमाधव

मालतीमाधव महाकवि भवभूति की द्वितीय नाटच-कृति है। जहाँ महावीर-चरित का प्रधानरस वीर तथा उत्तरचरित का करुण है, वहाँ इस नाटक का प्रधान-रस श्रृंगार है। रसराज श्रृंगार का इस नाटक में आश्रय लेकर महाकवि ने मालती और माधव की प्रणय-कथा चित्रित की है। इस नाटक का विस्तार दश अङ्कों में है। इस विपुलकाय नाटक की कथावस्तु इस प्रकार है :

प्रथम अङ्क—प्राचीनकाल में भूरिवसु तथा देवरात नामक दो ब्राह्मण-विद्यार्थियों में घनिष्ठ मित्रता थी। मित्रता में हो दोनों ने निश्चय किया कि यदि एक को पुत्र तथा दूसरे को पुत्री उत्पन्न होगी तो परस्पर एक दूसरे का परिणय करेंगे। उनकी यह मंत्रणा बौद्ध संन्यासिनी योगिनी कामन्दकी तथा उसकी शिष्या सौदामिनी को भी विदित थी। समय से उन दोनों ब्राह्मणों को मन्त्रिपद प्राप्त हुआ—भूरिवसु पद्मावती के अधीश्वर के मंत्री हुये तथा देवरात ने विदर्भ-नरेश के अमात्य पद को सुशोभित किया। संयोगवश भूरिवसु को कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम मालती रखा गया और देवरात को पुत्र हुआ जिसका नाम माधव पड़ा।

प्रस्तावना के अनन्तर बौद्ध संन्यासिनी कामन्दकी तथा उसकी शिष्या अवलोकिता रङ्गमञ्च पर दिखायी पड़ती हैं। कामन्दकी अवलोकिता से पूछती है कि क्या मालती-माधव का परिणय उसे अभिमत है ? अवलोकिता को इस पर आश्चर्य होता है कि सारी इच्छाओं का परित्याग करने वाली कामन्दकी ऐसे काम में क्यों पड़ती हैं। भूरिवसु का उसे ऐसे काम में नियुक्त करना ठीक नहीं। कामन्दकी कहती है कि पूज्य भूरिवसु ने जो उसे इस कार्य में नियुक्त किया है वह उनके स्नेह का परिणाम है। वह अपने प्राणों और तपस्याओं से मित्र का कार्य निष्पन्न कराने के लिये कटिबद्ध है। उसे यह भी स्मरण है कि भूरिवसु तथा देवरात उसके सामने ही अपना अपत्य-सम्बन्ध करने के लिए वचनबद्ध हुये थे। देवरात ने भूरिवसु को वह प्रतिज्ञा भी स्मरण दिलायी है। इस पर अवलोकिता को शङ्का होती है कि यदि दोनों प्रतिज्ञाबद्ध हैं तथा उसका स्मरण भी है तो फिर प्रत्यक्ष सम्बन्ध क्यों नहीं स्थापित कर लेते ? कामन्दकी बताती है कि भूरिवसु के राजा का सहचर नन्दन राजा के माध्यम से मालती को मांग रहा

है अतः यह प्रत्यक्ष सम्बन्ध संभव नहीं है इसी लिये भूरिवसु परोक्ष मार्ग का अवलम्बन कर रहे हैं। देवरात ने भी न्याय-विद्याका अध्ययन करने के लिये कुण्डिनपुर से माधव को पद्मावती भेजा है। कामन्दकी यह भी कहती हैं कि मालती और माधव का अनुराग यद्यपि लोक में फैल रहा है पर इससे राजा और नन्दन को प्रतारित करना। उचित है क्योंकि अद्वितीय विद्वान् के लिये आकार-गोपन उचित है। अवलोकिता बताती है कि वह कामन्दकी की आज्ञा से माधव का आवागमन मालती के घर में कराती है। मालती माधव को प्रगाढ़ उत्कण्ठा से देखती है। मालती की विरहवेदना के परिहार के लिए उसे माधव की मूर्ति दे दी गई है। अवलोकिता कामन्दकी से कहती है कि उसने मदनमहोत्सव देखने के लिये माधव को मदनोद्यान में भेजा है जहाँ मालती भी जायेगी और इस प्रकार दोनों का परस्पर साक्षात्कार होगा।

इसके बाद हाथ में चित्रफलक लिये कलहँस दिखायी पड़ता है, वह माधव की खोज में है। माधव का मित्र मकरन्द भी माधव को मदनोद्यान में गया जान उसके पास जा रहा है। माधव दिखायी पड़ते हैं। मालती की चिन्ता उन्हें सता रही है। मकरन्द भी उसके पास पहुँच जाता है। माधव को उन्मनस्क तथा चिन्तित देख मकरन्द उससे पूछता है कि कहीं वह भी तो पुष्पधन्वा का लक्ष्य नहीं बन गया ? माधव छिपाना चाहता है पर मकरन्द के आग्रह से उसे बताना पड़ता है कि उसने एक युवती कन्या को देखा है जो सौन्दर्य की राशि है। उसका कामदेव ने चन्द्रकला, मृणाल, ज्योत्स्नादि से निर्माण किया है। उसमें मेरा मन आसक्त हो गया। इसका कारण ज्ञात नहीं ? मकरन्द कहता है कि प्रेम बाह्य कारणों के आश्रित नहीं होता, इसका कोई आन्तरिक कारण होता है। माधव बताता है कि सखियों की प्रेरणा से मालती ने इसकी ओर देखा। मालती ने मुझे देखकर शृंगार भाव को प्रकट किया और उसकी कामवशीभूत होने की भावना ज्ञात हुई। एक वारवनिता ने आकर मुझे बताया कि यह अमात्य भूरिवसु की कन्या है। उसने मेरी माला ले ली। इसी समय कलहंस उन लोगों के पास जाता है और माधव का चित्र उन्हें देता है। वह यह भी बताता है कि उस चित्र को मालती ने बनाया है। यह चित्र उसने उत्कण्ठा दूर करने के लिये बनाया है। माधव उसी फलक पर मालती का चित्र बना देता है। इसी समम मन्दारिका वहाँ आती है, चित्रफलक ले लेती है। उसे पता चलता है कि उस फलक पर मालती के चित्र को माधव ने बनाया है। वह बताती है कि मालती ने माधव को अपने प्रासाद के निकट से जाते हुये देखा है। मन्दारिका और कलहंस चले जाते हैं। माधव और मकरन्द भी विरह-व्यथा कहते-सुनते हटते हैं।

द्वितीय अङ्क--द्वितीय अङ्क के प्रवेशक से पता चलता है कि बौद्ध संन्यासिनी कामन्दकी अपनी शिष्या अवलोकिता के साथ मालती के पास गयी है। मालती और लवङ्गिका भी दिखायी पड़ती हैं। लवङ्गिका उससे बताती है कि किस प्रकार वह मन्दारिका के घर चित्र छोड़ आयी और मदनिका के प्रेमी कलहंस के वह हाथ लगा। वह बताती है कि माधव भी उसके विरह में उन्मत्त है। मालती पिता-माता की अपनी अधीनता बताकर अपनी असमर्थता प्रकट करती है। उनकी इस चर्चा के समय ही कामन्दकी तथा अवलोकिता भी वहाँ आ जाती हैं। प्रणामाशीर्वाद के अनन्तर कामन्दकी की भारी आवाज को सुनकर लवङ्गिका उसकी चिन्ता का कारण पूछती है। कामन्दकी बताती है कि मालती का परिणय अयोग्य वर के साथ हो रहा है इसी से वह खिन्न है। लवङ्गिका कहती है कि राजा के वचन का आदर करते हुये भूरिवसु अपनी कन्या का दान नन्दन को करेंगे इसलिये सभी लोग उनकी जुगुप्सा कर रहे हैं। कामन्दकी कहती है कि वर में अपेक्षित गुणों का विचार न कर अमात्य ने यह सम्बन्ध कैसे स्वीकार किया अथवा कूटिनीतिज्ञों को अपत्य-स्नेह ही कहाँ होता है अथवा हो सकता है कन्यादान से वे नन्दन को मित्र बनाना चाहते हैं। लवङ्गिका भी कहती है, कि उस दुर्दर्शन नन्दन को जो वृद्ध हो गया है कन्या देने का निश्चयकर अमात्य ने बड़ा ही अनुचित किया। मालती की प्रतिक्रिया पिता के प्रति विपरीत होती है और उसका सन्ताप बढ़ जाता है। लवङ्गिका इस अनर्थ से मालती की रक्षा के लिये कामन्दकी से प्रार्थना करती है। कामन्दकी कहती है कि इस विषय में पिता और भाग्य ही नियामक है। प्राचीन काल में शकुन्तला ने दुष्यन्त को और उर्वशी ने पुरूरवा को आत्मसमर्पण किया था। पर, यह साहस का कार्य है। भूरिवसु नन्दन के हाथ कन्यादान कर सुखी हों। कामन्दकी यह सुनाकर जाना चाहती है पर मात्र मालती में उत्सुकता जागरूक करने के लिये लवङ्गिका उससे माधव का जन्मवृत्तान्त पूछती है। कामन्दकी बताती है कि वह देवरात का पुत्र है जो भूरिवसु के सहपाठी थे। देवरात का पुत्र माधव अपने बाल्यमित्र मकरन्द के साथ यहाँ आन्वीक्षिकी विद्या का अध्ययन करने आया है। मालती को अपने पिता के प्रति यह सुनकर विरक्ति होती है जो केवल राजा की आराधना के निमित्त उसे वयस्क नन्दन के हाथ सौंपने का निश्चय कर बैठे हैं। कामन्दकी भी उठकर जाती है। उसे सन्तोष है कि उसने एक ही साथ सभी काम कर दिये—भूरिवसु तथा नन्दन के प्रति मालती की अश्रद्धा तथा माधव के प्रति अनुरक्ति का उत्पादन एवं शकुन्तला आदि प्राचीन इतिवृत्तों के उदाहरण द्वारा पिताकी अनुमति के अभाव में भी कन्याओं द्वारा प्रियतमों को आत्मसमर्पण।

तृतीय अङ्क—तृतीय अङ्क के प्रवेशक से पता चलता है कि कामन्दकी ने अपनी शिष्या बुद्धरक्षिता को मदयन्तिका (नंदन की बहन) के पास भेजा है। वह चाहती है कि माधव के मित्र मकरन्द का व्याह मदयन्तिका के साथ हो जाय। बुद्धरक्षिता उसके पास जाकर मकरन्द के गुणों की प्रशंसा करती है जिससे मदयन्तिका मकरन्द को देखने के लिये उत्सुक हो जाती है। इधर आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है अतः मालती अपनी माता के साथ शिवमंदिर जायेगी अतः माधव को भी कामन्दकी वहीं पहले से भेज देती है। मदयन्तिका भी बुद्धरक्षिता के साथ वहीं जानेवाली है।

कामन्दकी अपनी नीतियों की सफलता को देखकर प्रसन्न होरही है। मालती और लवङ्गिका दिखायी पड़ती हैं। मालती को अपने पिता के निश्चय से क्षोभ है। लवङ्गिका कुसुमोद्यान का वर्णन कर कामोद्दीपन करती है। माधव भी दिखायी पड़ता है और उसके सामने कामन्दकी भी प्रकट होती है। वह लवङ्गिका तथा मालती को भी देखता है। मालती के सौन्दर्य को देखकर उसका मन अधीर हो उठता है। मालती कुब्जक वन में पुष्पावचय करने लगती है। मालती थक जाती है और कामन्दकी तथा लवङ्गिका के साथ वह बैठ जाती है। कामन्दकी उससे माधव के सौन्दर्य की प्रशंसा कर बताती है कि वह मालती के दर्शन होने के बाद विरह वेदना से अस्वस्थ हो गया है। यह भी कोई असम्भव नहीं कि वह मृत्यु का वरण करले। दूसरी स्त्री के प्रति उसे ऐसे क्लेश का कभी अनुभव नहीं है अतः वह इस नये क्लेश से विपन्न है। लवङ्गिका भी मालती की विरहदशा का उसी मनोयोग से वर्णन करती है जिस सतर्कता से कामन्दकी ने माधव की विरह गाथा गायी। उसके इस वर्णन से माधव की उत्कण्ठा में वृद्धि होती है। लवङ्गिका बताती है कि माधव-निर्मित पुष्पमाला को मालती ने अपने गले में डाल रखा है जो उसके स्तनों पर लटक रहा है।

इसी समय नेपथ्य में कलरव सुनायी पड़ता है। नेपथ्य से शब्द सुनायी पड़ता है कि भयङ्कर व्याघ्रराज पिंजड़े से बाहर निकल आया है और प्राणिसंहार कर रहा है। अतः सभी लोग अपने प्राणों की रक्षा के लिए सचेष्ट हो जायँ। भागती दौड़ती बुद्धरक्षिता चिल्ला रही है कि उसकी सखी नन्दनभगिनी मदयन्तिका पर वह व्याघ्र टूट पड़ा है अतः उसकी रक्षा करो। माधव व्याघ्र का प्रतिरोध करने के लिये सन्नद्ध होता है। इसी बीच लोग देखते हैं कि मकरन्द किसी मृतक व्यक्ति के आयुध को लेकर व्याघ्र से भिड़ जाता है। वह व्याघ्र को मार डालता है पर मरते-मरते व्याघ्र उस पर ऐसी चपेट मारता है कि वह भी मूर्च्छित हो जाता है। सभी लोग दुःखी होते हैं।

चतुर्थ अङ्क—चतुर्थ अङ्क में पता लगता है कि माधव और मकरन्द दोनों मूर्छित हो गये हैं और मालती तथा मदयन्तिका उनको सहारा दिये हुये हैं। उनकी परिचर्या तथा कामन्दकी द्वारा जल-सेचन होने पर दोनों संज्ञालाभ करते हैं। बुद्धरक्षिता मकरन्द को दिखाकर मदयन्तिका से बताती है कि वही वह व्यक्ति है जिसकी प्रशंसा वह करती है। इसी समय नन्दन के यहाँ से कोई व्यक्ति आकर कहता है कि राजा ने भूरिवसु की कन्या मालती और नन्दन का विवाह निश्चित किया अतः मङ्गल मनाने के लिये मदयन्तिका घर चले। यह सुनकर मालती और माधव दुःखी होते हैं। मदयन्तिका मकरन्द के पुनर्दर्शन की आकांक्षा प्रकट कर बुद्धरक्षिता के साथ चली जाती है। इस वृत्तान्त से माधव की दयनीय दशा को देखकर कामन्दकी उसे समझाती है कि वस्तुतः भूरिवसुने नन्दन को मालती का दान नहीं किया है। यह दान तो राजा ने किया है और धर्मशास्त्र के अनुसार कन्यादान का अधिकारी राजा नहीं होता अपितु पिता होता है।

महारानी की आज्ञा से कामन्दकी भी मालती को लेकर चली जाती है। मालती अपने शरीर-फल को व्यर्थ मान रही है। माधव मालती की प्राप्ति के लिये नृमांस विक्रय का निश्चय करता है। वरदा और सिन्धु नदियों के संगम में स्नान कर वे नगर में जाते हैं।

पञ्चम अङ्क—आकाश-मार्ग से भयङ्कर तथा प्रोद्भासित आकृति वाली योगिनी कपालकुण्डला प्रवेश करती है। वह श्री पर्वत से करालायतन (कराला देवी के मंदिर) में आयी है। वह खड्गधारी माधव को देखती है जो हाथ में विक्रय के लिये नरमास लिये हुये है। वह पहचान लेती है कि यह देवरात का पुत्र माधव है। माधव मालती के बारे में सोच-विचार कर रहा है। मालती का सौन्दर्य उसके चित्त में समाया हुआ है। वह पिशाचों का कलरव तथा श्मशान की भयङ्करता को देखता हैं। वह भयङ्कर तथा वीभत्स श्मशान भूमि को देखता है तथा चिल्ला-चिल्लाकर भूतों को नृमांस लेने के लिए आहूत करता है। पर कोई उसके पास नहीं आता। करालायतन से स्त्री की करुणध्वनि सुनायी पड़ती है और वह वहीं दौड़ जाता है। वह वध्यचिह्न से युक्त मालती, कपालकुण्डला योगिनी तथा अघोरघण्ट को देखता है। मालती अपने पिता को कोस रही है जो उसको दाव पर रख कर राजा का आराधन कर रहे हैं। वह अपनी माता तथा कामन्दकी का भी स्मरण कर रही है। माधव उसको बचाने का निश्चय करता है।

कपालकुण्डला तथा अघोरघण्ट देवी की स्तुति करते हैं। स्तुति के अनन्तर कपालकुण्डला मालती से कहती है कि वह अन्तिम समय अपने प्रिय का स्मरण

करे। मालती माधव का स्मरण करती है। कपालकुण्डला मालती को मारना ही चाहती है कि माधव सहसा पहुँच कर उसे रोकता है औरमालती को अभयदान देता है। वह मालती को बताता है कि उसी की अवाप्ति के लिये उसने नरमांस विक्रय का कर्म किया। कपालकुण्डला अघोरघण्ट से माधव का परिचय देती है। अघोरघण्ट तथा माधव में विवाद होता है और दोनों युद्ध करने लगते हैं। इसी समय कामन्दकी की आज्ञा से भूरिवसु के परिचर कराला देवी के मन्दिर को घेर लेते हैं। कामन्दकी ने बता दिया है कि अघोरघण्ट को छोड़कर और कोई ऐसा भयङ्कर कर्म नहीं कर सकता। माधव और अघोरघण्ट परस्पर प्रहार करते हैं।

षष्ठ अङ्क——इसके प्रारम्भ में पता लगता हैं कि माधव के प्रहार से अघोर-घण्ट मृत्यु के हवाले कर दिया गया। इस घटना से अत्यन्त प्रकुपिता कपाल-कुण्डला मालती तथा माधव से प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा करती हैं। मालती के विवाह की सारी क्रियायें सम्पन्न की जा रही हैं। वरयात्रिक के न आने तक मालती को देवायतन में रहने का कामन्दकी ने आदेश दिया है। इधर कपाल-कुण्डला भी माधव के अनिष्ट के लिये सन्नद्ध है। कामवेदना से विदग्ध माधव भी मालती की चिन्तना करते दिखायी पड़ता है। वह देवायतन में आयी मालती को देखता है। मालती भी लवङ्गिका और कामन्दकी के साथ हथिनी से उतरकर देवायतन में प्रविष्ट होती है। राजा के द्वारा भेंजे गये अलङ्कारों को लेकर प्रतीहारी आती है और उनसे मालती को अलंकृत करने के लिये कामन्दकी से कहती है। प्रतिहारी चली जाती है और कामन्दकी भी लवङ्गिका तथा मालती को भीतर प्रविष्ट होने के लिये कहकर बाहर चली आती है। मालती और लवङ्गिका भीतर प्रविष्ट होती हैं। मालती नन्दन के साथ विवाह के उपक्रम से अन्यन्त खिन्न है और प्राणत्याग का निश्चय करती है। लवङ्गिका समीप बैठे माधव को संकेत से बुलाती है। मालती माधव को लवङ्गिका समझकर उसका आलिङ्गन करती है। मालती की, आँखें आसुओं से भरी हैं अतः वह माधव का मुख नहीं देख रही है। वह माधवनिर्मित बकुलमाला को भी माधव के गले में डाल देती है। इसी समय वह माधव को पहचान कर आलिङ्गन छोड़कर संकुचित हो जाती है। वह कहती है कि लवङ्गिका ने उसे प्रतारित किया। मकरन्द तथा लवङ्गिका उसे समझाते हैं और लवङ्गिका उससे माधव के हाथ आत्मसमर्पण करने को कहती है। मालती इसका अनुमोदन नहीं करती। इसी समय वहाँ कामन्दकी भी पहुँच जाती है। वह भी मालती और माधव के परिणय का अनुमोदन करती है और कहती है कि इसी में ब्रह्मा की सृष्टि का साफल्य है।

कामन्दकी माधव के हाथ मालती को समर्पित कर देती है। वह दोनों को परस्पर धर्म का भी उपदेश देती है। वह मकरन्द को भी मालती का वेश धारण कर नन्दन की प्रतारणा तथा मदयन्तिका के साथ मकरन्द के परिणय के लिये सन्नद्ध करती है। कामन्दकी माधव तथा मालती को समीपस्थ उद्यान में विवाह-मङ्गल के लिये भेज देती है जहाँ अवलोकिता ने पहले से ही सम्भार प्रस्तुत कर रखे हैं। कामन्दकी, लवङ्गिका तथा मालती वेशधारी मकरन्द चले जाते हैं।

सप्तम अङ्क—कामन्दकी की बुद्धिकुशलता ने नन्दन की शादी मकरन्द से करायी। जब नन्दन सुहागरात मनाने गये तो मकरन्द ने दृढ़ता से उन्हें फटकार दिया। नन्दन चरणों पर भी गिरे। अन्ततः क्रुद्ध नन्दन मालती को चरित्रहीन कहकर शपथ खाकर वहाँ से चला गया। बुद्धरक्षिता मकरन्द तथा मदयन्तिका की शादी कराने के उद्देश्य से मदयन्तिका को वहाँ लाती है, यद्यपि मदयन्तिका को यह वृत्तान्त ज्ञात नहीं है और वह मालती को उपालम्भ देने की दृष्टि से ही आयी है। मदयन्तिका के आने पर मकरन्द सोने का बहाना कर लेता है। बुद्धरक्षिता तथा लवङ्गिका नन्दन पर आक्षेप करती हैं कि उसने बल से मालती को वश करना चाहा। मदयन्तिका उन दोनों को समझाती है कि नन्दन द्वारा कठोर वचन कहने का कारण मालती और माधव के प्रणय का परिवाद है। मदयन्तिका मकरन्द के प्रति अपनी आसक्ति का वर्णन करती है। मकरन्द के वियोग में अपनी मनोदशा का वह स्पष्टता के साथ वर्णन करती है। बुद्धरक्षिता मदयन्तिका से पूछती है कि यदि इस समय मकरन्द मिल जायँ तो वह क्या करेगी? मदयन्तिका आत्मनिवेदन करने का वचन देती है। इसी समय मकरन्द प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लेता है। मदयन्तिका के साथ सभी लोग उस स्थान के लिये प्रस्थान करते हैं जहाँ मालती और माधव गये हुये हैं।

अष्टम अङ्क—मालती, माधव तथा अवलोकिता बैठें हुये हैं। मालती कुछ खिन्न सी है और माधव उसे प्रणय-सम्भाषण से अनुकूल बनाने का प्रयास कर रहा है। लवङ्गिका का समाचार न मिलने से मालती रोने लगती है। माधव मदयन्तिका तथा मकरन्द के परिणय के विषय में अवलोकिता से पूछता है और अवलोकिता बताती है कि व्याघ्र-मारने के दिन से ही मदयन्तिका मकरन्द में अतिशय अनुरक्ता है अतः उनका परिणय अवश्य होगा। कलहंस नन्दन के घर का वृत्तान्त लेकर लौटता है। कलहंस मदयन्तिका, अवलोकिता, तथा बुद्धरक्षिता के साथ प्रवेश करता है। ये लोग बताते हैं कि मकरन्द को नगर की रक्षा करने वाले पुरुषों ने रोक लिया है। माधव यह सुनकर कलहंस के साथ मकरन्द की

सहायता के लिये चला जाता है। मालती भगवती कामन्दकी को इसकी सूचना देने के लिये अवलोकिता तथा बुद्धरक्षिता को भेज देती है। अब केवल मदयन्तिका तथा मालती रह जाती हैं। मालती कुछ आगे बढ़ती है। इसी समय कपालकुण्डला वहाँ आती है और कटुवचन कहकर मालती को उठा ले जाती है। मदयन्तिका को भी इसका पता नहीं। लवङ्गिका नगर से आती है और कहती है कि नागरिकों के मुख से उसने सुना है कि मकरन्द तथा माधव वीरता से लड़ रहे हैं और महाराज प्रासाद से उनका युद्ध देखते हैं। वे दोनों मालती को पुकारती हैं। कलहंस आकर बताता है कि राजा ने उनकी वीरता से प्रसन्न होकर निर्मत्सर-भाव से भूरिवसु तथा नंदन को उन्हें अपना दामाद बनाने की आज्ञा देते हैं। मकरन्द और माधव भी आते हैं। वहाँ मालती को न पाकर सभी दुःखित होते हैं। माधव अत्यन्त विह्वल हो जाता है। सभी लोग कामन्दकी के पास जाते हैं।

नवम अङ्क—कामन्दकी की प्राचीन शिष्या सौदामिनी भयङ्कर कर्मनिरता कपालकुण्डला से मालती की रक्षा कर माधव को खोजने निकली है। वह आकाशमार्ग से चल रही है। वह माधव को ढूँढते पद्मावती पहुँची है पर वहाँ उसे पता चलता है कि विरही माधव मकरन्द के साथ दुर्गम स्थान को चला गया है। वह उसी का अन्वेषण कर रही है। वह पद्मावती नगरी तथा लवणा एवं सिन्धु नदियों के रमणीय दृश्यों को देखते हुये वहाँ से चलती है। इसी समय रङ्गमञ्च पर करुणापन्न माधव तथा मकरन्द दिखायी पड़ते हैं। माधव मालती के वियोग में विलाप कर रहा है। मकरन्द उसे मनोरम प्राकृतिक दृश्यों को दिखाकर उसके चित्त को दूसरी ओर उन्मुख करना चाहता है। पर माधव का मन मालती में आसक्त होने से उसी का पुनः-पुनः स्मरण करता है। वह मालती के विरह में संज्ञाशून्य हो जाता है। मकरन्द उसकी इस दशा से अत्यन्त विपन्न हो जाता है। अपने प्राणप्रिय मित्र की इस दशा से उसके दुःख की सीमा नहीं रहती। माधव पुनः चैतन्य प्राप्त करता है। पर्वत, मयूर, चकोर आदि नाना पदार्थों तथा प्राणियों को देखकर उसके दुःख की सीमा नहीं रहती। अपने मित्र मकरन्द का आलिङ्गन कर वह पुनः निश्चेष्ट हो जाता है। माधव की इस म्रियमाण दशा को देखकर अब मकरन्द से नहीं रहा जाता। वह अपने मित्र की, जिसके साथ उसने बाल्यकाल से दिन बिताये हैं, मृत्यु नहीं देखना चाहता। वह पर्वत से कूदकर आत्महत्या करने का निश्चय करता है। इस साहसिक कर्म के लिये ज्यों ही वह उद्यत होता है कि उसी समय वहाँ ढूंढते-ढूंढते सौदामिनी पहुँच जाती है। वह मकरन्द को इससे विरत करती है और मालती के जीवित होने का समाचार बताती है। माधव को अचेत सुन वह झटपट मकरन्द के साथ वहाँ

पहुँचती है। मालती के चिह्नस्वरूप बकुलमाला को देती है और कपालकुण्डला के चङ्गुल से मालती को बचाने का समाचार माधव को सुनाती है। वह अपनी सिद्धि के प्रभाव से मकरन्द को श्रीपर्वत पर उड़ा ले जाती है। मकरन्द भी स्तब्ध हो जाता है और यह वृत्तान्त कामन्दकी को सुनाने चला जाता है।

दशम अङ्क—मालती, माधव तथा मकरन्द के वियोग में कामन्दकी, लवङ्गिका तथा मदयन्तिका की दशा भी शोचनीय हो गयी है। वे करुण-विलाप कर रही हैं। इस दुर्दान्त दुःखका अन्त न देखकर वे सब मरण का निश्चय कर लेती हैं। इधर भूरिवसु भी अपनी कन्या के दुःख में व्याकुल होकर राजा और नन्दन के निवारण करने पर भी अग्निप्रवेश के लिये उद्यत हो जाते हैं। इस प्रकार सब के मरण के लिये सन्नद्ध होते ही मालती, माधव तथा मकरन्द को साथ ले सौदामिनी वहाँ पहुँच जाती हैं। वह स्वयं जाकर भूरिवसु को आत्महत्या से विरत करती है। इधर माधव, मालती और मकरन्द के आजाने से कामन्दकी आदि भी प्रसन्न हो जाती हैं। इन लोगों को पता लगता है कि कैसे कपालकुण्डला से मालती की रक्षा हुई। सौदामिनी भी आकर कामन्दकी को प्रणाम करती है। इसी समय राजा के यहाँ से पत्र आता है जिसमें वे मदयन्तिका तथा मकरन्द के परिणय का अभिनन्दन करते हैं। सबका प्रेम-मिलन होता है। अवलोकिता, बुद्धरक्षिता और कलहंस भी वहाँ पहुँच जाते हैं। कामन्दकी बताती है कि भूरिवसु तथा देवता ने अपनी छात्रावस्था में ही कामन्दकी तथा सौदामिनी के सामने अपनी सन्तानों का परस्पर व्याह करने का निश्चय किया था। वह पूरा हो गया। परम आनन्दित होते हैं। मंगल-वचन के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक का नामकरण

इस नाटक का नाम स्पष्ट है। मालती-माधव की प्रणय-कथा का आश्रय लेकर इस नाटक की रचना की गई है। वे ही इस नाटक के नायक-नायिका हैं। अतः इस नाटक का मालती-माधव नामकरण समीचीन है। अन्य पात्र सहायक वा गौण हैं तथा मुख्य पात्रों के चरित्र में तथा उनसे सम्बद्ध कथा के उत्कर्षाधायक और परिपोषक हैं। अतः इस नाटक का नाम 'मालतीमाधवम्' रखा गया है।

कथावृत्त का आधार

यद्यपि शास्त्रीय शब्दावली में भवभूति का यह नाटक प्रकरण कहा जायेगा और समग्र दृष्टि से विचार करने पर इसकी कथावस्तु भी भवभूति की प्रतिभा-

प्रोद्भूत ही है तथापि बहुत संभव रूप में भवभूति ने अपनी कथा का आधार, गुणाढ्य की बृहत्कथा से लिया है। जैसा कि बृहत्कथामंजरी तथा कथासरित्सागर से हमें ज्ञात है, बृहत्कथा में छद्म विवाह तथा मंदिर मार्ग से भगाने के तीन पृथक्-पृथक् आख्यान उपलब्ध हैं! संभव है भवभूति ने इन्हीं आख्यानों से प्रेरणा लेकर अपनी कथावस्तु का निर्माण किया हो।

चरित्र-चित्रण

माधव—अमात्य देवरात का पुत्र माधव सुन्दर युवा तथा गुणों का आगार है। शास्त्रीय दृष्टि से वह धीरप्रशान्त नायक की कोटि में आता है। धीरप्रशान्त नायक ब्राह्मण अथवा वैश्य जाति का होता है और वह कलाप्रेमी होता है। प्रकरण का नायक धीरप्रशान्त होता है। माधव में लोकोत्तर गुण हैं जिसका परिचय प्रथम अङ्क में ही कामन्दकी के वचन से मिलता है।

अलोकसामान्यगुणस्तनूजाः प्ररोचनार्थं प्रकटीकृतश्च ॥—१।११

उसके पिताने उसे न्यायशास्त्र के अध्ययन के लिये पद्मावती नगरी में भेजा जहाँ वह मालती के प्रेम का विषय बन जाता है। प्रथम अङ्क (१।१९) में जब उसका प्रथम दर्शन होता है तो वह मालती की चिन्तना करते पाया जाता है। मालती के प्रथम दर्शन से वह उसके अप्रतिम सौन्दर्य के वशीभूत हो जाता है। मालती की सहचरी दासी लवङ्गिका के मांगने पर अपनी वकुलमाला उसे सौंप देता है। उसकी मालती में आसक्ति इतनी बढ़ गयी है कि शरीरदशा ठिकाने नहीं रहती (१।४२। कामन्दकी माधव की शरीरदशा का जो वर्णन करती है उससे उसके शरीर-सौंदर्य तथा कामवेदना का बड़ा ही सटीक तथा प्राञ्जल परिचय प्राप्त होता है :

यदिन्दावानन्दं प्रणयिनि जने वा न भजते
व्यनक्त्यन्तस्तापं तदयमतिधीरोऽपि विषमम्।
प्रियङ्गुश्यामाङ्गप्रकृतिरपि चापाण्डु मधुरं
वपुः क्षामं क्षामं वहति रमणीयश्च भवति ॥—३।९

[जो चन्द्रमा या प्रीतिपात्र जन में आनंदित नहीं होता है इस कारण अत्यन्त धैर्यवान् होकर भी इस विषम आन्तरिक ताप (कामदशा) को प्रकट करता है, प्रियङ्गुलता के समान सुन्दर देहकान्ति से युक्त होकर भी पीले तथा कृश शरीरको धारण करता है तथापि मधुर और रमणीय है।]

माधव केवल प्रेमी ही नहीं अपितु वीर भी है। भय का उसमें ईषद् भी अंश नहीं। जिस समय उद्यान में सिंह ऊधम मचा रहा है तथा सभी को

संत्रस्त कर रहा है उस समय वह बीच में कूदना ही चाहता है कि उससे पहले मकरन्द उसके काम को कर देता है। इसी प्रकार जब उसका प्रिय मित्र मकरन्द नन्दन के घर से रात्रि में मदयन्तिका को लेकर बाहर निकलता है तो नगररक्षकों द्वारा घेर लिया जाता है। जब माधव को इसकी सूचना मिलती है तो बिना कुछ विचारे ही वह अपने मित्र की रक्षा के लिये दौड़ पड़ता है। वह पराक्रम इतना दिखाता है कि राजा भी प्रसन्न हो जाता है। इसी वीरता का आश्रय लेकर कापालिक अघोरघण्ट को कपालकुण्डला के सामने ही यमराज का अतिथि बनाता है।

मालती का प्रेमी माधव मालती की प्राप्ति के लिये वीभत्स कर्म करने में भी सङ्कोच नहीं करता। जब अन्य साधनों से मालती की प्राप्ति के प्रति उसे अनिश्चय हो जाता है तो श्मशानभूमि में नरमांस विक्रय का दुष्कर्म भी वह करने में नहीं हिचकता। और वहीं कपालकुण्डला के करालपाश से मालती की रक्षा करता है।

जिस समय कपालकुण्डला (अङ्क ८) मालती को चुराकर बलि देने तथा माधव से प्रतिशोध लेने के लिये श्रीपर्वत पर उड़ा ले जाती है उस समय माधव की करुण दशा अपनी चरम परिणति को प्राप्त करती है। उसके दुःख की सीमा नहीं रहती। उसके एक-एक वचन से उसके हृदय के उद्गार प्रकट होते हैं। उसकी विरहदशा का इससे सुन्दर वर्णन क्या हो सकता है :

दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मशात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्॥—९।१२

[प्रगाढ़ उद्वेग हृदय का दलन कर रहा है, पर यह दो टुकड़ों में विभक्त नहीं होता; विकल शरीर मोह को धारण कर रहा है पर चैतन्य को नहीं छोड़ता; अन्तर्दाह शरीर को जला रहा है पर भस्मीभूत नहीं कर देता। मर्मस्थलों का छेदन करने वाला विधि प्रहार कर रहा है पर जीवनतन्तु को नहीं काट देता।]

अपने प्रेम में वह नितान्त अकेला है। वियोगव्यथा उसे असह्य हो रही है और अन्ततः उसके प्राण भी प्रयाण करने वाले ही हैं कि सौदामिनी मालती के जीवन का सन्देश देती है। संक्षेप में माधव एकनिष्ठ प्रेमी, वीर, साहसी तथा गुणों का आगार है।

मकरन्द—माधव के मित्र मकरन्द का चरित्र भी नाटककार ने बड़ी ही सावधानी से चित्रित किया है। जो गुण माधव में हैं वे ही गुण प्रायेण मकरन्द में भी हैं। वह माधव का बाल्य मित्र है और उसके सुख-दुःख का साथी है। अपने मित्र के हित के लिये वह अपने प्राणों को हथेली पर लिये रहता है— 'हरे चरहिं तापहिं बरे फरे पसारहिं हाथ' (तुलसी) वाले मित्रों की वह कोटि से संख्यातीत अन्तर रखता है अथवा वह ठीक उलटा है। प्रथम अङ्क में ही जब माधव मालती के प्रथम दर्शन से उस पर अनुरक्त होकर उसकी चिन्तना कर रहा है और अपने प्रेम का कारण खोज रहा है, मकरन्द अपूर्व बात उससे कहता है। प्रेम के विषय में उसकी धारणा वस्तुतः भवभूति की कविता की चरम उपलब्धियों में है। उसकी उक्ति देखिये—

व्यतिजषति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः॥—१।२५

[कोई आन्तरिक हेतु पदार्थों को मिलाता है, प्रेम बाह्य कारणों का आश्रय नहीं लेता। सूर्य का उदय होने पर कमल (स्वतः) उदित हो जाता है और चन्द्रमा के उदित होने पर (बिना किसी की प्रेरणा के स्वतः) चन्द्रकान्तमणि पिघलने लगती है।]

इसी सन्दर्भ में उसके अग्रिम वचनों से भी यह प्रतीत होता है कि वह अत्यन्त विवेकी, बुद्धिमान् तथा सुलझा व्यक्ति है। माधव को सान्त्वना देने के प्रसङ्ग में उसका यह विचार उसकी बुद्धिमत्ता का सूचक है :

मा मूमुहत्खलु भवन्तमनन्यजन्मा
मा ते मलीमसविकारघना मतिर्भूत्।
इत्यादि नन्विह निरर्थकमेव यस्मिन्
कामश्च जृम्भितगुणो नवयौवनं च॥—१।३३

[कामदेव आपको मोहित न करें और आपकी बुद्धि मलिन विकार वाली न हो, इत्यादि वचन इनमें निरर्थक ही हैं क्योंकि इनमें काम बढ़ गया है और नवयौवन तो है ही।]

मकरन्द बुद्धिमान् और निःस्वार्थी मित्र के अतिरिक्त अत्यन्त वीर तथा परदुःखकातर है। तृतीय अङ्क में जब व्याघ्र पिंजडे से निकलकर उद्यान में उत्पात कर रहा है तो मकरन्द निर्भीकता से उसका प्रतिरोध करता है और सिंह का काम तमाम कर देता है। इस कार्य में उसे भी भयङ्कर चोट लगती

है। इसी प्रकार जब नन्दन के घर से लौटते समय उसे नगर-रक्षक घेर लेते हैं तो वीरता के साथ उनसे युद्ध करता है। यहाँ हम यह भी देखते हैं कि मित्र के कार्य-सम्पादन के लिये वह महान् साहसिक कार्य करता है और नन्दन के घर में मालती का वेष धारण कर पहुँच जाता है। यह उसकी निर्भीकता तथा पराक्रम का प्रतीक है।

मकरन्द माधव का आदर्श मित्र है। मित्रता के धर्म का वह आचार्य है। नवम अङ्क में मालती-विरह-विधुर माधव जब अचेत हो जाता है, उस समय मकरन्द की दशा बड़ी ही शोचनीय हो जाती है; उसे अब कुछ सूझता नहीं :

मातर्मातर्दलति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविकलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि॥--९।२०

[मातः ! मातः ! हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है; शरीर की सन्धियाँ शिथिल होती जा रही हैं; संसार सूना सा लग रहा है; शरीर के भीतर अविच्छिन्न ज्वाला बल रही है जिससे मैं दग्ध हुआ जा रहा हूँ; दुःखी अन्तरात्मा अन्धकार में डूबा जा रहा है और चारों ओर से मोह घेर रहा है; मैं भाग्यहीन क्या करूँ ?]

उसका बाल्यसहचर माधव जिसने माँ के दुग्ध का भी साथ-साथ पान किया और साथ खेला अकेले बन्धुओं की तिलाञ्जलि प्राप्त करे अर्थात् मरे, यह उसके लिसे असम्भव है :

आ जन्मनः सह निवासितया मयैव
मातुः पयोधरपयोऽपि समं निपीय।
त्वं पुण्डरीकमुख बन्धुतया निरस्त-
मेको निवापसलिलं पिबसीत्ययुक्तम्॥—९।४०

वह मरने का भी निश्चय करता है और उस समय भी उसकी यही कामना है कि जहाँ-जहाँ उसका मित्र जन्म पावे वहीं-वहीं उसका भी जन्म हो। धन्य है ऐसा मित्र !

प्रियस्य सुहृदो यत्र मम तत्रैव सम्भवः।
भूयादमुष्य भूयोऽपि भूयासमनुसंचर॥—९।४१

वीरता, परदुःखकातरता, मित्र के प्रति असीम कर्त्तव्यनिष्ठा के अतिरिक्त माधव में प्रेम का तन्तु भी प्रचुररूप में परिपुष्ट मिलता है। यद्यपि उसके वियोग-विलाप के वे अवसर नहीं है जो माधव के हैं तथा वैसा अवसर सहायक पात्र

के लिये मिल भी नहीं सकता तथापि मदयन्तिका के प्रति उसके हृदय में भी अनुराग के लाल तन्तु दिखायी पड़ते हैं। नन्दन के घर मालती का वेष बनाकर जाने में मित्र की अभीष्टपूर्ति के अतिरिक्त मदयन्तिका के साथ उसका विवाह भी एक प्रयोजन है जिसकी पूर्वनिश्चित योजना कामन्दकी ने निर्मित की है। कामन्दकी की योजना सफल होती है तथा मकरन्द की आशावेलि फलवती होती है। मदयन्तिका के साथ उसका परिणय होता है जिसका अंत में सभी लोग अनुमोदन करते हैं।

मालती—मालती इस नाटक की नायिका है, अतः स्त्रीपात्रों में वही सबसे प्रधान है। प्रकरण का सारा इतिवृत्त उसी पर केन्द्रित हैं। मालती में स्त्रियोचित सभी गुणों का सद्भाव है। वह सौन्दर्य का चरम निधान, गुणों का आश्रयभूत तथा शील-संकोच की प्रतिमूर्ति है! उसके सौन्दर्य का वर्णन माधव ने बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ किया है:

सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा
सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतनं वा।
तस्याः सखे! नियतमिन्दुकलामृणाल-
ज्योत्स्नादिकारणमभून्मदनश्च वेधाः॥—१।२२

[हे मित्र! वह मालती सौन्दर्यराशि की अधिदेवता हैं अथवा सौन्दर्यसार के समुदाय का निकेतन हैं। उसके निर्माण में निश्चय ही चन्द्रकला, मृणाल, ज्योत्स्ना आदि कारण थे तथा निर्माता स्वयं कामदेव थे।]

मालती की शरीर-कान्ति लोध्रपुष्पों की भाँति है, आँखे मृगी की आखों की भाँति हैं, गति गज-गमन की भाँति है तथा लताओं की नम्रता की भाँति उसके शरीर में नम्रता है। वस्तुतः वन मे जो गजादि हैं उन्होंने तत्तत् विषयों को मालती से ही तो ग्रहण किया है:

नवेषु लोध्रप्रसवेषु कान्ति-
र्दृशः कुरङ्गेषु, गतं गजेषु।
लतासु नम्रत्वमिति प्रमथ्य
व्यक्तं विभक्ता विपिने प्रिया मे॥—९।२७

मालती में माधव के प्रति यद्यपि प्रगाढ़ प्रेम है और अन्तिम समय में भी वह उसी का स्मरण करना चाहती है, पर गुरुजनों और माता-पिता के प्रति उसके हृदय में महान् सम्मान है। यद्यपि उसे यह पसन्द नहीं है कि उसका पिता मात्र राजा के अनुरञ्जन के लिये उसको बूढ़े नन्दन के हाथ सौंप दे पर इस पर भी वह कभी उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करती। उसे माधव के प्रति आसक्ति

है, पर फिर भी उसे अपने कुल और माता-पिता का ध्यान है। वे प्रशंस्य हैं। उसे अपने दुःख का उनकी प्रसन्नता के सामने ध्यान नहीं--

ज्वलतु गगने रात्रौ रात्रावखण्डकलः शशी
दहतु मदनः किंवा मृत्योः परेण विधास्यतः।
मम तु दयितः श्लाघ्यस्तातो जनन्यमलान्वया
कुलममलिनं न त्वेयायं जनो न च जीवितम् ॥--२।२

मालती के चरित्र की यह शालीनता कराला मन्दिर के इतिवृत्त तथा कामन्दकी के द्वारा माधव के लिये मालती के समर्पण में भी दृष्टिगत होती है। प्रेम तथा पिता-माता के प्रति श्रद्धा और कर्त्तव्य में सर्वत्र संघर्ष है। हम सर्वत्र देखते हैं कि पिता-माता की इच्छाओं के विरुद्ध कहीं भी वह माधव के हाथ अपने को समर्पित करने के लिए नहीं कहती। इतिवृत्त इस प्रकार उन्मुख होता है कि अंततः उसका माधव के साथ परिणय हो जाता है परन्तु इसमें उसकी कहीं भी सक्रियता नहीं। कामन्दकी नन्दनके साथ मालती का विवाह उसका पिता कर रहा है और वह भी मात्र राजा के अनुरञ्जन के लिये, यह सुनाकर तथा प्राचीन काल में कन्याओं ने अपने प्रियतमों को अपनी पिता की स्वीकृति के विना भी समर्पण कर दिया था यह सुनाकर मालती को प्रेरित करती है कि वह माधव के साथ व्याह कर ले। पर, मालती की इस विषय में मौनता उसके चारित्र्य की पराकाष्ठा है। यहाँ हम स्पष्ट देखते हैं, भवभूति ने मालती के चरित्र को विशेष सावधानी तथा चतुरता के साथ खड़ा किया है। यह निस्सन्दिग्ध बात है कि महावीरचरित की अपेक्षा चारित्र्य-संगठन में भवभूति ने मालती-माधव में विशेष सफलता प्राप्त की है।

मालती का अपनी सखियों के प्रति व्यवहार भी उसके चारित्र्य की विशेषता है। लवङ्गिका उसकी अन्तरङ्ग सखी है। उससे वह अपने मनोगत भावों को निस्संकोच होकर सुनाती है। माधव के प्रति अपनी अनुरक्ति को वह विना किसी संकोच के लवङ्गिका को बताती है। लवङ्गिका के कुशल-क्षेम के विषय में भी वह चिन्तित रहती है। जब नन्दन के घर से लवङ्गिका को आने में विलम्ब होता है और उसका कोई समाचार नहीं मिलता तो वह व्याकुल हो उठती है। माधव की प्रणय-कहानी भी उस समय उसे अच्छी नहीं लगती।

माधव में उसका मन सर्वथा संलग्न है। बाह्य आधियों तथा उपाधियों के आने पर भी उसका मन निष्कम्प भाव से माधव के प्रति अनुरक्त है। पञ्चम अङ्क में जिस समय कपालकुण्डला कराला देवी के मन्दिर में उसे वध्य बनाकर मारना चाहती है तथा अपने प्रिय को स्मरण करने की आज्ञा देती है उस समय

अपना अंत जानकर मालती के मुख से जो वचन निकलते हैं वे उसकी प्रेम-प्रकर्षता के परिचायक हैं :

हा देव माधव ! परलोकगतोऽपि युष्माभिः स्मर्तव्योऽयं जनः । न खलु स उपरतो यस्य वल्लभः स्मरति । (५।२५ के बीच में)

प्रिय यदि मरने के बाद भी अपने प्रेमी को स्मरण करे तो उसकी मृत्यु नहीं माननी चाहिये । प्रेम का यह मूल-मंत्र अनूठा है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मालती के चरित्राङ्कन में भवभूति ने अनूठी सफलता प्राप्त की है । मालती सौन्दर्य की देवी, शालीनता-गम्भीरता की प्रतिकृति तथा प्रेम की अधिष्ठात्री है ।

कामन्दकी—मालती-माधव का सारा घटनाचक्र बौद्ध संन्यासिनी कामन्दकी के बुद्धि-वैभव का विलास है । वह संसार का त्याग करने वाली होकर भी मात्र दो मित्रों के वचन को सत्य करने तथा दो अनुरूप युवक-युवतियों का परिणय कराने के लिये कृतसंकल्प है । उसकी पूर्वनिश्चित योजनायें बिना अपवाद के अपने समय पर फलवती होती हैं । मालती-माधव का परिणय उसे अभीष्ट है । इसमें सबसे बड़ी रुकावट है पद्मावती-नरेश की इच्छा । वे मालती का व्याह नन्दन के साथ कराना चाहते हैं जो मालती के लिये सर्वथा अनुपयुक्त है । यदि कामन्दकी बिना किसी उपाय के मालती-माधव की शादी कराती है तो राजा और नन्दन में मनोमालिन्य होगा तथा साथ ही अमात्य भूरिवसु तथा राजा में भी वैमनस्य उत्पन्न होगा । अतः यह प्रत्यक्षतः सम्भव नहीं । इसके लिये वह उपाय का आश्रय लेती है । एक ओर तो मालती के हृदय में माधव के प्रति अनुराग उत्पन्न करती है तथा ऐसी घटनाओं की संघटना करती है जिनसे दोनों का प्रत्यक्ष दर्शन तथा सम्पर्क बढ़े । दोनों में अनुराग-वृद्धि के लिये उसने लवङ्गिका को नियुक्त कर रखा है । मालती के हृदय में पिता के प्रति विरक्ति तथा अवहेलना भी उत्पन्न करना चाहती है और इसके लिये स्वयं प्राचीन काल की कन्याओं का उदाहरण देती है जिन्होंने बिना अपने पिता-माता की स्वीकृति के स्वयं प्रियतमों के हाथ अपने को समर्पित कर दिया है । इससे यद्यपि मालती की अपनी पिता-माता के प्रति अवहेलना तो उत्पन्न नहीं होती पर उनके कर्म के प्रति अश्रद्धा अवश्य उत्पन्न हो जाती है । मालती-माधव के परिणय का सारा दृश्य भी उसी की कूटिनीति का परिणाम है । अंततः ऐसी परिस्थिति वह उत्पन्न कर देती है । जिससे दोनों का गान्धर्व विवाह भी हो जाता है । इस प्रसंग में वह कन्यादान भी कर रही है, वर के अभिभावक की भूमिका भी अदा कर रही है ।

माधव और मालती के व्याह के अतिरिक्त उसके अन्य प्रमुख ध्येय हैं राजा तथा भूरिवसु द्वारा इसका अनुमोदन; नन्दन की प्रतारणा तथा ऐसी युक्तिपूर्वक प्रतारणा जिससे राजा और अमात्य के साथ उसका मनोमालिन्य भी न हो, एवं साथ ही माधव के प्रिय वयस्य मकरन्द की नन्दन-भगिनी मदयन्तिका के साथ शादी हो जाय। इन सारे कार्यों में वह सफल होती है। मकरन्द और मदयन्तिका के विवाह को इस कौशल के साथ वह सम्पन्न कराती है कि ये सारे उसके अभीष्ट एक साथ ही पूरे हो जाते हैं। राजा तथा नन्दन इन दोनों शादियों का अनुमोदन करते हैं। साथ ही माधव तथा मकरन्द का पराक्रम भी प्रकाशित हो जाता है। उसकी योजनाओं में आकस्मिक परिस्थितियाँ भी सहायता करती हैं। जिस समय कपालकुण्डला अपने वैर के प्रतिशोध के लिये मालती को एकाकिनी पाकर श्रीपर्वत पर उड़ा ले जाती है और उसे मारना ही चाहती है कि कामन्दकी की पूर्वशिष्या सौदामिनी उसकी रक्षा करती है। वही शीघ्र आकर मरण के लिये बद्धपरिकर मकरन्द तथा माधव को भी इस दुष्कर्म से निवृत्त करती है।

जब हम कामन्दकी के चरित्र की तुलना महावीरचरित के माल्यवान् से करते हैं तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कामन्दकी की योजनायें माल्यवान् की योजनाओं की अपेक्षा दृढ़भित्ति पर आधारित हैं। जहाँ माल्यवान् की सुविचारित योजनायें हर सम्भव प्रयास के विपरीत भी असफल होती हैं वहाँ कामन्दकी की योजनायें सर्वथा सफल ही होती हैं। इनकी सफलता में ऐसी घटनायें भी साहाय्य करती हैं जिनकी पहले से कोई सम्भावना नहीं। इस प्रकार कामन्दकी का चारित्र्योत्कर्ष, उसकी क्रियाशीलता, बुद्धिवैभव, कार्यों की पूर्वकारिता इत्यादि से द्योतित होता है।

स्त्री पात्रों में मालती की सखी **लवङ्गिका** तथा कामन्दकी की शिष्या **बुद्ध-रक्षिता** विशेष उल्लेखनीय हैं। दोनों का नाटक की दो मुख्य घटनाओं—मालती-माधव तथा मकरन्द-मदयन्तिका के परिणय—में विशेष योगदान है। लवङ्गिका मालती की अन्तरङ्ग सखी है। मालती का कोई भी विचार उससे छिपा नहीं है। मालती के हृदय में माधव के प्रति अनुराग बढ़ाने में वह विशेष योगदान देती है। लवङ्गिका कामशास्त्र में निष्णात है। उसे यह पता है कि किस प्रकार मालती का अनुराग माधव के प्रति उद्बुद्ध होकर चरम परिणति को प्राप्त होगा। इस कार्य में वह कामन्दकी द्वारा पूर्वनियोजित है। पञ्चम अङ्क में वही कामन्दकी को प्रेरित करती है जिससे कामन्दकी मालती के हृदय में पिता के प्रति विरक्ति तथा माधव के प्रति अनुरक्ति उत्पन्न करने का प्रयास करती है। बुद्धरक्षिता भी यही कार्य कर रही है। वह कामन्दकी की शिष्या है तथा कामन्दकी ने उसे मदयन्तिका के यहाँ इसी लिये रखा है कि वह मकरन्द के गुणों

का वर्णन कर मदयन्तिका के हृदय में उसके प्रति प्रेम उत्पन्न करे। वह इस कार्य में सफल होती है। जब मकरन्द द्वारा सिंह के मारे जाने पर मदयन्तिका तथा मकरन्द में प्रथम दर्शन हो जाता है उसके बाद वह मदयन्तिका के हृदय में प्रेम को जागरूक रखती है। मकरन्द के लिये मदयन्तिका आत्मसमर्पण करे इसमें उसका प्रयत्न सफल होता है और अन्ततः दोनों का परिणय हो जाता है।

मदयन्तिका--मदयन्तिका राजा के क्रीडा-सहचर नन्दन की बहन है। यौवन उसमें भी उभार पर है। बुद्धरक्षिता के द्वारा मकरन्द का गुण-श्रवण कर उसके हृदय में पूर्वराग का उदय होता है। उद्यान में व्याघ्रवाले प्रसङ्ग पर मकरन्द के साथ उसका प्रथम साक्षात्कार होता है जिससे उसके पूर्वोद्भूत प्रेम में अभिवृद्धि होती है। बुद्धरक्षिता की प्रेरणायें उसकी कामाग्नि में ईंधन का काम करती हैं। सप्तम अङ्क में वह बुद्धरक्षिता तथा लवङ्गिका से अपनी कामदशा तथा विरहव्यथा का वर्णन करती है। यहाँ हम यह भी पाते हैं कि उसके चरित्र में वह गम्भीरता नहीं है जो मालती के चरित्र में है। मालती आत्मसमर्पण के लिये अपने मुख से कभी नहीं कहती पर मदयन्तिका इसके लिये प्रस्तुत हो जाती है। जब लवङ्गिका तथा बुद्धरक्षिता पूछती हैं कि मकरन्द मदयन्तिका को बलात्कार से सहधर्मिणी बनाना चाहे तो वह क्या करेगी, उस समय मदयन्तिका स्पष्ट कह देती है कि उसके शरीर पर मकरन्द का पूर्ण अधिकार है। अन्त में वह मकरन्द के साथ पलायन भी कर जाती है।

अन्य पात्रों में कलहंस, कपालकुण्डला सौदामिनी, अघोरघण्ट हैं पर उनका चरित्र कोई विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं और यथावसर अपनी भूमिका पूरी करते हैं।

मालती-माधव : समीक्षण

शास्त्रीय दृष्टि से मालतीमाधव रूपक के 'प्रकरण' नामक प्रकार के अन्तर्गत आता है। प्रकरण में इतिवृत्त कल्पित होता है। सन्धियाँ पाँच होती हैं। नायक धीरप्रशान्त होता है तथा नायिका कुलवती या वेश्या होती है। रस शृंगार होता है। नायक अमात्य, विप्र या वणिक् में से कोई होता है। अङ्कों की संख्या ५ से १० तक होती है और इसमें कैशिकी वृत्ति होती है। भरत के अनुसार प्रकरण का लक्षण यह है :

तत्र कविराजबुद्ध्या वस्तु शरीरं च नायकं चैव।
स्वयमुत्पाद्य विरचयेत्तज्ज्ञेयं प्रकरणं नाम॥

दशरूपक की परिभाषा इस प्रकार है :

अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्य लोकसंश्रयम् ।
अमात्यविप्रवणिजामेकं कुर्यात्तु नायकम् ॥
धीरप्रशान्तं सोपायं धर्मकामार्थतत्परम् ।
शेषं नाटकवत्संधिप्रवेशकरसादिकम् ॥

इस प्रकार मालतीमाधव प्रकरण की कोटि में आता है। इस प्रकरण पर अब हम विभिन्न दृष्टियों से विचार करेंगे। रूपक में सबसे प्रथम कथावस्तु का महत्त्व है। इस नाटक का आख्यान युवा माधव तथा युवती मालती के प्रणय पर आधृत है। पर इसके साथ ही एक दूसरा भी प्रणय बड़े चातुर्य तथा कौशल के साथ मिश्रित किया गया है--मकरन्द तथा मदयन्तिका का प्रणय-आख्यान। इसको यदि हम कथावस्तु का उपकथानक कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। कथावृत्त में उत्तेजक तथा अतर्कित घटनायें इस बहुलता के साथ आती हैं कि दर्शक को प्रभावित किये विना नहीं रहती। ये घटनायें भयङ्कर, उद्वेजक तथा अति-मानव हैं। मालती-माधव नाटक में मकरन्द द्वारा मालती का वेश बनाकर नन्दन को प्रतारित करना हास्योद्बोधक भी है। ऐसी घटना भवभूति में विरल ही मिलेगी। नाटक में विरोधों की वहुल संख्या मिलेगी जो दर्शक को इस छोर से दूसरे छोर को पहुँचा देगी।

मालतीमाधव यद्यपि महावीरचरित की अपेक्षा परवर्ती रचना है पर कथानक की संघटना की दृष्टि से यह महावीरचरित से आगे नहीं। इसकी कथावस्तु के संविधान में दोष स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। कथावस्तु को अप्राकृतिक घटनाओं--यथा श्मशान के प्रेतों, कापालिकों की वीभत्स क्रियाओं, कन्याओं के हरण आदि—से इतना संकुल बना दिया गया है कि दर्शक को उनकी यथार्थता पर सन्देह उत्पन्न होना स्वाभाविक है और उसकी धारणा बन जाती है कि घटनायें अयथार्थ लोक में घट रही हैं।[1] लोगों ने यह भी आक्षेप किया है कि मालती का हरण भी कथानक से उद्भूत नहीं है अपितु ऊपर से लाया गया प्रतीत होता है। पर यह आक्षेप युक्तिगत नहीं प्रतीत होता क्योंकि इसके अभाव में अङ्क ९ तथा १० के कुछ अंश का भी वैयर्थ्य हो जायेगा और पूरा इतिवृत्त भी पंगु प्रतीत होगा।

मालती माधव की कथावस्तु में कामन्दकी की योजनाओं का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसकी बुद्धिकुशलता से घटनायें अपने अभीष्ट रूप में घटित होती हैं।

---

१. द्र० एस० के० डे, हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० २८२

किन्तु बहुत-सी ऐसी घटनायें हैं जो उसकी योजना के विरुद्ध भी घटित हो जाती हैं और बहुत-सी तो ऐसी हैं जो उसकी कल्पना से भी परे हैं। मालती के हरण की घटना उसकी योजना के विपरीत है तथा सौदामिनी द्वारा मालती की रक्षा तथा माधव एवं मकरन्द को आत्महत्या से निवृत्त करना उसकी योजना से बहिर्भूत हैं। ये घटनायें एकमात्र अतर्कित हैं। इससे नाटकीय कुतूहल में वृद्धि तो अवश्य होती है पर दर्शक की आस्था कामन्दकी के बुद्धि-कौशल से हटकर भाग्य पर टिक जाती है। इस प्रकार भाग्याधीन घटनाओं का एक ताना-बाना-सा बुन जाता है।

यद्यपि प्रकरण का कथावृत्त भवभूति की प्रतिभा-प्रोद्भूत है पर विभिन्न वर्णन परम्परा से ग्रहण किया गया हैं। उदाहरणार्थ उन्मुक्त सिंह द्वारा उपद्रव के प्रसङ्ग को लीजिये। ठीक ऐसा ही प्रसङ्ग भास के अविमारक नाटक में है। अन्तर इतना ही है कि जहाँ अविमारक में हाथी उपद्रव करता है वहाँ मालती-माधव में सिंह। अविमारक में भी राजा कुन्तिभोज की युवती कन्या की उद्यान से लौटते समय उन्मत्त हाथी से भेंट हो जाती है। अविमारक उस हाथी को पराक्रमपूर्वक प्रकृतिस्थ कर देता है। इस घटना के बाद कुरङ्गी तथा अविमारक में प्रेम हो जाता है इत्यादि।[1] ठीक यही अवस्था है मकरन्द तथा मदयन्तिका की प्रणय-वृद्धि की। माधव का प्रणय-विलाप वा विरह भी पूर्वकवियों के विरह-वर्णनों से अनुप्राणित प्रतीत होता है। उदाहरण के लिये कालिदास के विक्रमोर्वशीय के पुरूरवा तथा इस नाटक के माधव के विरह-वर्णनों की साम्यता दर्शनीय है। नवम अङ्क में माधव द्वारा पवन को दूत बनाने की कल्पना भी मेघदूत से प्रभावित प्रतीत होता है। कुछ लोगों का तो कहना है कि यह सारा विरह-वर्णन ही पीछे कालिदास के अनुकरण पर भवभूति द्वारा किया गया परिष्कार है।[2] पर यह संगत प्रतीत नहीं होता क्योंकि ऐसी स्थिति तो है नहीं कि कालिदास ने अपना नाटक मालतीमाधव की रचना के बाद बनाया हो और उसे देखकर भवभूति ने अपने नाटक में पुनः परिष्कार-परिवर्धन किया हो। कालिदास का सम्पूर्ण साहित्य भवभूति के सामने था अतः यह मानने पर कि भवभूति प्रथम बार ही उससे प्रेरणा ग्रहण कर सकते थे, यह मानने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि मालती-माधव के इतिवृत्त में दुबारा परिष्कार-परिवर्धन हुआ है। कल्पना की कोई सीमा नहीं है।

---

१. द्र० अविमारकम्, प्रथम अङ्क।

२. डा० एस० के० बेल्वल्कर, उत्तररामचरित, भाग १, भूमिका पृ० ७२

मालती-माधव के कथावृत्त में घटनाओं की संकुलता तथा उन्हीं को जोड़कर मुख्य इतिवृत्त की संघटना कोई बहुत प्रशंसनीय नाटचकौशल का निदर्शन नहीं है। इस जोड़ में स्थैर्य का अभाव है। कथावृत्त में अन्य महत्त्वपूर्ण दोष है विभिन्न प्रसङ्गों का असंतुलित विस्तार। माधव की विरहव्यथा-वर्णना इसका सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है। काव्य की दृष्टि से निस्सन्देह वह उन्नत कोटि की रचना है पर नाटकीय दृष्टि से उसका दीर्घ विस्तार वैरस्योत्पादक ही है। अन्य स्थलों पर भी लम्बे-लम्बे वाक्य इसी के निदर्शक हैं। श्मशान का प्रसङ्ग भी अनपेक्षित विस्तार पा गया है। इस प्रकार ५ वां तथा ९ वां अङ्क शिथिल है।[1]

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से मालतीमाधव महावीर-चरित की अपेक्षा उत्कृष्ट कृति है। पात्र यहाँ अधिक मनोवैज्ञानिक भूमि पर प्रतिष्ठापित किये गये हैं। मालतीमाधव में पात्रों का अपना विशेष महत्त्व है जो कथावस्तु को प्रभावित करते हैं। कामन्दकी की योजनाओं की सफलता इसका निदर्शक है। एक ओर प्रेम की प्रतिमूर्ति माधव है तो दूसरी ओर प्रेम के साथ ही शालीनता को समेटे मालती है। मकरन्द आदर्श मित्र है जो मित्र-कार्यों की सिद्धि में प्राणों के होम के लिये भी तत्पर है। मालती-माधव तथा मदयन्तिका एवं मकरन्द के प्रेम भी उच्चतर भावभूमि पर अधिष्ठित है। मालती तथा मदयन्तिका के प्रेम शनैः शनैः प्ररूढ़ होते हैं। लवङ्गिका तथा बुद्धरक्षिता उन दोनों की प्रेम-प्रौढि में योगदान करती हैं। चारित्र्य-प्रकर्ष की दृष्टि से मालती-माधव श्रेष्ठ कृति है।

इस नाटक का मुख्य रस रसराज शृंगार है। अन्य रसों का भी बाहुल्य के साथ प्रयोग हुआ है जैसा कि भवभूति ने आरम्भ में ही स्पष्ट कर दिया है :

भूम्ना रसानां गहनाः प्रयोगाः
सौहार्दहृद्यानि विचेष्टितानि
औद्धत्यमायोजितकामसूत्रं
चित्राः कथा वाचि विदग्धता च ॥—१।४

शृंगार के वर्णन में भवभूति ने विशेष सफलता प्राप्त की है। शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग और विप्रलम्भ का यहाँ वर्णन मिलता है। कवि की चित्तवृत्ति विप्रलम्भ में अधिक रमी है। अन्यत्र विप्रलम्भ के वर्णन यद्यपि इस नाटक में बहुलता से मिलेंगे पर नवां अङ्क तो विप्रलम्भ की पुञ्जीभूत राशि ही है। माधव की विरह वेदना बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है और सहृदय

---

१. द्र०, टोडरमल, महावीरचरित की प्रस्तावना, पृ० ३२; कथावस्तु दोषों के विवेचन के लिये देखिये, कीथ, संस्कृत ड्रामा, पृ० १९१

पाठक तन्मय हो जाता है। प्राकृतिक दृश्य उद्दीपन का कार्य करते हैं और माधव की विरह व्यथा बढ़ जाती है। रौद्र तथा बीभत्स रस अङ्क ५ में विस्तृत रूप से वर्णित हैं। बीभत्स रस का यह श्लोक देखिये—

उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूत्सेधभूयांसि मांसा-
न्यंसस्फिक्पृष्ठपीठाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा।
आत्तस्नायवान्त्रनेत्रः प्रकटितदसनः प्रेतरङ्कः करङ्का-
दङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमत्ति ॥—५।१६

[यह अत्यन्तदीन पिशाच विशेष पहले तो शव की त्वचा को उखाड़कर अनन्तर लम्बे शरीर होने के कारण कंधे, कटि, पीठ आदि स्थलोंसे प्राप्त प्रचुर तथा तीव्र दुर्गन्ध वाले मांसों को खाकर अपने अङ्क में लिये अस्थि के मांस को दाँत खोल-खोलकर निश्चिन्तता से खा रहा है।]

यहाँ बीभत्स रस के अन्य श्लोक भी उपलब्ध होते हैं। रौद्र की छटा भी यहाँ अवलोकनीय है। वीरता का प्रसंग मकरन्द द्वारा सिंह-निपात में देखा जा सकता है। हास्य की एक क्षीण उद्बुद्धि मकरन्द द्वारा वेश-परिवर्तन में दिखाई पड़ती है। करुण रस का वर्णन ९ वें अङ्क में स्पष्ट है। मकरन्द का वह बहुचर्चित श्लोक, जो किञ्चित् परिवर्तन के साथ उत्तरचरित में भी आया है दर्शनीय है :

मातर्मातर्दलति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विश्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥—९।२०

इस प्रकार रस-निष्पत्ति की दृष्टि से मालती-माधव सफल कृति है। भाषा तथा संवादों में वह सरलता तथा स्पष्टता नहीं है जो भास के नाटकों में दिखायी पड़ती है। पद्यों की बहुलता, लम्बे वाक्यों की भरमार तथा अत्यन्त विस्तृत विरह-वर्णन कहीं-कहीं उद्वेजक भी हो गये हैं।

मालतीमाधव की काव्यकला

जब हम मालती माधव की काव्यगत विशेषताओं पर दृष्टिपात करते हैं तो निश्चितरूपेण इसकी महत्ता अवभासित होती है। भवभूति नाना शास्त्रों के विदग्ध पण्डित थे पर कवि के रूप में उन्हें इसकी उपयोगिता प्रतीत न हुई। उन्होंने पाण्डित्य तथा वैदग्ध्य के एकत्र गमक नाटक का आश्रय लिया। इसमें उन्होंने शब्द में प्रौढि तथा औदार्य एवं अर्थगौरव का विशेष ध्यान रखा—

यत्प्रौढ़ित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्धयोः ।।—१।८

जब हम मालती माधव के काव्य वैशिष्ट्य पर इस दृष्टि से विचार करते हैं तो भवभूति की यह मान्यता यथार्थ प्रतीति होती है। भावों की ऊँचाई, रसों की स्पष्ट तथा प्रभावुक प्रतीति, शब्दों में प्रौढ़ता तथा उदारगुणशालिता एवं अर्थ गौरव भवभूति की अपनी विशेषतायें हैं। भवभूति की अभिव्यंजना में अपूर्व शक्ति है। षष्ठ अंक में जब मालती माधव को अपने समीप न जानकर उसके विषय में कहती है तो माधव के आनन्दोद्‌गार देखिये--

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
संतर्पणानि सकलेन्द्रिय मोहनानि।
आनन्दनानि　　हृदयैकरसायनानि
दिष्टया मयाप्यधिगतानि वचोऽमृतानि ।।—६।८

[मैंने भी भाग्यवश म्लान जीवनरूपी कुसुम के विकासक, तृप्तिकारक, संकलेन्द्रियों को मुग्ध करनेवाले आनन्ददायक तथा हृदय के एकमात्र रसायन, मालती के वचन रूप अमृत को प्राप्त कर लिया।]

इसी प्रकार की सुन्दर भावना सप्तम अंक में बुद्धरक्षिता के उस वचन में भी मिलती है, जब वह मदयन्तिका को मकरन्द के साथ भाग निकलने को कहती है। यह उक्ति साहित्य को अनूठी निधि है--

प्रेयान्मनोरथसहस्रवृतः स एष
सुप्त प्रमत्तजनमेतदमात्यवेश्म।
प्रौढंतमः कुरु कृतज्ञतयैव भद्र-
मुत्क्षिप्तमूकमणिनूपुरमेहि यामः ।।—७।३

[सहस्र अभिलाषाओं से प्रार्थी ये ही वे प्रिय हैं, मन्त्रि-भवन में कुछ व्यक्ति तो सोये हुए हैं और कुछ प्रमत्त पड़े हुए हैं, अंधकार घना है अतः अपना मंगल करो। मणिनूपुरों को ऊपर उठाकर तथा निःशब्द कर आओ हम चलें।]

मालती-माधव में नाना भावों तथा रसों की बड़ी ही मार्मिक तथा हृदय-हारिणी अभिव्यक्ति हुई है। एक ओर शृङ्गार अपनी पूर्ण साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत हुआ है, तो दूसरी ओर करुण अपनी कमनीय कला को दर्शाता है। सारा वर्णन एक मूर्त्तिमान् चित्र को उपस्थित कर देता है। करुणरस के वर्णन में भवभूति की कला विशेष सजीव हो उठती है। विरही माधव नाना प्राकृतिक दृश्यों में अपनी प्रिया को ढूढ़ता है। पर, वह उससे दूर चली गयी है, मालती के रूप का अनुसरण उसे नाना प्राकृतिक दृश्यों में दिखाई पड़ता है—

नवेषु लोध्रप्रसवेषु कान्तिर्दृशः कुरङ्गेषु गतं गजेषु ।
लतासु नम्रत्वमिति प्रमथ्य व्यक्तं विभक्ता विपिने प्रिया मे ॥–९।२७

वायु देवता सारे प्राणियों में जीवन का संचार करते हैं, मेघों को भ्रमण कराते हैं, मयूरों को नर्तन कराते हैं पर विरहियों,को तो वे उलटे सन्ताप देते रहते हैं—

भ्रमय जलदानम्भोगर्भान्प्रमोदय चातका-
न्कलय शिखिनः केकोत्कण्ठान्कठोरय केतकान् ।
विरहिणि जने मूर्च्छां लब्ध्वा विनोदयति व्यथा-
मकरुण पुनः संज्ञाव्याधिं विधाय किमीहसे ॥—९।४२

[वायुदेव ! आप जलपूर्ण मेघों को भ्रमण कराइए, चातकों को सन्तुष्ट कीजिये, केका शब्द करने में उत्कठित मयूरों को नचाइए और केतकी वृक्षों को प्रौढ बनाइए। परन्तु हे निर्णय ! मूर्छा पाकर दुःख का निवारण करते हुए विरही जनमें फिर चैतन्य रूप रोग को पैदाकर आप किस फलकी इच्छा करते हैं?]

माधव को अचेत देखकर करुण विलाप कर रहे मकरन्द के वचनों में निष्प्राण ग्रावा को रुलाने की शक्ति है। उसके विलाप करुण रस के मूर्तिमान् विग्रह हैं—

सातर्मातर्दलति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥—९।२०

कामन्दकी का मालती के वियोग में कहा हुआ यह वचन सुतरां अनूठा है—

आजन्मनः प्रतिमुहूर्तविशेषरम्या-
ण्याचेष्टितानि तव सम्प्रति तानि तानि ।
चाटूनि चारुमधुराणि च संस्मृतानि
देहं दहन्ति हृदयं च विदारयन्ति ॥—१०।१

[जन्म से आरम्म कर प्रतिक्षण विशेषरमणीय तुम्हारे तत्तत् क्रियाकलापों तथा सुन्दर बोलियों की स्मृतियाँ मेरे शरीर को जला रही हैं तथा हृदय को विदीर्ण कर रही हैं।]

नवम अङ्क में प्राकृतिक दृश्यों का भी मनोरम वर्णन हुआ है। विरही माधव की विरहव्यथा को ये प्राकृतिक दृश्य बढ़ा रहे हैं। वन-प्रदेश का यह वर्णन देखिये—

वानीरप्रसवैर्निकुञ्जसरितामासक्तवासं पयः
पर्यन्तेषु च यूथिकासुमनसामुज्जृम्भितं जालकैः ।
उन्मीलत्कुटजप्रहासिषु गिरेरालम्ब्य सानूनितः
प्राग्भागेषु शिखण्डिताण्डवविधौ मेघैर्वितानाय्यते ।।—९।१५

[कुञ्जों के समीप की नदियों का जल वेतस-पुष्पों से सुवासित है । किनारों पर जूही की नवकलियाँ विकसित हैं । खिलते हुये कुटजों से शोभा-सम्पन्न पर्वत के अग्रभागों पर शिखरों का अवलम्बन कर नाचते हुये मयूरों पर मेघमाला वितान रचना कर रही है ।]

पर्वत का यह दूसरा वर्णन देखिये—

जृम्भाजर्जरडिम्बडम्बरघनश्रीमत्कदम्बद्रुमाः
शैलाभोगभुवो भवन्ति ककुभः कादम्बिनीश्यामलाः ।
उद्यत्कन्दलकान्तकेतकभृतः कच्छाः सरित्स्रोतसा-
माविर्गन्धशिलीन्ध्रलोध्रकुसुमस्मेरा वनानां ततिः ।।—९।१६

लवणा तथा सिन्धु नदियों का वर्णन भी बड़ी तन्मयता से किया है । ये दोनों नदियाँ पद्मावती नगरी के समीप में बहती हैं । यहाँ पद्मावती नगरी के दृश्यों का वर्णन भी अवलोकनीय है । पाँचवें अङ्क में श्मशान का सूक्ष्म वर्णन किया गया है । श्मशान का वीभत्स रूप स्पष्टता से उपन्यस्त किया गया है ।

मालतीमाधव में कवि ने पति-पत्नी के परस्पर धर्म का भी बड़ा सजीव तथा उपयुक्त वर्णन किया है । कामन्दकी के माध्यम से कहा गया कवि की उक्ति देखिये--

प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा सर्वे कामाः शेवधिर्जीवितं वा ।
स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसामित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु ।।–६।१८

इस प्रकार हम देखते हैं कि मालती-माधव एक उच्च कलाकृति है । हृदय के नाना मनोरम भावों, नाना मनोदशाओं तथा प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन भली-भाँति किया गया है । नाटक में कुछ त्रुटियां भी हैं जिनमें कथावस्तु के संविधान सम्बन्धी त्रुटि का उल्लेख पहले किया जा चुका है । चरित्र-चित्रण में भी कुछ त्रुटि दिखाई पड़ती है यथा नायक माधव के विरह-वर्णन भी कहीं-कहीं उन्मत्तों से प्रतीत हो रहे हैं । अतिमानवीय घटनाओं की भी यही स्थिति है ।

चतुर्थ प्रकरण

उत्तररामचरित

उत्तररामचरित भवभूति का सर्वश्रेष्ठ नाटक है जिसमें उनकी नाटचकला तथा कवित्व शक्ति चरम परिणति को प्राप्त हुई हैं। आलोचकों की मान्यता है कि उत्तररामचरित में भवभूति की कला कालिदास से भी अधिक विकसित है— उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते। भवभूति ने उत्तररामचरित में श्रीरामचन्द्र का परवर्ती आख्यान उपनिबद्ध किया है। नाटक में करुणरस की व्यंजना प्रधान रूप से हुई है। नाटक का कथानक सात अङ्कों में व्याप्त है। कथानक का सारांश इस प्रकार है :

प्रथम अङ्क—प्रारम्भ में यह संकेत किया गया है कि राज्याभिषेक के समय आये अतिथियों को श्रीरामचन्द्र ने विदा कर दिया है। इसी समय महाराज दशरथ के जामाता महर्षि ऋष्यश्रृंग ने यज्ञ की दीक्षा ली है और महर्षि वसिष्ठ तथा अरुन्धती के साथ राजमातायें उसमें सम्मिलित होने के लिये गयी हैं। गर्भ-भारभरालसा जनकनन्दिनी जानकी के अनुरञ्जन तथा मनोविनोद के लिये श्रीरामचन्द्रजी अयोध्या में ही छोड़ दिये गये है। प्रस्तावना के अनंतर वासगृह में श्रीराम-सीता दिखायी पड़ते हैं। गुरुजनों के वियोग से दुःखित सीता को श्रीराम सान्त्वना दे रहे हैं। तभी ऋष्यश्रृंग के आश्रम से महर्षि अष्टावक्र आते हैं। वे कञ्चुकीय द्वारा राजा की अनुमति पाकर रामके सामने उपस्थित होते हैं। कुशल-संवाद के अनन्तर अष्टावक्र कहते हैं कि महर्षि वसिष्ठ ने राम-सीता को आशीर्वाद दिया है। वसिष्ठ ने सीता को आशीर्वाद देते हुए कहा है कि 'विश्व-म्भरा भगवती पृथ्वी ने आपको उत्पन्न किया है, प्रजापति-तुल्य राजर्षि जनक आपके पिता हैं तथा आप उस कुलकी कुलवधू हैं जिसमें सूर्य तथा मैं कुलगुरु हूँ। अतः यही आशीर्वाद है कि आप वीरप्रसविनी हों।' ऋष्यश्रृङ्ग तथा ऋष्य-श्रृङ्ग-पत्नी शान्ता ने राम से कहा है कि वे सीता के दोहद को सर्वथा पूर्ण करें। अष्टावक्र सन्देश देकर चले जाते हैं।

अष्टावक्र के जाने पर कुमार लक्ष्मण चित्र लेकर उपस्थित होते है। उस चित्र में श्रीराम की जीवन-लीलायें चित्रित हैं। उस चित्र में जन्म से आरम्भ कर सीता की अग्नि-शुद्धि तक का वृत्तान्त चित्रित है। राम उसे देखकर सीता के मनोविनोद का उपाय जानकर प्रसन्न होते हैं। वे पूछते हैं कि चित्र किस

प्रसङ्ग तक है। लक्ष्मण के मुख से 'अग्निशुद्धि तक' सुनकर चौंक जाते हैं और सीता के मन में उस समय राम द्वारा कहे कटुवचनों का स्मरण न हो या स्मरण कर दुःख न हो इसलिये सीता को समझाते हैं। पुनः चित्र का एक-एक दृश्य देखना प्रारम्भ करते हैं। लक्ष्मण जृम्भकास्त्रों को दिखाते हैं जिन्हें ब्रह्मादि गुरुओं ने स्वतपस्तेज के रूप में देखा था। राम आशीर्वाद देते हैं कि ये जृम्भकास्त्र सीता की सन्तानों को प्राप्त होंगे। सीता के विवाह का प्रसंग वाला चित्र देखकर सीता को मिथिला की स्मृति हो आती है। मनोविनोद भी होता जाता है और सीता लक्ष्मण से परिहास भी करती हैं। परशुराम-मान-मर्दन के दृश्य के उपस्थित होने पर राम दूसरी ओर विषय को हटाते हैं। रामके वनवास, सीता-हरण आदि दृश्यों को लक्ष्मण दिखाते हैं। वनवास कें विभिन्न स्थलों को देखकर उनकी स्मृतियाँ नवीन हो उठती हैं। सीता को वन देखने तथा भागीरथी में अवगाहन का दोहद उत्पन्न होता है। राम लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं कि वे सीता के दोहद की पूर्ति के लिये शीघ्र रथ को सज्जित कर लावें। सीता राम से अपने साथ चलने को कहती हैं और राम इसका अनुमोदन करते हैं। लक्ष्मण रथ लाने चले जाते हैं। वातायन के पास राम और सीता चले जाते हैं। सीता को निद्रा आने लगती है और वे राम के अङ्क में शिर रखकर सो जाती हैं। इसी समय नगर-वृत्तान्त को जानने के लिये प्रेषित दुर्मुख नामक दूत आता है। वह आकर राम से बताता है कि सारी प्रजा आप पर अनुरक्त है पर धीरे से वह सीता के जनापवाद के विषय में भी राम से निवेदन कर देता है। रामको यह सुनकर महान् दुःख तथा शोक होता है। श्रीरामचन्द्र निश्चय करते हैं कि 'सज्जनों का व्रत लोक की आराधना करना ही है। लोकाराधन के लिये ही महाराज दशरथ ने अपने प्राणों का तथा मेरा त्याग कर दिया। वसिष्ठ ने भी लोकाराधन का ही आदेश दिया है'। सीता के प्रति उनके चित्त में करुणा उत्पन्न होती है। उन्हें दुःख है कि सीता सनाथ होकर भी अनाथ की भाँति विपद्ग्रस्ता होगी। वे दुर्मुख से कहते हैं कि जाकर लक्ष्मण से उनकी आज्ञा सुना दो कि रथ तैयार कर सीता को वे वन में छोड़ आवें। दुर्मुख यह सुनकर अत्यन्त दुःखी होता है और चला जाता है। राम भी अपने को अत्यन्त गर्हित समझने लगते हैं और सीता को छोड़ वहां से हट जाते हैं। वे सोचते हैं कि विधाता ने केवल दुःख का अनुभव करने के लिये ही उनमें चैतन्य का सञ्चार किया है। इसी समय ऋषि लोग आकर कहते हैं कि यमुना-तीरवासी ऋषियों को लवण नामक असुर सता रहा है अतः वे ऋषि रक्षा की प्रार्थना करते हैं। श्रीराम लवण-दमन के लिये शत्रुघ्न को भेजने का निश्चय करते हैं। राम के चले जाने पर सीता की निद्रा टूटती है और राम को वहाँ न पाकर वे दुःखित होती हैं। इसी

समय दुर्मुख आकर उन्हें सूचना देता है कि लक्ष्मण ने रथ तैयार कर दिया है अत: आप रथ पर आरूढ़ होइये। कुल देवताओं को नमस्कार कर सीता रथ पर चढ़ने के लिए दुर्मुख के साथ निकलती हैं।

उत्तररामचरित के प्रथमाङ्क का प्रयोजन

उत्तररामचरित नाटक में रामचन्द्र के उत्तरकालिक जीवन-चरित का चित्रण है। इस नाटक का प्रधान उद्देश्य है सीता का पुनर्निवासन और समाज के मनोभावों की शुद्धि के बाद ऋषियों की आज्ञा से उनका पुनर्ग्रहण।

सीता का विवासन इस नाटक की प्रमुख घटना है। इस घटना को स्वाभाविक रूप से घटित कराने के लिए नाटककार ने मूल कथा में आवश्यक परिवर्तन ओर मौलिक कल्पना का आश्रय लिया है।

उत्तररामचरित का नायक एक उदात्त प्रशासक है अतएव प्रजा का अनुरञ्जन उसका प्रधान कर्त्तव्य हो जाता है। रामचन्द्र के समक्ष एक समस्या है। प्रजावर्ग को सीता के चरित्र पर संदेह होता है। रावण के सम्पर्क में सीता की पवित्रता की अक्षुण्णता तथा अग्निपरीक्षा के माध्यम से उनकी विशुद्धता का विश्वास अयोध्यावासी प्रजावर्ग को नहीं होता है। इस समस्या का समाधान केवल सीता-परित्याग से ही संभव था किन्तु स्थिति विषम थी। सीता-परित्याग में गुरुजन तथा सीता का विरोध बाधक हो सकता था। उस पर भी गर्भावस्था में सीता का परित्याग और कठिन था। इस परिस्थिति से वचने के लिए भवभूति ने गुरुजनों को अयोध्या से बहुत दूर बाहर दीर्घकाल के लिए भेजने की कल्पना की और दशरथ के जामाता ऋष्यश्रृङ्ग के बारह वर्षीययज्ञ में भाग लेने के लिए गुरुजनों को उनके आश्रम में भेज दिया। इस प्रकार गुरुजन विरोध का समाधान हो गया।

अव सीता की ओर से विरोध-संभावना के निराकरण के लिए भवभूति ने चित्रदर्शन की दूसरी कल्पना की और फलस्वरूप सीता ने स्वयं दण्डकारण्य को पुन: देखने की इच्छा प्रकट की। इस प्रकार आसानी से सीता-विवासन की भूमिका कविने अपनी उर्वराशक्ति से तैयार कर ली। प्रथम अङ्क में इसी प्रमुख घटना को स्वाभाविकता प्रदान करने के लिये चित्रदर्शन का विनियोग किया गया। इसी से इस अङ्क का नामकरण भी चित्रदर्शनाङ्क किया गया। अब हम नाटकीय संविधान की दृष्टि से चित्रदर्शन के स्थूल-सूक्ष्म प्रयोजनों का मूल्याङ्कन करेंगे।

यद्यपि चित्रदर्शन की योजना गर्भवती सीता के मन-बहलाव का साधन है

फिर भी नाटकीय वस्तुयोजना की दृष्टि से इसका बड़ा ही महत्त्व है। चित्रदर्शन से निम्नलिखित तथ्यों का संकेत मिलता है—

(१) लक्ष्मण द्वारा सीता की अग्निशुद्धि तक चित्रके बनने की सूचना दी जाती है। इससे सीता के त्याग में सहायता मिलती है। साथ ही साथ सीता-विषयक लोकापवाद का स्मरण भी हो जाता है।

(२) चित्रदर्शन से सीता के हृदय में पञ्चवटी को पुनः देखने की इच्छा जाग्रत हो उठती है। अतः राम को आसानी से सीता-त्याग का अवसर मिल जाता है। इस प्रकार यह दृश्य सीता-परित्याग के कारण और अवसर दोनों को उपस्थित कर देता है।

(३) सीता के पुत्र लव और कुश में राम द्वारा जृम्भकास्त्र के प्रादुर्भाव का संकेत इसी दृश्य में मिलता है। इससे नाटक के अन्त में लव-कुश को पहचानने में सहायता मिलती है।

(४) इसी दृश्य में सीता-परित्याग के समय राम पृथ्वी और और गंगा से सीता-रक्षा की प्रार्थना करते हैं। इसी प्रार्थना के फलस्वरूप देवियों द्वारा सीता की रक्षा और मिलन-प्रसंग में इसका संकेत दिया जाता है।

चित्रदर्शन की ये स्थूल या बाह्य परिस्थितियाँ नाटक के घटनाचक्र पर प्रभाव डालती हैं। इसके अतिरिक्त चित्रदर्शन के निम्नलिखिन प्रयोजन मनोवैज्ञानिक या सूक्ष्म दृष्टि से भी देखे जा सकते हैं—

(१) चित्रदर्शन से राम और सीता को भूतकालीन जीवन की घटना याद आ जाती है। पञ्चवटी से उन दोनों के निकट सम्पर्क का ज्ञान होता है। साथ ही राम के जीवन के साथ पञ्चवटी के पूर्ण सामञ्जस्य का संकेत मिलता है। वनवासी होते हुये भी पञ्चवटी में राम अपने दाम्पत्य सुख का उपभोग कर चुके थे अतः पञ्चवटी उनके सुख-दुःखमय जीवन का साथी भी बन गयी थी।

(२) चित्रदर्शन से राम का पञ्चवटी के प्रति अधिक अनुराग का परिचय मिलता है। उन्हें सीता के वियोग में उन स्थानों की याद आती है और उसी लिये तृतीय अङ्क में जनस्थान में जाकर फूट-फूटकर रोते हैं। यह कवि की मात्र भावुकता ही नहीं, अपि तु मानव हृदय के भावों का सही चित्रण है।

(३) सम्पूर्ण दृश्य राम और सीता के प्रगाढ़ प्रेम से ओत-प्रोत है। सीता का प्रत्येक स्पर्श राम के लिए मोहोत्पादक बन जाता है। इस दृश्य में सीता के प्रति राम का अटूट प्रेम प्रदर्शन पुनर्मिलन की भूमिका है। ये चित्र वियोगी राम के मनोविनोद और आश्वासन के साधन माने जा सकते हैं।

(५) नाटक के आरम्भ की महत्त्वपूर्ण घटना, सीता का राम से वियोग, को भी इसी दृश्य के अन्तिभ भाग ने उपस्थित कर दिया है।

इसके अतिरिक्त भवभूति ने प्रथम अंक में अष्टावक्र तथा दुर्मुख नामक दो दूतों से प्रेक्षकों का, परिचय कराया है जो सीता-परित्याग में सहायक हैं।

इस प्रकार चित्रदर्शन अङ्क नाटकीय कलात्मकता के लिये प्रसिद्ध है। इसके द्वारा एक बहुत बड़ी घटना अनायास और स्वाभाविक ढंग से घटित हो जाती है। चित्रदर्शन में वर्णनात्मक पक्ष की अपेक्षा भावात्मक पक्ष का प्राधान्य है। इसी में राजा और पति के रूप में राम का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व खुलकर प्रकट हो सका है। इस प्रकार इस अंक का महत्त्व नाटकीय कथावस्तु-संविधान की दृष्टि से द्रष्टव्य है।

द्वितीय अङ्क—इसमें दण्डकारण्य का दृश्य प्रस्तुत किया गया है। पञ्चवटी की वनदेवता वासन्ती तथा आत्रेयी में बातचीत हो रही है। आत्रेयी उद्गीथ का अध्ययन करने के निमित्त वाल्मीकि आश्रम से अगस्त्याश्रम को जा रही है। वासन्ती के द्वारा महर्षि वाल्मीकि के यहाँ अध्ययन न कर अगस्त्याश्रम में अध्ययनार्थ जाने का कारण पूछने पर आत्रेयी बताती है कि वाल्मीकि आश्रम में अनध्याय उपस्थित हो गया है। वहां किसी देवता विशेष ने स्तन छोड़ने की आयु के दो शिशुओं को ला दिया। वे इतने मनोहर हैं कि चराचर सभी को मुग्ध कर लेते हैं। गर्भ के ग्यारहवें वर्ष में वाल्मीकि ने क्षात्रोचित उपनयनादि संस्कारों से संस्कृत कर त्रयी विद्या का अध्यापन किया। वे इतने मेधावी हैं कि उनके साथ अन्य व्यक्ति पढ़ नहीं सकता। अन्य अल्प मेधावी छात्र पिछड़ जाते हैं। इसके अतिरिक्त व्याध के बाण से क्रौञ्च-मिथुन के क्रौञ्च के मारे जाने पर महर्षि की काव्यवाणी सहसा फूट पड़ी—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

कवि की काव्यवाणी सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्न हुये और उन्हें आद्यकवि होने का वरदान देकर रामचरित बनाने का आदेश दिया जिससे महर्षि ने रामायण की रचना की है। इन्हीं प्रत्यूहों के कारण आत्रेयी वहाँ से अगस्त्याश्रम के लिये प्रस्थित हुई है। आत्रेयी को वासन्ती से पता लगता है कि वह पञ्चवटी प्रदेश में आ गई है। पञ्चवटी के नाम से ही सीता का उसे स्मरण हो जाता है और वह शोकाकुल हो उठती है। वह सीता को मर गयी बताती है। सीता को मरी सुन वासन्ती भी दुःखित हो उठती है और उससे सीता का वृत्तान्त पूछती है। आत्रेयी जनापवाद तथा सीतात्याग का वृत्तान्त बता देती है। वासन्ती लक्ष्मण द्वारा सीता के त्याग के बाद की सीता के विषय में खबर पूछती है पर आत्रेयी कहती है कि कुछ खबर नहीं है। आत्रेयी यह बताती है कि यह दुःखद

घटना उस समय घटी जब वसिष्ठादि गुरुजन बाहर थे। यह भी उसके द्वारा सूचना मिलती है कि रामने अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली है जिसमें हिरण्यमयी सीता उनकी सहधर्मचारिणी बनी हैं। अश्व छोड़ दिया गया है और लक्ष्मण-तनय चन्द्रकेतु उसकी रक्षा में सेना-सहित नियुक्त हैं। इसी बीच एक ब्राह्मण ने अपने मृतक पुत्र को राजद्वार पर लाकर फेंक दिया और कहा कि ब्राह्मण पर यह विपत्ति आयी हुई है। उसके इस प्रकार कहने पर रामचन्द्र ने सोचा कि राजा के धर्म-व्यतिक्रम के बिना प्रजा में अकालमृत्यु नहीं होती। इसी समय अशरीरिणी वाणी ने कहा कि 'शम्बूक नामक शूद्र तप कर रहा है अतः हे राम उसका शीर्षच्छेदन कर इस ब्राह्मण बालक को जीवित करिये।' इस प्रकार सुनकर श्रीरामचन्द्र जी पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर दिशाओं में शम्बूक को ढूंढ रहे हैं। आत्रेयी के मुख से यह सुनकर वासन्ती बताती है कि शम्बूक नामक शूद्र इसी वन में तपस्या कर रहा है। अतः राम इस वन को अलंकृत करेंगे। आत्रेयी यह सूचना देकर चली जाती है। यह सारा कथानक विष्कम्भक में वर्णित।

इसके अनन्तर हाथ में खड्ग लिये पुष्पकारूढ़ राम आते हैं। वे अपने हाथ से कहते हैं तूने सीता का निर्वासन कर दिया अतः तुझमें करुणा कहाँ से आयी? ब्राह्मणबालक को जीवित करने के लिये शूद्रमुनि पर प्रहार करो। राम द्वारा मारे जाने पर शूद्र दिव्य रूप को प्राप्त कर लेता है तथा वह श्रीराम की स्तुति करता है। वह कहता है कि 'सत्सङ्ग से उद्भूत मृत्यु भी तारने वाली होती है। आप ब्राह्मण बालक को जीवित करिये।' राम उसे वैराज नामक अक्षय लोकों की प्राप्ति का वरदान देते हैं। शम्बूक कहता है कि तप का परिणाम तो यही रहा कि 'आप सैकड़ों योजनों से मुझे ढूँढते हुये दण्डकारण्य में आये।' उस वन को दण्डकारण्य सुनकर राम की प्राचीन स्मृतियाँ नवीन हो जाती हैं। वे परिचित भूमि को पहचान लेते हैं। वे सीता के स्मरण से अत्यन्त दुःखी हो उठते हैं। वे शूद्र को जाने का आदेश देते हैं। वह प्रणाम कर चला जाता है।

शम्बूक के चले जाने पर राम पूर्वदृष्ट तत्तत् प्रदेशों को देखकर सीता के स्मरण से अत्यन्त दुःखी होते हैं। पूर्व दृष्ट पर्वत, नदी तथा वन उनमें शोक का सञ्चार करते हैं। फिर शम्बूक लौटकर उनसे कहता है कि 'महर्षि अगस्त्य के आश्रम में लोपामुद्रा तथा सभी महर्षि राम की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अतः उन्हें शीघ्र ही आप दर्शन दें।' श्रीराम पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो अगस्त्याश्रम को प्रस्थान करते हैं। शम्बूक उन्हें क्रौञ्चावतपर्वत, गोदावरी नदी आदि का दृश्य दिखाता है।

तृतीय अङ्क—इस अङ्क के प्रारम्भ में तमसा तथा मुरला दो नदी देवता

दिखायी पड़ते हैं। मुरला नदी तमसा से कहती है कि उसे अगस्त्याश्रम से लोपामुद्रा ने गोदावरी के पास यह संदेश भेजा है 'सीता-त्याग के समय से राम की करुणा उनके गाम्भीर्य के कारण ऊपर तो प्रकाशित नहीं होती पर अन्दर ही अन्दर पुटपाक की नाई गूढव्यथा देती है। राम अत्यन्त कृशकाय हो गये हैं। अत्यन्त धैर्यशाली भी राम पञ्चवटी प्रदेश में वार-वार मूर्च्छित होंगे अतः सावधानी से उनकी रक्षा करनी है।' तमसा मुरला से वताती है कि जब पहले गर्भभाराकुला सीता को वाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़कर लक्ष्मण लौट गये तो प्रसव-वेदना से दुःखिनी सीता गंगा में कूद पड़ीं। गंगा में ही उन्होंने दो पुत्रों को उत्पन्न किया। भगवती गंगा तथा पृथ्वी देवी उन्हें रसातल में ले गयीं। गंगा देवी ने स्वयं स्तन त्याग के अनन्तर उन दोनों बालकों को महर्षि वाल्मीकि को सौंप दिया। इस समय सरयू के मुख से राम के जनस्थान में आगमन को सुनकर उनके अनिष्ट की आशङ्का से किसी कार्य के बहाने गंगा भी सीता के साथ गोदावरी के पास आयी हैं। गंगा देवी ने सीता से कहा है कि 'आज लव-कुश की बारहवीं वर्षगांठ है। अतः अपने कुलगुरु सूर्यदेव की अपने हाथों से चुने गये पुष्पों से पूजा करो। मेरे प्रभाव से प्रच्छन्न की गयी तुझे वन देवता भी नहीं देखेंगे फिर मनुष्यों की क्या बात।' तमसा को भी गंगा देवी ने सीता का सहचरी बना कर भेजा है। मुरला यह वृत्तान्त लोपामुद्रा को सुनाने चली जाती है। सीता अत्यन्त कृश तथा दीन आकृति में दिखायी पड़ती हैं। तमसा भी उनके साथ हैं।

राम भी विमानराज पुष्पक को वहीं उतरने का आदेश देते हैं। सीता उनके स्वर को पहचान लेती हैं। राम की उद्दाम दुःखाग्नि पुनः प्रज्ज्वलित हो उठी है। वे अपनी प्रिया जानकी का स्मरण कर विलाप करने लगते हैं। इसी समय वासन्ती दूर से कहती है कि सीता देवी द्वारा वर्धित गज शावक पर दूसरे गज ने आक्रमण कर दिया है। अतः उसकी रक्षा करो। उसके शब्द को सीता और राम दोनों सुनते हैं।

राम और वासन्ती की भेंट होती है। राम और सीता दोनों उस गजशावक को विजयी देखकर प्रसन्न होते हैं। उसे देखकर सीता को कुश और लव की स्मृति आ जाती है। वे दुःखी हो उठती हैं। तमसा उन्हें समझाती है और कहती है कि अपत्य दम्पतियों के अन्तःकरण को जोड़ने वाली आनन्द-ग्रंथि हैं। राम सीता द्वारा प्रवर्धित पशु-पक्षियों को देखकर सीता के वियोग से विह्वल हो उठते हैं। दुःख के कारण वे रोने लगते हैं। वासन्ती राम को उपालम्भ देते हुये कहती है कि 'आप तो सीता से कहते थे कि तुम्हीं मेरा जीवन हो, आँखों की ज्योति हो, अङ्ग में अमृतलेप हो फिर आप ने उसका त्याग कैसे कर दिया?

आपको यश प्रिय है पर उस मृगाक्षी सीता का वन में क्या हुआ ? इससे बड़ा अयश क्या होगा ?' वासन्ती के आक्षेपों को सुनकर राम व्यथित होकर विलाप करते हैं। वे कहते हैं कि गाढ़ उद्वेग हृदय को विदीर्ण कर रहा है पर दो भागों में विभक्त नहीं कर देता। विकल शरीर में बार-बार मोह होता है पर प्राण नहीं छूटते। अन्तर्दाह शरीर को जला रहा है पर भस्मीभूत नहीं कर देता। विधाता प्रहार कर रहा है पर जीवन-तन्तु को उच्छिन्न नहीं करता। वे यह भी कहते हैं कि सीता-वियोग के बारह वर्ष बीत गये पर मैं अभी जीवित हूँ। राम विलाप करते-करते मूर्च्छित हो जाते हैं और सीता अदृश्य बनी हुई अपने हाथों के स्पर्श से उनमें चैतन्य का सञ्चार करती हैं। राम को प्रतीत होता है कि सीता के कर स्पर्श को उन्होंने प्राप्त किया है पर इसकी संभावना न होने से वासन्ती इसे उन्माद बताती है। राम पुनः विलाप करते हैं। राम वासन्ती से विदा मागते हैं। वे कहते हैं कि अश्वमेध यज्ञ हो रहा है जिसमें सीता की हिरण्मयी प्रतिकृति मेरी सहधर्मचारिणी है। वासन्ती उन्हें कार्यहानि न हो इस लिये शीघ्र जाने को कहती है। तमसा भी सीता से कहती है कि कुश-लव की वर्षग्रंथि मनाने के लिये शीघ्र भगवती भागीरथी के पास चलना चाहिये। सभी लोग चले जाते हैं। इस अङ्क में सीता का दुःख राम के वियोग-विलाप को देखकर शमित होता है तथा हिरण्मयी प्रतिकृति को सुनकर उनके प्रेम के प्रति उनकी आस्था दृढ़ होती है। इस अङ्क में यह भी पता चलता है कि सीता-राम के वियोग तथा लव एवं कुश के जन्म के बारह वर्ष बीत गये हैं।

चतुर्थ अङ्क—इस अङ्क के विष्कम्भक में महर्षि वाल्मीकि के सौधातकि तथा दाण्डचायन नामक दो शिष्यों के वार्तालाप से विदित होता है कि प्राचेतस महर्षि वाल्मीकि के आश्रम पर महर्षि वसिष्ठ, अरुन्धती, कौसल्या एवं राजर्षि जनक आये हुये हैं और वाल्मीकि ने उनकी यथोचित सपर्या की है। जनक वसिष्ठ के साथ नहीं आये हैं, अपितु अपने प्राचीन मित्र वाल्मीकि के दर्शन के लिये उनका आगमन हुआ है। इन अतिथियों के आने से आश्रम में अनध्याय है और सौधातकि अनध्यायजन्य आमोद को मना रहा है। महर्षि वसिष्ठ ने अरुन्धती को कौसल्या के पास प्रेषित कर यह कहलवाया है कि स्वयं चलकर विदेह-राज जनक से भेंट करनी चाहिये। जनक आश्रम के बाहर वृक्ष के नीचे बैठे हुये हैं।

इसके अनन्तर जनक दिखायी पड़ते हैं। सीता पर आयी आपत्ति को सुनकर वे दुःख-विह्वल हो उठे हैं। उनका शोक आरे की भाँति उनके शरीर को काट रहा है। वार्धक्य, व्रतोपवास तथा इस दुःख ने उनके शरीर को सुखा दिया है। उनसे मिलने के लिये अरुन्धती तथा कौसल्या जाती हैं। जनक अरुन्धती को प्रणाम करते हैं तथा कौसल्या का कुशल पूछते हैं। कञ्चुकी बताता है कि कौसल्या ने

सीतात्याग के बाद राम का दर्शन ही छोड़ दिया। लोगों का दुःख बढ़ जाता है। कौसल्या मूर्च्छित हो जाती हैं और जनक द्वारा कमण्डलु के जल से सिक्त होने पर पुनः चेतना को प्राप्त करती हैं। विलाप कर रही कौसल्या से अरुन्धती कहती हैं कि महर्षि वसिष्ठ ने आश्रम में कहा था कि ऐसी भवितव्यता ही थी पर अन्त में मङ्गल होगा। ब्रह्मर्षियों की वाणी कभी असत्य नहीं होती। क्रीड़ा कर रहे बटुओं का झुण्ड उधर आता है। इसमें श्री रामचन्द्र की आकृतिवाले एक विद्यार्थी को देखकर कौसल्या वितर्क करने लगती हैं कि यह राम की आकृति का अनुहारी बालक कौन है। अरुन्धती भी उसी प्रकार की बात कहती हैं। कञ्चुकी मेखला आदि को देखकर बताता है कि यह क्षत्रिय बालक ही है। जनक उसे महर्षि वाल्मीकि के पास उस बालक का वृत्तान्त जानने के लिये भेज देते हैं।

लव पास आकर इन गुरुजनों को प्रणाम करता है। अरुन्धती उसे गोद में ले लेती हैं। जनक तथा कौसल्या उस बालक में राम तथा जानकी के स्वरूप का साम्य देखते हैं और उनका कुतूहल बढ़ जाता है। इसी समय सैनिकों का कोलाहल होता है और विदित होता है कि लक्ष्मण-तनय चन्द्रकेतु राम के अश्व-मेधाश्व की रक्षा के लिये सदलबल वन में पहुँचे हैं और सैनिकों को आदेश दे रहे हैं कि वे वनवासी तपोधनों को किसी प्रकार का कष्ट न दें। आश्रम के विद्यार्थी उस अश्व को देखकर आश्चर्यान्वित होकर लव के पास आकर उसकी सूचना देते हैं और उसका आकार प्रकार बताते हैं। वे लव को पकड़कर वहाँ ले जाते हैं। राम के वीर पुरुष घोषणा करते हैं कि यह अश्व त्रिभुवनजयी रावणनिधनकारी श्री रामचन्द्र की विजय-पताका अथवा उनके वीरत्व की घोषणा है। उनके इस दर्पयुक्त वचन को सुनकर लव उस अश्व को पकड़ लेता है।

पञ्चम अङ्क—इस अङ्क में प्रवेशक और विष्कम्भक का अभाव है। जिस समय अश्व को रोककर एकाकी लव चन्द्रकेतु के सैनिकों के साथ युद्ध कर रहा है उसी समय चन्द्रकेतु भी सुमन्त्र के साथ वहाँ आ जाता है। चन्द्रकेतु के आ जाने से उसके सैनिकों का बल बढ़ता है और वे आश्वस्त होते हैं। लव के इस पराक्रम की चन्द्रकेतु प्रशंसा करता है। सुमन्त्र भी उस बालक के अद्भुत पराक्रम को देखकर प्रभावित हो जाता है। लव के द्वारा अपने सैनिकों का त्वरा से संहार देखकर चन्द्रकेतु शीघ्रता से वहाँ उपस्थित होता है। चन्द्रकेतु युद्ध के लिये लव का आह्वान करता है और लव भी निर्भीकतापूर्वक उसके सामने उपस्थित हो जाता है। सैनिकों द्वारा आक्रमण किये जाने पर लव जृम्भकास्त्र का प्रयोग कर उन सभी को जृम्भित कर देता है। सुमंत्र को आश्चर्य होता है कि ये जृम्भ-

कास्त्र लव को कहाँ से प्राप्त हुये। चन्द्रकेतु कहता है कि प्राचेतस भगवान् वाल्मीकि से लव को ये जृम्भकास्त्र प्राप्त हुये हैं। इस पर सुमन्त्र कहता है कि ये अस्त्र कृशाश्व से विश्वामित्र को प्राप्त हुये और विश्वामित्र से श्रीरामचन्द्र को मिले। चन्द्रकेतु कहता है कि अन्य मंत्रद्रष्टा ऋषि भी सभी वस्तुओं को जान जाते हैं। इसके वाद दोनों चन्द्रकेतु और लव परस्पर एक दूसरे की प्रशंसा करते हैं। लव को भूमि पर खड़ा देख चन्द्रकेतु भी रथ से उतर कर पदातिरूपेण ही युद्ध करना चाहता है और इसके लिये सुमन्त्र की अनुमति मांगता है। सुमन्त्र इस कर्म को न्याय्य कह कर अनुमोदन करता है। सुमन्त्र चन्द्रकेतु को आशीर्वाद भी देता है। उसे रथ से उतरा देख लव उसे रथारूढ़ होने को कहता है। इस पर चन्द्रकेतु भी उसे रथ पर चढ़ने के लिये कहता है। इस पर लव कृतज्ञता के साथ कहता है कि वह रथ पर चढ़ने में अनभ्यस्त है। सुमंत्र कहता है कि यदि श्रीरामचन्द्र लव को देखें तो उनका हृदय वात्सल्य से भर उठेगा। इस पर लव कहता है कि वह भी यज्ञ में वाधा डालने वाला नहीं पर सैनिकों द्वारा सम्पूर्ण क्षत्रियों के तिरस्कार से उसे भी क्रोध उत्पन्न हो गया। चन्द्रकेतु पूछता है कि 'क्या लव को भगवान् राम के प्रकर्षमें भी अमर्ष है ?' लव कहता है कि 'राम तो निरभिमानी तथा जितेन्द्रिय हैं फिर ये सैनिक गर्वोक्तियों को क्यों बोलते हैं। ऋषि लोग उन्मत्तों तथा उत्तेजितों के वचन को राक्षसी वचन कहते हैं। और क्या क्षत्रिय-धर्म किसी एक ही व्यक्ति में स्थित रहता है ?' लव के वचन को सुनकर सुमंत्र भी उत्तेजित हो जाता है। वह कहता है कि श्रीराम ने जामदग्न्य महर्षि परशुराम का दमन किया। इस पर लव कहता है कि ब्राह्मण तो वाणी के बली होते हैं। परशुराम के दमन में उनकी क्या वीरता है ? वह बाली-वध आदि श्रीराम के कर्मों पर आक्षेप भी करता है। उसके वचनों को सुनकर चन्द्रकेतु क्रुद्ध हो जाता है और दोनों युद्ध के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं।

षष्ठ अङ्क—छठें अङ्क के मिश्र विष्कम्भक में विद्याधर तथा विद्याधरी के संवाद के माध्यम से चन्द्रकेतु तथा लव के भयङ्कर युद्ध की सूचना दी गई है। वे दोनों वीर अत्यन्त पराक्रम के साथ धनुष-टङ्कार करते हुये युद्ध कर रहे हैं। चन्द्रकेतु आग्नेयास्त्र का प्रयोग करता है और अग्नि की प्रदीप्त ज्वालायें चतुर्दिक् प्रसृत हो जाती है। लव वारुणास्त्र का प्रयोग करता है जिससे मेघमाला घिर आती है और वर्षा की झड़ियों से आग्नेयास्त्र शमित हो जाता है। चन्द्रकेतु वायव्यास्त्र का सन्धान कर मेघमाला को तितर-वितर करता है। इसी समय शम्बूकवध से निवृत्त होकर श्रीरामचन्द्र वहाँ आते हैं और दोनों कुमारों को युद्ध से विरत करते हैं।

मिश्रविष्कम्भक के अनन्तर श्रीराम, लव तथा चन्द्रकेतु दिखायी पड़ते हैं। राम रथ से उतर कर चन्द्रकेतु का आलिङ्गन कर कुशल पूछते हैं। लव को देखकर वे अत्यन्त प्रभावित होते हैं और उनके हृदय में प्रेम फूट पड़ता है। लव चन्द्रकेतु से राम के विषय में जिज्ञासा करता है और चन्द्रकेतु बताता है कि ये पिता जी हैं। इसपर लव पूछता है कि चारों पिताओं में से ये कौन हैं जिसका उत्तर देते हुये चन्द्रकेतु बताता है कि ज्येष्ठ पिता जी हैं। लव श्रीराम का अभिवादन करता है। राम उसका आलिङ्गन करते हैं और युद्ध से सबको विरत करते हैं। राम लव से पूछते हैं कि उसने जृम्भकास्त्र कहाँ से प्राप्त किया है? लव बताता है कि ये अस्त्र स्वतः ही उसको प्रकाशित हुये हैं। लव बताता है कि वह दो भाई है जिनको ये जृम्भकास्त्र स्वतः उपलब्ध हैं। इसी समय कुश भी युद्ध का वृत्तान्त सुनकर उत्तेजित भाव में वहाँ आता है और लव बताता है कि वह उसका ज्येष्ठ भ्राता कुश है। लव जाकर कुश को शान्त करता है और कहता है उर्मिला-तनय चन्द्रकेतु उसका मित्र हो गया है अतः कुश गुरुभाव से चलकर राम को प्रणाम करे। कुश जाकर राम को प्रणाम करता है और राम उसे अङ्क में भर लेते हैं। राम उनके रूप को देखकर उनमें रघुवंशी बालकों की आकृति का तथा सीता की आकृति का साम्य देखते हैं। राम को उनमें आकृतियों का साम्य, सीता का वाल्मीकि के आश्रम के समीप त्याग, सीता के गर्भ के दो भागों में विभक्त होने का पूर्वानुभव, तथा दोनों का यमल होना एवं जृम्भकास्त्र की स्वतः उद्भूति जिसका उन्होंने चित्र दर्शन के अवसर पर सीता को वरदान दिया था—ये सब बातें इन बालकों के सीतातनय होने का प्रत्यय दिलाती हैं। लव-कुश सीता राम के प्रेम विषयक पद्यों को सुनाते हैं जिन्हें सुनकर राम का शोक बढ़ जाता है। इसी समय सूचना मिलती है कि वाल्मीकि, वसिष्ठ, दशरथ की रानियाँ, जनक तथा अरुन्धती जराजर्जरित होने के कारण थके हुये से शीघ्रता से आ रहे हैं।

सप्तम अङ्क—पञ्चम अङ्क की ही भाँति इस अङ्क में भी विष्कम्भक का अभाव है। अङ्क के आरम्भ में लक्ष्मण यह सूचना देते हैं कि वाल्मीकि की कृति (अभिनेय सन्दर्भ) को अप्सरायें उनके आश्रम के समीप गंगा के किनारे प्रदर्शित करेंगी। वाल्मीकि ने राम तथा उनकी सारी प्रजा को इस प्रदर्शन को देखने के लिये आहूत किया है। उन्होंने अपने तपः–प्रभाव से देवादि सहित सारे चराचर प्राणियों को वहाँ उपस्थित कर दिया है। राम-लक्ष्मण सारे पौरजानपदों के साथ वहाँ उपस्थित होते हैं। नाटक प्रारम्भ होता है। सूत्रधार बताता है कि महर्षि वाल्मीकि ने अपने आर्ष चक्षुओं से इस नाटक की कथावस्तु का दर्शन कर इसे उपनिबद्ध किया है। यह करुण तथा अद्भुत रस से युक्त है। राम की

आज्ञा से वाल्मीकि-आश्रम के समीप लक्ष्मण के द्वारा सीता-त्याग से यह नाटक[1] प्रारम्भ होता है। पृथिवी और भागीरथी गङ्गा से अवलम्बन दी हुई सीता दिखाई पड़ती हैं। पृथ्वी तथा भागीरथी बताती हैं कि सीता ने जल के भीतर दो रघुवंशकुमारों को जन्म दिया है। राम इस करुण दृश्य को देखकर मूच्छित हो जाते हैं। पृथिवी सीता की इस दयनीय दशा पर अत्यन्त दुःखित होती हैं। राम के प्रति भी उनका आक्रोश प्रकट होता है। भागीरथी उन्हें समझा-बुझाकर सान्त्वना देती हैं। पृथिवी भी बताती हैं कि राम को वियोग-जन्य हुये दुःख को वे जानती हैं किन्तु पुत्री पर आयी विपत्ति के कारण वे दुःखी हैं। इसी समय दिव्य जृम्भक अस्त्र प्रकट होते है तथा दोनों कुमारों को प्राप्त होते हैं। वे यह बताते है कि चित्र-दर्शन के अवसर पर राम ने उन दिव्य अस्त्रों को सीता के गर्भस्थ बालकों को प्राप्त होने का आशीर्वाद दिया था। सीता को चिन्ता होती है कि उन कुमारों को क्षत्रियोचित संस्कार कौन करेगा? भागीरथी कहती हैं कि स्तन-त्याग के अनन्तर वे दोनों कुमारों को वाल्मीकि ऋषि को सौंप देंगी जो उनका क्षत्रियोचित संस्कार करेंगे। यह दृश्य देखकर लक्ष्मण राम से कहते हैं कि ये बालक कुश-लव ही वे बालक हैं क्यों कि इन्हें दिव्यास्त्र जन्म से सिद्ध हैं, ये वाल्मीकि के आश्रम पर हैं तथा इनकी वयस् बारह वर्ष की है। सीता को लेकर पृथ्वी और भागीरथी चली जाती हैं। राम मूच्छित होकर गिर पड़ते हैं।

राम की मूच्छितावस्था में ही गंगा की धारा से सीता के साथ गंगा और पृथिवी बाहर निकलती हैं। वे दोनों देवियाँ अरुन्धती के हाथ सीता को सौंप देती हैं और कहती हैं कि सीता पुण्यव्रता वधू है। अरुन्धती सीता से कहती है कि वे राम के शरीर का स्पर्श करें जिससे राम की चेतना लौट आवे। सीता वैसा ही करती हैं और राम प्रकृतिस्थ होते हैं। वे सामने सीता, अरुन्धती, तथा ऋष्यश्रृंग आदि गुरुजनों को देखते हैं। अरुन्धती राम को भागीरथी का दर्शन कराती हैं। भागीरथी गंगा कहती हैं कि "हे जगत्पते रामचन्द्र! चित्र-दर्शन के अवसर पर आपने कहा था 'हे मातः! भगवती अरुन्धती के समान आप सीता की मंगल-चिन्तना करें।' आप के उस वचन से मैं मुक्त हो गयी।" पृथिवी भी कहती हैं कि सीता के त्याग करते समय उनसे राम ने सीता की रक्षा के लिये कहा था। उस वचन से वे मुक्त हो गयीं। अरुन्धती पुरवासियों से कहती हैं कि सीता की

१—वस्तुतः यह मुख्य नाटक में आने वाला गर्भाङ्क (या गर्भनाटक) है। गर्भाङ्क का लक्षण इस प्रकार है :

अङ्कोदरप्रविष्टो यो रङ्गद्वारामुखादिमान्।
अङ्कोऽपरः स गर्भाङ्कः स बीजः फलवानपि॥ —साहित्यदर्पण, ६।

जाह्नवी और वसुन्धरा प्रशंसा कर रही हैं, पूर्वकाल में अग्निदेव ने इनके सच्चारित्र्य की घोषणा की है और ब्रह्मादि देवताओं ने इनकी स्तुति की है। अब इनके विषय में आप लोगों की क्या सम्मति है ? वे सीता को रामचन्द्र के हाथ सौंपती हैं और वाल्मीकि से कहती हैं कि वे कुश-लव को लावें। वाल्मीकि कुश-लव को लाते हैं। सबका मिलन होता है। इसी समय लवणासुर का वध कर शत्रुघ्न भी वहाँ पहुँच जाते हैं। इस मिलन से आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ता है। मंगल वचन के साथ नाटक समाप्त होता है।

उत्तररामचरित की घटनाओं का स्थान—प्रथम अङ्क (चित्र-दर्शन) की घटना अयोध्या में घटित होती है। द्वितीय अङ्क की घटना दण्डकारण्य में घटती हैं जहाँ राम शम्बूक-वध के लिये गये हुये हैं। तृतीयाङ्क की घटना भी दण्डक और पञ्चवटी से ही सम्बद्ध है। चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ तथा सप्तम अङ्क की घटनायें वाल्मीकि आश्रम में घटित होती हैं। वाल्मीकि का आश्रम गंगातट के समीप ही है।

कथावस्तु का आधार

उत्तररामचरित की कथावस्तु का मुख्य आधार वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड में वर्णित रामकथा है। रामायणीय कथा को अभिनेय बनाने की दृष्टि से महाकवि भवभूति ने मूलकथा में कुछ परिवर्तन किया है जो उनके नाटचकौशल तथा प्रतिभा का परिचायक है। इनमें मुख्य अन्तर हैं— वन में वासन्ती और राम का मिलन, सीता द्वारा राम की मूर्च्छा दूर किया जाना, वसिष्ठ, अरुन्धती और राम की माताओं का वाल्मीकि आश्रम में निवास, लव-चन्द्रकेतु का युद्ध और राम-सीता का नाटकान्त में मिलन। शम्बूक वध तथा लवणवध भी रामायण में उस प्रसंग में नहीं है जिस प्रसंग में यहाँ वर्णित है। वाल्मीकीय रामायण के अतिरिक्त राम-कथा महाभारत (सभापर्व अ० ३८ वनपर्व अ० २७७—२९१, गीताप्रेस-संस्करण), तथा पुराणों में वर्णित हैं। महाभारतीय कथा में राम के जीवन-चरित्र का यह उत्तर अंश वर्णित नहीं है। अन्य पुराणों की कथाओं में भी इसका अभाव है। केवल पद्मपुराण पाताल-खण्ड में जो कथा प्राप्त होती है उसी में राम के सीता-त्याग, अश्वमेध यज्ञ, वाल्मीकि-आश्रम में कुश-लव का अश्व को पकड़ना, वाल्मीकि द्वारा राम को उनका परिचय तथा सीता-राम का मिलन वर्णित है। किन्तु पद्मपुराण, पाताल-खण्ड की कथा तथा उत्तररामचरित की कथा में भी पर्याप्त पार्थक्य है—पद्म-पुराण में अश्वमेध के अश्व का रक्षक भरत-पुत्र पुष्कल है पर उत्तररामचरित में लक्ष्मण-पुत्र चन्द्रकेतु, पद्मपुराण में महर्षि वाल्मीकि ने कुश तथा लव को अस्त्र-

विद्या की शिक्षा दी है पर उत्तररामचरित में अस्त्र उनको स्वतः प्रकट हुये हैं; पद्मपुराण में लव वन्दी बना लिया जाता है जिसे कुश सारी सेना को जीतकर मुक्त करता है पर उत्तररामचरित में यह बात नहीं है। इसमें लव वन्दी नहीं होता। इसके अनन्तर यज्ञ में राम इनके पराक्रम को सुनते हैं। वाल्मीकि उनका परिचय देते हैं। सीता अयोध्या में बुलायी जाती हैं और वाल्मीकि की आज्ञा से राम सीता को ग्रहण करते है पर उत्तररामचरित में सीता की प्राप्ति वाल्मीकि-आश्रम में ही होती है। इस प्रकार भवभूति के कथानक का आश्रय रामायण तथा पुराण दोनों हैं। भवभूति की विद्वत्ता बहुमुखी थी। उन्हें नाना शास्त्रों का ज्ञान था। उन्होंने विभिन्न स्थलों से अपना आधार लेते हुये उनमें परिष्कार, परिवर्धन तथा परिर्तन किया। इस परिवर्तन में उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों द्वारा संकेत किये मुख्य घटनाओं का भी समावेश किया।

चरित्र-चित्रण

राम—इस नाटक के नायक श्रीरामचन्द्र हैं। वे साक्षात्-परब्रह्म परमात्मा हैं। वे सम्पूर्ण चराचर प्राणियों के स्वामी तथा शरणदाता हैं—**अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने भूतनाथः शरण्यः** (२।१३)। वे सारे संसार के स्वामी हैं। भवभूति के राम समस्त आदर्शो के पुञ्जीभूत विग्रह हैं। आदर्श राजा, आदर्श पति, आदर्श पिता, आदर्श भ्राता इत्यादि जितने प्रकार के सांसारिक आदर्श हैं उन सभी के पिण्डीभूत रूप श्रीरामचन्द्र हैं। भवभूति ने उनके लोकोत्तर चारित्र्य और व्यक्तित्व का सर्वत्र निदर्शन किया है। राम का प्रजापालक रूप अप्रतिम हैं। उनकी आरम्भ में ही यह प्रतिज्ञा है कि लोकाराधन के लिये वे स्नेह, दया, सुख अथवा जानकी को भी छोड़ सकते हैं।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥—१।१२

इस आदर्श की ओर उनका ध्यान सदा रहता है। प्रकृतिरञ्जतन ही राजा का धर्म धर्म है—**राजा प्रकृतिरञ्जनात्**, चाहे इसके लिये उसे जो भी कष्ट उठाना पड़े। मनस्वियों के लिये जनानुरञ्जन का कठिन कार्य आवश्यक है—**कष्टं जनः कुलधनैरनुरञ्जनीयः** (१।१४) वे जिस किसी भाँति प्रजानुरञ्जनह के लिये उद्यत हैं।

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्।
यत्पूरितं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता॥—१।४१

इसी लोकाराधन के लिये वे सीता को निरपराधिनी जानते हुये भी त्याग

देते हैं। लोकरञ्जन का इससे बढ़कर आदर्श हो नहीं सकता। वस्तुतः प्रजा का इतना हितचिन्तक तथा समाराधक कोई अन्य राजा हुआ ही नहीं। राजपद सुख का नहीं त्याग और तपस्या का है। राजा का वैयक्तिक सुख प्रजा की इच्छा पर आधृत है।

राम का पतिरूप भी आदर्श है। एकपत्नीव्रत ही उनका लक्ष्य है। प्रजानुरञ्जन के लिये उन्होंने सीता का तो त्याग कर दिया पर इससे जो उनको अपार दुःख हुआ वह भी आदर्श ही है। सीता के प्रति उनकी धारणा कितनी स्थिर तथा उदात्त थी इसका पता उनके इस कथन से लग जाता है :

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ॥—१।४३

सीता के त्याग का निश्चय करते ही वे अपने को अत्यन्त क्रूरकर्मा तथा नीच समझने लगते हैं। अङ्क में शिर रखकर सोयी सीता के शिर को अपने अङ्क से हटाते हुये वे ये कह रहे हैं :

अपूर्वकर्मचाण्डालमयि मुग्धे विमुञ्च माम्।
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम् ॥—१।४६

तथा—

विस्रम्भादुरसि निपत्य लब्धनिद्रा—
मुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य शोभाम्।
आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीं
क्रव्याद्भ्यो बलिमिव निर्घृणः क्षिपामि ॥—१।४९

सीता के त्याग से जो राम को महती वेदना, दुःख एवं ग्लानि हुई वह भी लोकोत्तर ही है—न भूतो न भविष्यति। उनका जीवन ही दुःखानुभव के लिये है। उनके प्राण वज्रकील के समान हैं जो निकलते नहीं और मर्मों पर प्रहार करते हैं :

दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम्।
मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि ॥—१।४७

शम्बूकवध के लिये जब वे पञ्चवटी और जनस्थान का भ्रमण करते हैं तो उनका दुःख पुनः नवीन हो उठता है। तृतीय अङ्क में मुरला के कथन से पता चलता है कि सीता पर आयी विपत्ति के शोक से वे अत्यन्त कृश हो गये हैं—**तेन च तथाविधेष्टजनकष्टविनिपातजन्मना प्रकर्षगतेन दीर्घशोकसन्तापेन सम्प्रत्यतितरां परिक्षीणो रामभद्रः** (३।१ से आगे)। जनस्थान (दण्डकारण्य) में जाने पर उनका शोक सहसा उभर आता है और उन्हें असह्य पीड़ा होती है।

उस समय उनका शोक बहुत काल के पश्चात् आरम्भ होने वाले तथा फैलने वाले विषरस के समान, किसी भाँति हिल जाने के कारण वाण के टुकड़े के समान और हृदय के मर्मस्थल में बढ़कर फूटे हुये फोड़े के समान कष्ट देने लगता है :

चिराद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः
कुतश्चित्संवेगात्प्रचल इव शल्यस्य शकलः ।
व्रणो रूढग्रंथिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः
घनीभूतः शोको विकलयति मां मूर्च्छयति च ॥—२।२६

गाढ उद्वेग उनके हृदय का दलन करता है पर दो भागों में खण्डित नहीं कर देता, विकल शरीर बार-बार अचेत हो जाता है पर प्राण नहीं छूटते, अन्तर्दाह शरीर को दग्ध कर रहा है पर भस्मीभूत नहीं कर डालता, मर्मों पर विधि प्रहार कर रहा है पर जीवन-तन्तु को नहीं काट डालता :

दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम् ।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥—३।३१

सीता के वियोग में उनका हृदय फटा जा रहा है, देहबन्धन विशीर्ण होता जा रहा है, जगत् सूना-सा लग रहा है, वे सतत अन्तर्ज्वाला से जल रहे हैं, अवसादयुक्त अन्तरात्मा अन्धकार में डूब रहा है तथा चारों ओर से मूर्च्छा घेर रही है :

हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥—३।३८

सीता के प्रति उनका अटूट प्रेम है । सीता-निर्वासन का कील उन्हें सदैव चुभता रहता है । वे एक पत्नीव्रत के आदर्श हैं । कामके लिये कौन कहे धर्म के लिये भी वे दूसरा विवाह करने को प्रस्तुत नहीं । अश्वमेध यज्ञ में सहधर्मचारिणी का होना आवश्यक है । अपत्नीक यज्ञ कैसे करेगा—**अयज्ञीयो यो ह्येष अपत्नीकः** (तै० ब्रा०) । इतना धार्मिक बन्धन होने पर भी वे दूसरा व्याह नहीं करते और सीता की हिरण्मयी प्रतिकृति को अर्धाङ्गिनी के आसन पर विराजमान करते हैं । उनका सीता के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है । सीता उनके घर की लक्ष्मी हैं, आखों में अमृताञ्जन हैं, सीता का स्पर्श चन्दन-रस की भाँति शीतल है, सीता की बाहें उनके गले में मुक्ता की माला हैं—

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो—
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥—१।३८

राम में विनय-भावना भी पर्याप्त दिखायी पड़ती है। आत्मप्रशंसा की भावना उनमें रञ्चमात्र भी नहीं है। प्रथम अङ्क में चित्रदर्शन के अवसर पर जब लक्ष्मण मिथिला में परशुराम के मानमर्दन का दृश्य दिखाते हैं उस समय राम उस प्रसङ्ग को हटाते हुये कहते हैं—**अयि वत्स, बहुतरं द्रष्टव्यम् अन्यतो दर्शय**। सीता उनके इस विनय को ताड़ जाती हैं और कहती है—**सुष्ठु शोभते एतेन विनयमाहात्म्येन**। क्षमाशीलता भी उनमें उसी प्रकार है जिस प्रकार कि विनयशीलता। जब लक्ष्मण कैकेयी द्वारा वनवास का दृश्य दिखाते हैं उस समय भी राम विषयान्तर कर देते हैं। उस समय लक्ष्मण कहते हैं—**अये मध्यमाम्बावृत्तान्तमन्तरितमार्येण**। सीता का त्याग करने के कारण उन्हें वासन्ती नाना प्रकार से उपालम्भ देती है पर वे शान्त भाव से अपना दोष स्वीकार कर लेते हैं।

राम प्रजापालन में सदैव तत्पर हैं। जिस प्रजा के अनुरंजन के लिये उन्होंने अपनी प्राणेश्वरी सीता का त्याग कर दिया उसकी हितचिन्ता का उन्हें सदैव ध्यान बना रहता है। लवण के उत्पातों को सुनकर सद्यः शत्रुघ्न को वहाँ भेंजना तथा शम्बूक-वध के लिये स्वयं प्रस्थान करना उनकी प्रजा की हितचिन्ता के उदाहरण हैं। इक्ष्वाकुवंश प्रजाओं का प्रिय रहा है और वांशिक परम्परा का वे पूर्णतः निर्वाह करते हैं—

इक्ष्वाकूणां कुलधनमिदं यत्समाराधनीयः कृत्स्नो लोकः—७।६

राम का चित्त एक ओर तो वज्र से भी अधिक कठोर है तथा प्रजानुरञ्जन के लिए सीता का भी त्याग करने में विचलित नहीं होता वहाँ दूसरी ओर कुसुम से भी अधिक कोमल है, सहानुभूति तथा स्नेह से स्निग्ध-शीतल है। पञ्चवटी तथा दण्डक के प्राचीन अनुभूत दृश्यों को देखकर वे विह्वल हो जाते हैं, उनका चित्त चञ्चल हो उठता है। वे बार-बार मूर्च्छित होने लगते हैं। द्वितीय अङ्क में कविने वासन्ती के मुख से उनके चित्त का बड़ा ही सटीक चित्रण किया है:

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥—२।७

राम की गंभीरता लोकोत्तर है। सीता-त्याग-जन्य दुःख से उनका हृदय जला

जा रहा है, शरीर-ग्रंथि शिथिल हो रही है पर इस दुख को वे प्रकट नहीं होने देते। उनके गाम्भीर्य के कारण वह प्रकाशित नहीं होता। जिस प्रकार मिट्टी से लिपा पात्र विशेष (पुटपाक) अवाँ (कुम्हार की आग) में पकता रहता है उसी भाँति उनका हृदय भी जल रहा है:

अनिर्भिन्नो गंभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः॥—३।१

राम का दुःख सामान्य कोटिका नहीं—प्राणघातक है। वे सीता का त्याग कर मनसे जल रहे हैं, केवल प्रजापुण्य-मात्र से जीवित हैं:

दह्यमानेन मनसा दैवाद्वत्सां विहाय सः।
लोकोत्तरेण सत्त्वेन प्रजापुण्यैश्च जीवति॥--७।७

राम का प्रेम आदर्श कोटिका है। प्रेम के विषय में उनकी धारणा है कि कोई आन्तरिक तत्त्व दो हृदयों को मिलाता है, प्रीति बाह्य उपाधियोंका आश्रय नहीं लेती, सूर्य के उदित होने पर कमल खिलता है तथा चन्द्र के उदित होने पर चन्द्रकान्तमणि द्रवित होती है:

व्यतिजषति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः॥--६।१२

संक्षेप में रामका चरित्र आदर्श रूप में अङ्कित किया गया हैं। वे आदर्श राजा, आदर्श पति, आदर्श बन्धु, आदर्श मित्र हैं। क्षमा, दया, औदार्य, गम्भी-रता, विनयशीलता का सम्मिलित समुदाय ही राम का चरित्र है।

सीता—इस नाटक की नायिका सीता हैं जो आदि शक्ति हैं। अष्टावक्र ने आरम्भ में वसिष्ट के सन्देश के रूप में उनके महत्त्व का प्रतिपादन किया है। वे पृथ्वी की पुत्री, प्रजापति-तुल्य राजर्षि जनक की कन्या तथा श्रीराम की पत्नी हैं:

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत
राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि पार्थिवानां
येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च॥—१।९

सीता आदर्श सती हैं। उनका शील-सदाचार विश्व-साहित्य में अनूठा है। प्रथम अङ्क में जब राम कहते हैं कि प्रजापालन के लिये वे सुख और सीता सभी का त्याग कर सकते हैं उस समय सीता कहती हैं—**अत एव राघव-कुलधुरंधर आर्यपुत्रः।** एक ओर तो राम सीता के त्याग की बात करते हैं

दूसरी ओर सीता उनकी प्रशंसा करती हैं। सीता का राम के प्रति असीम अनुराग प्रथम अङ्क में ही प्रकट हो जाता है। जिस समय राम सोयी हुई सीता को छोड़कर वहाँ से हट जाते हैं इस समय सीता कहती हैं कि जब वे आयेंगे तो उनपर वे कोप करेंगी यदि उस समय वे अपने पर काबू रख सकेंगी—**हा धिक्, हा धिक्, एकाकिनीं मां प्रसुप्तामुज्झित्वा गत आर्यपुत्रः। किमिदानीमेतत्? भवतु तस्मै कोपिष्यामि, यदि तं प्रेक्षमाणा आत्मनः प्रभविष्यामि।**

सीता के जीवन का दुःखमय अंश ही इस नाटक में प्रदर्शित है। उनकी गर्भभारभरालसा अवस्था में राम उनका वन में त्याग करते हैं। राम के प्रति उनके हृदय में क्षोभ है तथापि तृतीय अङ्क में जब वे राम के विरह-विधुर कृश शरीर को देखती हैं तो दुःख के मारे मूर्च्छित हो जाती हैं। धन्य है सतीत्व का आदर्श! जिस कर्त्तव्यपरायण प्रजारञ्जक राजा ने उनका त्याग कर दिया उसके प्रति उनके हृदय में कितना प्रेम है। प्रेम की यह पराकाष्ठा है। जब वासन्ती सीतात्याग के कारण राम को उपालम्भ देने लगती है तो सीता कहती हैं कि वासन्ती ही कठोर है जो प्रदीप्त आर्यपुत्र को और प्रदीप्त कर रही है—**त्वमेव सखि वासन्ति, दारुणा कठोरा च यैवमार्यपुत्रं प्रदीप्तं प्रदीपयसि।'** जब राम मूर्च्छित हो जाते हैं तो सीता अपने कोमल करस्पर्श से उनमें चेतना का सञ्चार करती हैं।

सीता की श्रद्धा राम के प्रति अटूट है। तृतीय अङ्क में जब राम जाने लगते हैं तो सीता उनके दर्शन को अपूर्वपुण्य का प्रसाद समझती हैं—**नमो नमोऽपूर्वपुण्यजनितदर्शनाभ्यामार्यपुत्रचरणकमलभ्याम्।** सप्तम अङ्क में भी उनके इस चरित्र की पुष्टि होती है। सीता राम द्वारा हिरण्मयी सीता की योजना से अपने दुःखका प्रतीकार मान लेती हैं। जब राम वासन्ती से कहते हैं उन्होंने स्वर्णमयी सीता को यज्ञ में स्थापित किया है तो सीता कहती है—**आर्यपुत्र इदानीमसि त्वम् अहो उत्खातमिदानीं मे परित्यागलज्जाशल्यमार्यपुत्रेण—३.४५।**

सीता आदर्श पतिपरायणा स्त्री हैं जिनके शील-सौन्दर्य-ज्योत्स्ना से आज भी दिग्दिगन्त आपूरित है।

चन्द्रकेतु—लक्ष्मण-तनय चन्द्रकेतु अश्वमेधाश्व की रक्षा के लिये निकला है। वह वीर, धीर तथा गुणग्राही है। जब लव अश्वमेध के अश्व को हठात् पकड़ कर रक्षक सैनिकों को संत्रस्त कर देता है तो चन्द्रकेतु अश्व छुड़ाने के लिये उद्यत होता है। लव के कमनीय कलेवर तथा अद्भुत पराक्रम को देखकर वह उसकी प्रशंसा करता है। चन्द्रकेतु अत्यन्त शिष्ट है। लव के प्रति उसके व्यवहारों से यह स्पष्ट हो जाता है। श्रीरामचन्द्र के प्रति इसके हृदय में अपार श्रद्धा है।

उनके प्रति वचनीय सुनने को वह कथमपि तैयार नहीं। जब लव राम के प्रति आक्षेप करता है तो चन्द्रकेतु अत्यन्त क्रुद्ध हो जाता है और कहता है—**आः तातापवादभिन्नमर्याद, अतिहि नाम प्रगल्भसे** (५।३४ से आगे)। वह युद्ध के लिये सन्नद्ध हो जाता है। चन्द्रकेतु धर्म तथा मर्यादा का पोषक है वह रथहीन के साथ रथारूढ होकर युद्ध नहीं कर सकता। वह रथ से उतर जाता है। इस पर जब लव उससे रथारुढ होने का आग्रह करता है तो चन्द्रकेतु कहता है—**तर्हि महाभागोऽप्यन्यं रथमलङ्करोतु** (अङ्क ५)। राम के पुत्र न होने से चन्द्रकेतु दुःखी है—**अप्रतिष्ठे रघुज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः** (५।२५)। सुमन्त्र के प्रति वह अत्यन्त आदर का व्यवहार करता है वह उनसे उचित-अनुचित के बारे में प्रश्न करता है:

> इतिहासपुराणं च धर्मप्रवचनानि च।
> भवन्त एव जानन्ति रघूणां च कुलस्थितिम्॥—५।२३

वह सुमन्त्र का अभिवादन बड़ी श्रद्धा से करता है। राम के आने पर जब लव के साथ उसका युद्ध बन्द हो जाता है और राम लव का परिचय पूछते हैं तो चन्द्रकेतु लव को अपना मित्र बताता है। जिस व्यक्ति के साथ वह अभी-अभी भयङ्कर युद्ध में संलग्न था उसे वह अपना मित्र बताता है। इससे उसके स्वभाव की गम्भीरता तथा उदाराशयता प्रकट होती है।

लव—लव अत्यन्त पराक्रमी, धीर, तथा विनयी है। उसका शरीर अत्यन्त सुन्दर है यह श्रीराम का पुत्र है तथा स्तनत्याग के अनन्तर महर्षि वाल्मीकि ने इसका पालन-पोषण तथा क्षत्रियोचित संस्कार किया है। उसके शरीर की वेश-भूषा अत्यन्त सुन्दर लगती है। उसकी पीठ पर बाणों से आपूर्ण तूणीर, वक्ष स्थल पर थोड़ी भस्मलगी है तथा रुरुमृग का चर्म विराजमान है, कटि में मूर्वा की बनी मेखला है, हाथ में धनुष, जपमाला तथा पीपल का दण्ड है—

> चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
> भस्मस्तोकपवित्रलाञ्छनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम्।
> मौर्व्या मेखलया नियंत्रितमधोवासश्च माञ्जिष्ठकं
> पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः॥—४।२०

लव की आकृति राम से एकदम मिलती है। उसे देखते ही कौसल्या तथा जनक आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

लव अत्यन्त स्वाभिमानी है तथा वीरभाव से आपूर्ण है। जब चन्द्रकेतु के सैनिक अश्वमेध अश्व को वीरघोषणा बताते है तो लव का स्वाभाविक क्षात्र तेज उबल पड़ता है तथा वह कहता है—**भो भोः किमक्षत्रिया पृथ्वी यदेवं**

उद् घोषयन्ति तथा सैनिकों के द्वारा राम के पौरुष का वर्णन सुनकर वह यह कहते हुये कि यदि वे ऐसे हैं तो ठीक है इसमें डरने की क्या बात अश्व का हरण कर लेता है :

यदि ते सन्ति सन्त्येव केयमद्य विभीषिका ।
किमुक्तैरेभिरधुना तां पताकां हरामि वः ॥—४।२८

वह चन्द्रकेतु से कहता है कि वह यज्ञ का विघ्नकारी नहीं। राम के गुणों का कौन व्यक्ति इस भूतल पर सम्मान नहीं करता। केवल अश्व-रक्षकों के सम्पूर्ण क्षत्रियों के तिरस्कारी वचन ने उसे क्रुद्ध कर दिया :

वयमपि न खल्वेवंप्रायाः क्रतुप्रतिघातिनः
क इह न गुणैस्तं राजानं जनो बहु मन्यते ।
तदपि खलु मे स व्याहारस्तुरङ्गमरक्षिणां
विकृतिमखिलक्षत्राक्षेपप्रचण्डतयाऽकरोत् ॥—५।२९

वह अत्यन्त वीरता से चन्द्रकेतुका सामना करता है। इस प्रसङ्ग में वह राम के प्रति निर्भीकता से कुछ आक्षेप करता है। वह वेद-वेदाङ्ग में पारगामी तथा नीति का ज्ञाता है। जब बालक उससे अश्व के बारे में जिज्ञासा करते हैं तो वह उनको बताता है कि यह अश्वमेध यज्ञ का अश्व है। वह ब्राह्मण-ग्रन्थों के अश्वमेध-प्रकरण का भी निर्देश करता है। कटु वचनों के दोष तथा सूनृता वाणी की प्रशंसा उसने इन शब्दों में की है :

ऋषयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः ।
सा योनिः सर्ववैराणां सा हि लोकस्य निर्ऋतिः ॥—५।३०

तथा—

कामान्दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं
कीर्तिं सूते दुष्कृतं या हिनस्ति ।
तां चाप्येतां मातरं मङ्गलानां
धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः ॥—५।३१

बड़ों की मर्यादा का लव को ध्यान है। ज्योंही राम आते हैं त्यों ही वह युद्ध बन्द कर देता है। चन्द्रकेतु का उन्हें पिता सुन अपना धर्मतः पिता मानता है तथा उनके चरणों पर नत होता है।

कुश—यह लव का ज्येष्ठ भ्राता है। इसकी भी शिक्षा-दीक्षा तथा संस्कार महर्षि वाल्मीकि ने किया है। जृम्भकास्त्र इसे भी लव की ही भाँति जन्मतः सिद्ध हैं। यह अद्भुत पराक्रमी तथा विनयी वीर है। महर्षि बाल्मीकि ने उसे भरतमुनि के आश्रम में भेजा था जहाँ से वह लौटा है। लौटते ही उसे लव

के साथ इक्ष्वाकुवंशी वीरों की लड़ाई का वृत्तान्त ज्ञात होता है और वह उद्दीप्त हो जाता है। उसकी पराक्रमशालिता, गम्भीरता तथा पौरुष का वर्णन कवि ने राम के मुख से इस प्रकार कराया है :

दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्री।
कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतां दधानो
वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव॥—६।१९

इक्ष्वांकुवंशी वीरों के साथ युद्ध करने में वह गर्व का अनुभव करता है और आते ही उद्धत भाव से दृप्त वचन कहता है :

दत्तेन्द्राभयदक्षिणैर्भगवतो वैवस्वतादामनो-
र्दृप्तानां दहनाय दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः।
आदित्यैर्यदि विग्रहो नृपतिभिर्धन्यं ममैत्ततो
दीप्तास्त्रस्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यं धनुः॥—६।१८

राम के प्रति उसके हृदय में भी उसी भाँति सम्मान की भावना है जिस भाँति लव के हृदय में। राम के चरणों में वह झुक जाता है।

जनक—मिथिलाधीश राजर्षि जनक सीता के पिता तथा राम के श्वसुर हैं। महाराज दशरथ के वे पुराने मित्र हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य से उन्होंने ब्रह्म-विद्या का अध्ययन किया है—**याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ** (४।९)। सीता के त्याग को सुनकर उन्हें महान् क्लेश हुआ है। वे दिन-रात उसी दुःख से जल रहे हैं (४।२)। शोक आरे के समान उनके हृदय को काट रहा है (४।३)। दुःख तथा लज्जा से वे जोर से रोने में भी असमर्थ हैं। कौसल्या आदि पर वे कुछ रुष्ट हैं पर जब देखते हैं कि दुःख से कौशल्या अत्यन्त कृशित हो गयीं हैं तो उनका सारा आक्रोश जाता रहता है और वे दया-विगलित हो जाते है। कौसल्या को देखकर उनकी पुरानी स्मृतियाँ उभर आती हैं। जब वे लव को देखते हैं तो तुरन्त उसमें राम तथा सीता की आकृति का भान हो जाता है (४।२२)।

कौसल्या—राम-माता कौसल्या सीता-विर्वासन से अत्यन्त दुःखिनी हैं। वार्धक्य तथा इस दुःख से उनकी शरीर-दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी है। जब से राम ने सीता का निर्वासन कर दिया तब से वे अयोध्या नहीं गयीं। उनके शरीर की दुःखावस्था का जनक को तुरन्त पता चल जाता है। दुःख से उन्हें मूर्च्छा भी हो जाती है।

लक्ष्मण—लक्ष्मण राम के एकनिष्ठ सेवक हैं। मनोविनोद के लिये वे राम-सीता को चित्र दिखाते हैं। चित्रदर्शन के अवसर पर यह पता चलता है कि व्यवहार में उतने पटु नहीं जितने कि राम। इसीलिये वे कह देते हैं कि सीता की अग्नि-शुद्धि तक का चित्र अङ्कित है। राम को इससे सीता की चित्त-व्यथा की आशंका होती है। राम की आज्ञा से वे एकाकिनी सीता को वन में छोड़ देते हैं। वाल्मीकि-आश्रम में अभिनय के अवसर पर भी वे राम को सान्त्वना देते रहते हैं।

वासन्ती—दण्डकारण्य की वनदेवता वासन्ती सीता तथा राम की सखी है। सीता के निर्वासन को सुनकर उसे मानसिक पीड़ा हुई है और राम के प्रति उसके हृदय में आक्रोश भी हो गया है। राम को सीता-त्याग के लिये वह उपालम्भ देती है। वह कहती है आप इतने कठोर हैं कि आपको यश ही प्रिय है पर इस बात पर आप का ध्यान नहीं गया कि मृगाक्षी सीता का एकाकिनी अवस्था में वन में क्या हुआ :

अयि कठोर यशः किल ते प्रियं
किमयशो ननु घोरमतः परम्।
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः
कथय नाथ कथं बत मन्यसे॥—३।२७

किंतु उसके हृदय में राम के प्रति पूर्ण सहानुभूति भी है। उनके विलाप में वह सान्त्वना देती रहती है तथा शोक का त्याग करने के लिये भी कहती रहती है। राम को वन में विलम्ब करते देख वह उन्हें शीघ्र लौट जाने को कहती है जिससे कार्य में हानि न हो—**महानयं व्यतिकरः अस्माकं प्रमादः। गमनं पुनर्यथा कार्यहानिर्न भवतु तथा स्ताम्** (३।४५ से आगे) वासन्ती के चरित्र में सीता-राम के प्रति सहानुभूति भरी है।

वाल्मीकि—प्राचेतस महर्षि वाल्मीकि ब्रह्मविद्या में निष्णात हैं। लोग उनके पास ब्रह्मविद्या के अध्ययन के लिये आते हैं। वाल्मीकि आद्य कवि हैं जिनकी लौकिक वैखरी क्रौञ्चवध के कारण उद्भूत हुई। ब्रह्माजी के कहने से उन्होंने राम-चरित की पद्य मय लौकिक संस्कृत में रचना की है। इस रामचरित को उन्होंने राम के पुत्र लव-कुश को पढ़ाया है जिनका स्तन-त्याग के अनन्तर उन्होंने पालन-पोषण तथा संस्कार किये हैं। राम के उत्तर जीवन की कथा को उन्होंने दृश्य काव्य का रूप दिया तथा चराचर प्राणियों एवं पौरजानपदों के सामने उसका प्रदर्शन किया। इस प्रदर्शन का उद्देश्य सीता के सच्चारित्र्य का प्रदर्शन तथा सीता-राम का मिलन है। इस प्रकार वे नाटक को सुखान्त बनाते हैं।

अन्य पात्रों का चरित्र सामान्य है और नाट्य-घटना के विकास में यथा-समय अपेक्षित योगदान करता है ।

उत्तररामचरित-समीक्षा

उत्तर रामचरित भवभूति की सर्वोत्तम सृष्टि है और संस्कृत-नाटक-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से है । इसी नाटक के द्वारा प्रौढ़ि तथा उत्कर्ष में भवभूति कालिदास की समकक्षता को प्राप्त कर सके हैं । गार्हस्थ्य जीवन तथा प्रेम का चरम परिपाक जितना इस नाटक में हुआ है उतना संस्कृत के किसी अन्य नाटक में नहीं । नाना परिस्थितियों, भावदशाओं तथा प्राकृतिक दृश्यों का जिस कौशल और तन्मयता से यहाँ चित्रण किया गया है वह बहुत ही कम कवियों की कृतियों में मिल सकता है । नाट्य कौशल तथा उससे भी अधिक काव्य-कौशल इस नाटक की महती विशेषता है । प्रकृति के नाना मनोरम दृश्यों तथा बीहड़ भयावने वनों, नाना जीव-जन्तुओं, सुख, दुःख, स्नेह, दया, कारुण्य आदि के व्यञ्जना में भवभूति ने इस नाटक में अनूठी सफलता प्राप्त की है । प्रणय की चित्रण में भवभूति की समता संस्कृत का अन्य नाटककार नहीं कर सकता । राम की कर्तव्यनिष्ठा तथा सीता की अनुपम सहनशीलता एवं पवित्रता इन दो कूलों के बीच प्रवाहित हो रहा प्रणय अत्यन्त उदात्त, पवित्र तथा शालीन है । कालिदास आदि महाकवियों के स्वच्छन्द प्रणय को कर्तव्यनिष्ठा के कठोर निगड में नियंत्रित करने के बाद भवभूति ने उसमें जो उत्कर्ष तथा शालीनता ला दी है वह इस नाटक की महती विशेषता है । परिस्थितियों की कठोर यातनाओं से संयमित प्रेम यहाँ चरम परिपाक को प्राप्त हुआ है ।

उत्तररामचरित में नाटकीय उत्कर्ष के अतिरिक्त काव्योत्कर्ष भी स्थायी महत्त्व का है । प्रेम तथा मनोवेगों का काव्य के माध्यम से इतना प्रभावुक वर्णन यहाँ हुआ है कि पाठक और दर्शक पर इसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। सच पूछा जाय तो प्रेम और वियोग की तड़पन दर्शक को करुणा में सराबोर कर देती है । कथानक यद्यपि रामायण से लिया गया है पर दृश्य एवं वातावरण घरेलू हैं, उनमें यथार्थता है तथा मनोवेगों एवं प्रेम का वर्णन संस्कृत-साहित्य के अन्य वर्णनों की अपेक्षा अधिक यथार्थ एवं भावना से तरल हैं । भवभूति स्वच्छन्द वा सतही प्रेम के उपासक नहीं और यह कथानक भी यद्यपि प्राचीन ग्रंथों पर आधृत है पर मात्र आख्यान नहीं रह जाता, यह जन-साधारण के अनुभव और प्रेम की कथा है । उनका प्रेम-चित्रण आध्यात्मिक होते हुये भी मानव है । उसमें अनुभूति की सच्चाई है । भवभूति के उत्तररामचरित की सबसे बड़ी सफलता है एक आदर्श तथा बहुचर्चित एवं सम्मानित महापुरुष के

प्रसिद्ध चरित्र की रक्षा करते हुये उसे मानवीय धरातल पर अधिष्ठित करना। भवभूति इसमें सुतरां सफल हुये हैं। उनके राम-सीता आदर्श चरित्र वा विष्णु लक्ष्मी होते हुये ही भी मानवीय स्तर के प्रेमी तथा विरही हैं। इस दृष्टि से देखने पर भवभूति का स्थान संस्कृत-नाटक-साहित्य में नितान्त ऊँचा दिखाई पड़ता है।

उत्तररामचरित में सर्वत्र गम्भीरता का दर्शन होता है। विनोदप्रियता भवभूति की प्रवृत्ति के विरुद्ध प्रतीत होता है। इनके समस्त नाटकों में विदूषक का अभाव इसी तथ्य का संकेत करता है। उत्तररामचरित में करुण के साम्राज्य के साथ ही साथ एक अपूर्व गम्भीरता तथा अवसाद का वातावरण बना हुआ है। विनोद केवल एक स्थल में प्रथम अङ्क में ही दिखाई पड़ता है। चित्र-दर्शन के अवसर पर मिथिला का प्रसङ्ग आने पर चित्र में लिखी उर्मिला को दिखाकर सीता लक्ष्मण से पूछती हैं कि यह कौन है और उस प्रश्न को सुनकर लक्ष्मण सकुचा जाते हैं। अन्य स्थलों पर विनोदका कोई उदाहरण नहीं मिलता—सारे नाटक में धीरता, गम्भीरता और शान्ति है। पर, यह शान्ति नीरव नहीं अपितु मानसिक भावावेगों तथा तड़पन से संयुक्त है।

भले ही भवभूति में कालिदास की कलाप्रियता, परिष्कार तथा परिमार्जन न हो पर भावाभिव्यक्ति में भवभूति अपना स्थिर महत्त्व रखते हैं और इस दृष्टि से वे कालिदास से कथमपि न्यून नहीं हैं। उनके भावों की तीव्रता ऐसी है कि कोई भी उसमें प्रवाहित हो सकता है। लक्ष्मण ने जो प्रथम अङ्क में यह कहा कि जनस्थान में विकलेन्द्रिय श्रीरामचन्द्र के चरित्रों को देखकर पत्थर भी रो उठता है और वज्र का हृदय भी विदीर्ण हो जाता है वह यथार्थ बात है--

जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै—
रपिग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।—१।२८

गोवर्धनाचार्य ने भवभूति के करुण रस की तीव्रता और सर्वातिशायिता का सही अङ्कन किया है—

भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा॥

—आर्यासप्तशती, १।३६

तृतीय अङ्क का सारा दृश्य अवसाद और करुणा से आपूर्ण है। प्रथम श्लोक में ही कवि ने राम की गम्भीर करुणा का वर्णन किया है--

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः॥—३।१

हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं और तज्जन्य शरीर-विकारों का कवि ने इस तन्मयता से आलेखन किया है सहृदय सामाजिक उसमें आत्मविभोर हो उठता है। हृदय की कोमल भावनायें कवि की वाणी के माध्यम से साकार हो उठी हैं। चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में बालकों के अनध्याय तथा तज्जन्य उनकी अतीव प्रसन्नता का जो वर्णन भवभूति ने किया है वह उनकी सूक्ष्म अन्वीक्षण शक्ति का द्योतक है। बालकों में अवकाश तथा अनध्याय से जो प्रसन्नता होती है वह सार्वजनीन तथा सार्वकालिक है।

भवभूति का प्रकृति-वर्णन भी संस्कृत की परम्परागत पद्धति से भिन्न है। उत्तररामचरित में प्रकृति के सौम्य रूप का ही नहीं उसके रौद्र रूप का भी दर्शन होता है संस्कृत के कवि विकसित कदम्ब-अशोक और शरत्कालीन तथा वासन्ती विकास पर ही रीझते प्रतीत होते हैं। पर महाकवि भवभूति ने उसके कर्कश और भयावह रूप का भी उसी तन्मयता, उसी अनुभूति और उसी गम्भीरता के साथ वर्णन किया है। जनस्थान की भयङ्कर उष्णता का वर्णन इस पद्य में कवि ने बड़ी सावधानी के साथ किया है—

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः
स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः।
सीमानः प्रदरोदरेषु विरलस्वच्छाम्भसो यास्वयं
तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते ॥—२।१६

[कहीं पक्षियों के कूजनों से रहित तथा शान्त, कहीं श्वापदों के अतिभयानक शब्दों वाली, स्वेच्छा से सोये गहरे तथा भयानक सर्पों के श्वासों से प्रदीप्त अग्नियों वाली तथा विलों के मध्य में थोड़े जलों वाली प्रान्तभूमियाँ हैं जिनमें तृषार्त गिरगिटों द्वारा अजगरों के पसीनों का जल पिया जाता है।]

इसी अङ्क में वन-प्रदेश तथा पर्वत देश का यह वर्णन भी कवि के प्रकृति प्रेम का परिचायक है।

कूजत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचक-
स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चावतोऽयं गिरिः।
एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै-
रुद्वेलन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः ॥

[कुञ्जरूपी कुटियों में कूजते हुये उल्लुओं के घूत्कार शब्दों से युक्त, वायु की रगड़ से शब्द करने वाले बांसों के समूहों से निश्शब्द काक पक्षियों वाला यह क्रौञ्चावत नामक पर्वत है। इस पर्वत में इतस्ततः घूमने वाले मयूरों के शब्दों से डराये गये अजगर चन्दन वृक्षों पर इधर-उधर सरक रहे हैं।]

नीचे के पद्य में प्रकृति-दृश्य का शब्दों के माध्यम से ऐसा सुन्दर चित्र खींचा गया है कि सारे दृश्य बरबस आखों के सामने आजाते हैं। गद्‌गद् नाद के साथ प्रवाहित होने वाले नदी-जलका दृश्य शब्दों में ही साकार हो उठा है :

एते ते कुहरेषु गद्‌गदनदद्‌गोदावरीवारयो
मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दाक्षिणाः।
अन्योन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलै—
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्संगमाः ॥—२।३०

[ये वे दक्षिण दिशा के पर्वत हैं जिनकी गुफाओं में गोदावरी नदी का जल गद्-गद् नाद करता है और जिनके शिखर मेघमाला से आच्छादित रहने से नीलवर्ण के बने हुये हैं। ये वे अगाध जल वाले तथा पवित्र नदी-संगम हैं जो परस्पर प्रतिघात से संकुल तथा चञ्चल कोलाहलों से उत्ताल तरङ्गों वाले हैं]

ध्वनि के आश्रय से चित्र प्रस्तुत करने का इससे सुन्दर उदाहरण मिलना कठिन है।

पर्वतों पर प्रवहमान स्रोतों का यह वर्णन कितना सजीव है।

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरवीरुत्-
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः ॥—२।२०

[ये पहाड़ी नदियाँ प्रवाहित हो रही हैं। इनके किनारे वानीर लतायें फैली हुई हैं जिनपर मधुरकण्ठवाले पक्षी बैठे हैं और उन लताओं से पुष्पों के गिरने से नदियों का जल सुरभित है तथा उनकी धारायें फलभारों से लदे जम्बू-वृक्षकुञ्जों से टकरा कर शब्द कर रही हैं।]

भवभूति के पात्रों में धीरता, गम्भीरता तथा तरलता भी है। सीता और राम का चरित्र-चित्रण दैवी धरातल पर करने पर भी कवि ने उन्हें पूरा मानवीय बनाया है। राम जहाँ प्रजारञ्जन के लिये निरपराधिनी पतिप्राणा एवं शुद्धा-चरण सीता का त्याग करते हैं वहीं उनके लिये फूट-फूट कर रोते भी हैं। उनका रोना भी साधारण नहीं; पत्थर भी उनकी इस करुणा पर फूट कर रो देते हैं—**अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्**। एक ओर जहाँ उनमें कठोरता की चरम सीमा दिखाई पड़ती है वहीं सहृदया प्राणप्रिया पत्नी के लिये करुण-विलाप भी। उनका हृदय ऊपर से मिट्टी से लिपे पात्र जैसा है जो अवाँ में तप रहा है—**पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः** (३।१)। धीरता-गम्भीरता-वश भले ही वे लोक के सामने अपने मानसिक दुःख को अभिव्यक्त न करें पर हृदय तो उससे झुलस ही गया है। दण्डकारण्य में जाने पर वे पूर्व स्मृतियाँ जागरूक हो

जाती हैं, उनके धैर्य का बाँध टूट जाता है और वे विलख पड़ते हैं। कवि से नहीं रहा गया। कहाँ वैसी कठोरता और कहाँ ऐसा विलाप? महज्जनों का स्वभाव ही दुरवगाह्य होता है :

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥[१]—२।७

सीता के चरित्र को कविने और उत्कर्ष को प्राप्त कराया है। उनके सम्पूर्ण जीवन में त्याग और तपस्या है। भवभूति की सीता वाल्मीकि की सीता से भी पावन चरित्र रखती हैं। जहाँ रामायण की सीता में स्वाभिमान की दीप्ति है वह भवभूति की सीता में त्याग और तितिक्षा की स्निग्ध-शीतल कान्ति है। उत्तररामचरित में सीता का चरित्र इतना उदात्त तथा प्राञ्जल है कि वे वन में राम को कटु वचन सुना रही वासन्ती के प्रति ही अपनी प्रतिकूल प्रतिक्रिया प्रदर्शित करती हैं। सारे अपमानों और दुःखों को भुलाकर वे जब कभी राम अचेत होते हैं उन्हें अपने कर-स्पर्श से सचेत करती हैं। अन्य पात्रों का चित्रण भी भवभूति ने अत्यन्त मर्यादितरूप से किया है।

इस नाटक में कथानक भी भवभूति के अन्य नाटकों की अपेक्षा अधिक परिपुष्ट है तथा उसके विभिन्न अवयव परस्पर सम्बन्ध हैं। सारा कथानक फल-प्राप्ति की ओर उन्मुख है। प्रथम अङ्क की घटनाओं का सम्बन्ध सातवें अङ्क तक की घटनाओं तक व्याप्त है।[२] प्रस्तावना में ही कवि ने सीता-त्याग का संकेत कर दिया है (यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः १।५) प्रथम अङ्क में सीता-त्याग के अवसर मृथ्वी से कहते हैं कि वे सीता की देख भाल करें—

भगवति वसुन्धरे! सुश्लाध्यां दुहितामवेक्षस्व जानकीं।
जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्!
यां देवयजने पुण्यं पुण्यशीलमजी जनः ॥—१।५१

इसी वचन को सातवें अङ्क में पृथ्वी दुहराती हुई सीता को राम के लिये सौंपती हैं। वे कहती है कि पहले राम ने जो कहा था उसका उन्होंने निर्वाह कर दिया।

उक्तमासीदायुष्मता वत्सायाः परित्यागे यथा 'भगवति वसुन्धरे श्लाध्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीमिति' तदधुना कृतवचनास्मि प्रभोर्वत्सस्येति। (७।१८)

---

१. गोस्वामी तुलसीदासजी का यह दोहा देखिये :

कुलिसहुँ चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहुँ चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परै कहु काहि ॥

—रामचरितमानस

२. इसका निर्देश पहले किया जा चुका है (पृ० ८५-८७)।

इसी प्रकार की बात भागीरथी भी कहती हैं। भवभूति ने बड़ी सावधानी से उत्तररामचरित को सुखान्त बनाया है। इसमें उन्होंने प्रथित इतिवृत्त में परिवर्तन भी किया है। रामायण में सीता-त्याग के बाद फिर राम और सीता का मिलन नहीं होता। राम शपथ करने के लिये सीता को बुलाते हैं। चराचर प्राणियों के सामने वाल्मीकि सीता को लेकर आते हैं। पहले तो वे स्वयं शपथ खाकर सीता को सच्चरित्र बताते हैं फिर सीता कहती हैं कि यदि वे अनन्यमन से रामगत-प्राणा तथा सदाचारिणी हों तो भूमि उन्हें विवर दें। होता यही है भूमि में विवर हो जाता है। सिंहासन ऊपर आता है। पृथ्वी उन्हें बैठाकर रसातल में ले जाती हैं। राम पृथ्वी पर क्रुद्ध होते है। उन दोनों का फिर इस लोक में मिलन नहीं होता इत्यादि। सीता के शपथ का प्रसङ्ग इस प्रकार है :

सर्वान्समागतान् दृष्ट्वा सीता काषायवासिनी।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यमधोदृष्टिरवाङ्मुखी॥
यथाऽहं राघवादन्यं मनसाऽपि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवि विवरं दातुमर्हति॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्थये।
तथा मे माधवी देवि विवरं दातुमर्हति॥
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च।
तथा मे माधवी देवि विवरं दातुमर्हति॥

—उत्तरकाण्ड

पर, भवभूति ने इस दुःखान्त प्रसङ्गको बड़ी कुशलता से बचाया है। भारतीय नाट्य शास्त्र दुःखान्त नाटक के पक्ष में नहीं। सुखान्त नाटक ही होने चाहिये। दर्शक और सामाजिक आनन्द लेने के लिये ही तो नाटक देखने जाते हैं। स्थायी दुःख में सराबोर होकर लौटना ठीक नहीं। वह भी सदाचारी और साधु पुरुष की चरम परिणति यदि दुःखमय हो तो यह तो सुतरां निन्दित बात होगी। सीता जैसी पतिगतप्राणा, साधुशीला स्त्री की चरम परिणति यदि दुःखमय रही तो इसे कौन पसन्द करेगा? नैतिकता का आदर्श ही ढह जायेगा। तब धर्म करेगा ही कौन? महाभारतकार ने तो 'यतो धर्मस्ततो जयः' कहा, पर, यदि धार्मिक राम और सीता को अन्ततः भी दुःख उठाना पड़े तो इससे बुरा क्या हो सकता है? वस्तुस्थिति चाहे जो रही हो हमारे चरितनायक को यह अभीष्ट नहीं? उन्हें अलङ्कार शास्त्र ने मार्ग भी बता दिया। नाटक दुःखान्त नहीं होना चाहिये। बस क्या था? एक मार्ग तो मिल गया। भवभूति ने कथानक बदल दिया। एक ही तीर से दो लक्ष्य सधे—एक तो नाट्य शास्त्र के सिद्धान्त का निर्वाह दूसरे नैतिकता की जय तथा सामाजिकों का परितोष।

कीर्तिशेष श्री द्विजेन्द्रलाल रायको इसमें काव्य-कला की हत्या तथा काव्य-न्याय (poetic justice) का विनाश दिखाई पड़ा।[1] पर, काव्य-न्याय तथा काव्यकला का यह सुन्दर निर्वाह है। सप्तम अङ्क (गर्भ नाटक) में कवि ने वियोग में ही संयोग करा दिया। कितना बड़ा यह कौशल है। दर्शक चले हैं सीता-राम का वियोग देखने पर हो जाता है संयोग। वे सदाचार, धर्म और नैतिकता की जय देखकर लौटते हैं। साधु पुरुषों का अन्त भला होता है—**धर्मो रक्षति रक्षितः।**

प्रश्न हो सकता है कि दूसरे और तीसरे अङ्क की इस नाटक में उपयोगिता क्या है? मात्र कवित्व-प्रदर्शन तथा चरित्र-चित्रण के उनमें और क्या है? प्रकृति वर्णन और विलख-विलख कर रोना और वह भी ऐसा कि नाटक की कथावस्तु में कोई त्वरा न आवे वह किस काम की? इस नाटक में मुख्यतः दो ही मुख्य घटनाएँ हैं—एक सीता-त्याग और पुनः उनकी प्राप्ति तथा, दूसरी चन्द्रकेतु और लव का युद्ध। यह सही है कि इस नाटक में ये ही दो मुख्य घटनायें हैं और यह भी सही है कि द्वितीय तथा तृतीय अङ्क कथावस्तु को कोई विशेष त्वरा प्रदान नहीं करते पर इस आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी नाटक में उपयोगिता नहीं। प्रथमतः ये दोनों राम तथा सीता के चरित्र-प्रस्फुटन तथा अभिव्यक्ति में विशेष सहायक हैं। यहीं सीता का राम के प्रति एकत्रित क्षोभ जाता है। बहुत-सी सीता-वनवास के बाद हुई घटनाओं की सूचना भी इन्हीं अंको में होती है—यथा, सीता के पुत्रों की उत्पत्ति की सूचना, सीता त्याग के बारह वर्षों के बीतने की सूचना, यज्ञ में श्रीराम द्वारा हिरण्मयी सीता को सहधर्मिणी बनाने की सूचना इन्हीं अंकों में मिली है। प्रकृति-चित्रण, मनोवेगों का चित्रण, करुणाका प्रसार इन्हीं अंकों में विशेषरूप से प्रस्फुटित हुये हैं।

प्रेम के चित्रण में भवभूति की काव्यप्रतिभा बड़ी सजग है। सच्चा प्रेम बड़े भाग्य से मिलता है। वह दैवी वरदान है। सच्चे प्रेम का वर्णन करते हुये कवि कह रहा है:

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यत्
विश्रामो हृदयस्य यत्र, जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥—१।३९

[वास्तविक प्रेम सुख और दुःख दोनों परिस्थितियों में एक-सा रहता है। सभी अवस्थाओं में वह समान रहता है। उसमें वृद्धावस्था से भी प्रीति की कमी नहीं होती। समय के बीतने से लज्जा, संकोच आदि आवरण के समाप्त

1. द्र० डी० एल० राय कृत कालिदास और भवभूति, पृ० २५

होने पर सारभूत सच्चा प्रेम बच जाता है। ऐसा सुमानुष विचित्र प्रेम बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है।]

प्रेमी जब प्रिय को देखता रहता है तो उसे उसी में महान् सुख प्राप्त होता है। प्रिय कुछ न करता हुआ भी प्रेमी के दुःख को दूर करता है। प्रेम की कैसी सुन्दर परिभाषा है। प्रेमी हृदय की कैसी सुन्दर पहचान है। सरल संस्कृत में, कवि ने स्पष्ट ही प्रेम का सार रख दिया है :

अकिञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति ।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ॥—६।५

ऐसा सुमानुष प्रेम किसी बाहरी कारण से उद्भूत नहीं होता, अपितु कोई आभ्यन्तर कारण दो पदार्थों को—दो हृदयों को—मिलाता है। कहा तो तालाब में पड़ा कमल और कहाँ आकाश में पड़े सूर्यदेव। सूर्य को देखते ही कमल खिल उठता है। इसका बाहरी कारण कुछ नहीं कोई आन्तरिक कारण है। यही अवस्था चन्द्रकान्तमणि की भी है ज्यों चन्द्र-किरणें उसका स्पर्श करती हैं वह द्रवित हो जाती है। प्रीतिकी रीति ही यही है:

व्यतिजषति पदार्थानान्तरः कोपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥—६।१२

भवभूति की कविता में नये-नये प्रतीक, नये-नये उपमान—ऐसे उपमान जिसपर किसी पूर्ववर्ती कवि का ध्यान तक नहीं गया था सरलता से सुलभ हैं। विरह-विगलिता सीता की वर्णना कविने बड़े ही कमनीय रूप में दी है :

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकवरीकमाननम् ।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ॥

[यह सीता अति पाण्डुवर्ण के एवं कृशकपोलों से सुन्दर तथा चञ्चल केश से युक्त मुख को धारण करती हुई करुणरस की मूर्ति अथवा देहधारिणी विरहव्यथा-सी वन में आ रही है।]

भवभूति करुण-रस के आचार्य हैं। सारा नाटक करुणा की छाया से अभिभूत है। राम-सीता सामान्य पात्र नहीं करुणा की जीती-जागती मूर्तियाँ हैं। उनका सारा जीवन ही करुणामय है। अन्य रस तो उसी से उद्भूत होते हैं अथवा करुणा के ही विवर्त हैं। उनका उत्स और परमार्थ रूप तो करुण रस

ही है। रससामग्री (स्थायीभाव, आलम्बन, उद्दीपन आदि) के पार्थक्य से वह नाना रूपों को प्राप्त होता है। भवभूति यहाँ साहित्यशास्त्र के एक परिनिष्ठित आचार्य के रूप में निर्णय देते हैं। रसराज श्रृंगार भी इसी का एक विवर्त है। उनकी उक्ति है :

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारा—
नम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम् ॥—३।४७

[करुण ही एक प्रधान रस है। कारण-भेद से भिन्न होने पर वही भिन्न-भिन्न रसों के रूप में विपरीत परिणामों को धारण करता है। अर्थात् वह एक ही करुण रस निमित्त (अर्थात् रससामग्री) के भेद से अन्य रसों के रूप में दिखाई पड़ता है। यह उसी प्रकार होता है जैसे एक ही जल है, पर, वह आवर्त, बुद्बुद् तथा तरङ्गों का रूप धारण करता है।]

यह है भवभूति की करुणरस के विषय में अपनी मान्यता। फिर जिस कवि का यह सिद्धान्त ही है तो उसके वर्णन में वह क्यों कोर-कसर रखेगा ? राम के विलापों में करुणा की उत्तालतरङ्गिणी प्रवाहित हो रही है जो ही समीप जायेगा सिक्त हुये बिना नहीं रहेगा। राम के इस विलाप में कौन सहृदय आँसू नहीं बहायेगा—

हा हा देवि स्फुटति हृदयं स्रंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥–३।३८

[हे देवि ! हृदय फटा जा रहा है, देहवन्ध ढीला पड़ रहा है, सारा संसार सूना-सा लग रहा है, भीतर ही भीतर अविरल ज्वालाओं से जल रहा हूँ। दुःखी एवं विकल अन्तःकरण वाला मैं अन्ध तमस् में गोता लगा रहा हूँ। चारों ओर से मोह घेर रहा है। मैं आभागा क्या करूँ ?]

विरह की यह पराकाष्ठा हैं। वियोग उनके हृदय को दग्ध कर रहा है, हृदय फट रहा है, अन्तर्जालाओं से वे दग्ध हो रहे हैं, पर प्राण नहीं छूटता (३।३१)। ठीक ही है विधाता ने दुःख सहने के लिये ही उनमें चैतन्य का आधान किया है (१।४७)। उनके हृदय में शोक की कील गड़ी है। वह विषैले दंश जैसी है। महती पीड़ा दे रही है, पर निकल नहीं रही है—

यथा तिरश्चीनमलातशल्यं
प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दंशः।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशङ्कु-
र्मर्माणि कृन्तन्नपि किंन सोढः ॥ —३।३५

[भीतर गड़े हुये तिर्छे अङ्गारमयलौहकील तथा विषाक्त दंश के समान तीव्र एवं हृदय में गड़ा हुआ शोक कीलक उनके मर्मों को छेद रहा है।]

वे मन को ढाढस बंधाना चाहते हैं। शोक के उद्रेक को रोकना चाहते हैं। पर वह रुकता नहीं। वह उसी भाँति बाहर उमड़ पड़ता है जिस भाँति बालुका की भित्ति से रोका गया जल।

सीता के वियोग में उनका कोई भी मित्र काम नहीं देता। सबकी शक्ति से वे बाहर पहुँच गयी हैं। सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवान् , नल-नील, हनूमान् और लक्ष्मण ये कोई भी उनकी सहायता नहीं कर सकते :

व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यमपि मे वीर्यं हरीणां वृथा
प्रज्ञा जाम्बवतोपि यत्र न गतिः पुत्रस्य वायोरपि।
मार्गं यत्र न विश्वकर्मतनयः कर्तुं नलोऽपि क्षमः
सौमित्रेरपि पत्रिणामविषये तत्र प्रिये क्वासि मे ॥—३।४५

भवभूति के राम खुल कर रोते हैं। तमसा के अनुसार रोने से दुःख का भार हलका हो जाता है।

पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ॥—३।२९

[तड़ाग में जल के अत्यधिक भर जाने पर जल का उससे बाहर निकलना ही प्रतिक्रिया है। क्षोक के कारण क्षोभ उत्पन्न होने पर हृदय का धारण प्रलाप से ही होता है।]

करुण-रस इस नाटक का प्रधान वा अङ्गी रस है अन्य रस अङ्ग है। पर, जैसा कि अन्य नाटकों के प्रसङ्ग में देखा गया है भवभूति अन्य रसों की वर्णना में भी सिद्धहस्त है। शृंगार तथा करुण-वर्णन में तदनुकूल कोमलकान्त पदावली का वे प्रयोग करते है, पर वीर, वीभत्स एवं रौद्र रसों की वर्णना में कठोर पदावली का प्रयोग दिखाई पड़ता है। गौडी रीति की विकट बन्धता यहाँ अपना प्रभाव दिखाती है। वीरता का वर्णन देखिये—

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र—
मुद्गारिघोरघनघर्घरघोषमेतत्।
ग्रासप्रसक्तहसदंतकवक्त्रयंत्र—
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम् ॥—४।२९

[यह मेरा धनुष जगत् का ग्रास करने में संलग्न, अट्टहास करते हुये यमराज के यंत्र सदृश मुखकी जँभाई की नकल करते हुये अपने भयङ्कर उदर (मध्यभाग) को फैला दे। इसकी प्रत्यञ्चा जिह्वा बने, एवं दोनों मण्डलाकार इसके उन्नत किनारे यम की दाढ जैसे हों तथा यह घर्घर शब्द को उत्पन्न करे।]

यह पद्य लव की वीरताका परिचायक है । चन्द्रकेतु लव की वीरता का वर्णन निम्नाङ्कित पद्य में कर रहा है :

आगर्जद्गिरिकुञ्जकुञ्जरघटानिस्तीर्णकर्णज्वरं
ज्यानिर्घोषमसन्ददुन्दुभिरवैराध्मातमुज्जृम्भयन् ।
वेल्लद्भैरवरुण्डमुण्डनिकरैर्वीरो विधत्ते भुवं
तृप्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्यमाणमिव ॥—५।६

[यह वीर ज्यानिर्घोष कर रहा है जिससे गिरिकुञ्ज के समान गर्जत हुये हाथियों के कानों को पीड़ा हो रही है तथा दुन्दुभिरव से उस घोष में और वृद्धि हो रही है। यह छटपटा रहे भीषण कवन्धों से रणभूमि को पाट रहा है मानो कराल काल के मुख से खाने से बँचे पदार्थों से पृथ्वी को आच्छादित कर रहा है।]

भवभूति अनुभूति तथा अभिव्यक्ति दोनों के आचार्य हैं। जहाँ विज्ञ समीक्षक उनकी अनुभूतियों की गहराई तथा सच्चाई से अभिभूत होता है वहीं अभिव्यक्ति के कौशल से भी आनन्द-विभोर हो उठता है। प्रो० कीथने उनकी अभिव्यक्ति की प्रशंसा स्पष्ट शब्दों में की है।[1] भवभूति का शब्द-सञ्चय अपने स्थान पर अनूठा है। उन शब्दों से जो अभिव्यक्ति का सौष्ठव है वह दूसरे शब्दों से नहीं। क्या मजाल कि एक शब्द भी व्यर्थ हो। प्रसिद्ध पद्य 'अपि ग्रावा रोदिति' में ग्रावा शब्द को हटाया नहीं जा सकता। जिस कठोरता को 'ग्रावा' अभिव्यक्त कर रहा है उसे उपल या प्रस्तर द्योतित नहीं कर सकते ।

स्पर्श-जन्य संवेग का वर्णन भवभूति कितनी तन्मयता से कर रहे हैं। यहाँ राम के माध्यम से भवभूति की अनुभूति बोल रही है :

---

1. "As regards the formal side of Bhavabhū-ti's style we must unquestionably admit his power of expression which is displayed equally in all three dramas. To modern teste Bhavabhuti is most attractive when he is simple and natutral, as he can be when it pleases him"—संस्कृत ड्रामा, पृ० १९८

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो-
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च संमीलयति च ॥—१।३५

[हे प्रिये ! तेरे स्पर्श-स्पर्श में स्वविषय-ग्रहण में सर्वथा असमर्थ बना दिया गया है इन्द्रियसमूह जिसको ऐसा मनोविकार चेतना को भ्रमित कर रहा है तथा संकुचित कर रहा है अतः यह सुख है या दुःख, मोह है या निन्द्रा अथवा शरीर में विषका प्रसार हैं या मद का प्रभाव यह निश्चय नहीं किया जा सकता ।]

उत्तररामचरित के दोष

उत्तररामचरित संस्कृत-नाटक एवं काव्य-साहित्य का एक जाज्वल्यमान हीरक है जिसकी कान्ति तथा दीप्ति काल की दुरवगाह सीमाओं को पार कर चतुर्दिक् प्रसृत होती रही है तथा होती रहेगी। पर इस संसार में कौन सी ऐसी निर्मिति है--यहाँ तक कि विधाता की निर्मितियाँ भी—जिनमें दोष न हो। कलङ्ककालिमा कृतिरूपी शशाङ्क में ढूढ़ने पर सर्वत्र ही मिल जाती है। भवभूति के इस विश्व-विश्रुत तथा महनीय नाटक में भी कुछ दोष ऐसे हैं जो आलोचकों का ध्यान आकृष्ट करते रहे हैं। यहाँ कुछ दोषों का दिङ्निर्देश किया जाता है :

(१) नाटक में तीन प्रकार की अन्वितियों की बड़ी अपेक्षा होती है : (i) समय की अन्विति अर्थात् नाटक की कथा-वस्तु अत्यन्त सीमित समय से सम्बद्ध हो, यदि संभव हो तो उतने ही समय की हो जितने में नाटक प्रदर्शित किया जाता हो अन्यथा एक दिन की ही घटना समाविष्ट हो। (ii) स्थान की अन्विति अर्थात् एक ही स्थान या दृश्य से घटना सम्बद्ध हो। यदि कोई घटना उत्तरी भारत में घटित होती है और ठीक दूसरे क्षण कोई घटना दक्षिणी भारत में घटित होती है तो यह सामाजिक के मन में सन्देह तथा वैरस्य को उत्पन्न करेगी, और (iii) कार्य की अन्विति अर्थात् कथावस्तु के विकास में अनभीष्ट समस्त कार्यों का अभाव। यहाँ यह बता देना अपेक्षित है कि संस्कृत के नाटककार इन अन्वितियों के पालन में बहुत सतर्क नहीं दिखाई पड़ते। जहाँ तक काल वा समय की अन्विति का प्रश्न है वे इतने सीमित समय में घटना-चक्रको समाप्त करने के पक्ष में नहीं और जब काल की अन्विति सीमित नहीं हुई तो फिर स्थान और कार्य की अन्विति के लिये स्वतः ही विस्तृत एवं व्यापक स्थान मिल जाता है। प्रसिद्ध नाटक **अभिज्ञान शकुन्तला** में महाकवि

कालिदास दुष्यन्त और शकुन्तला के परिचय से लेकर पुत्रोत्पत्ति तथा पुत्र की क्रीडा की अवस्था तक का समय लेते हैं। दृश्य भी बन-प्रदेश से लेकर दुष्यन्त की राजधानी, स्वर्ग तथा पर्वतों तक व्याप्त हैं। यह अवश्य है कि स्वर्ग जाने-आने में वे देव-विमान का आश्रय लेते हैं। इसी प्रकार भास का प्रसिद्ध नाटक **स्वप्नवासवदत्तम्** भी केवल एक दिन से सम्बद्ध नहीं। लावाणकदाह से लेकर पद्मावती-परिणय तथा आरुणि-विजय तक की घटनायें और काल उसमें समाविष्ट हैं। **प्रतिज्ञायौगन्धरायण** की भी ऐसी ही स्थिति है। अन्य नाटकों में भी ऐसे उदाहरण कोई कम नहीं हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत के नाटककार कालान्विति तथा तत्परिणामस्वरूप स्थानान्विति में कुछ विस्तृत दृष्टिकोण रखते हैं। उत्तररामचरित में इन अन्वितियों का अभाव है। प्रथम तथा द्वितीय अङ्ककी घटनाओं के बीच बारह वर्ष का सुदीर्घ अन्तराल है। द्वितीय अङ्क के बाद की घटनायें त्वरित गति से अल्प समय में ही घटित होती हैं। स्थान की अन्विति के विषय में भी यही स्थिति है। प्रथम अङ्क की समस्त घटना अयोध्या में घटित होती है पर द्वितीय अङ्क की घटनायें पञ्चवटी और जनस्थान में घटित हो रही हैं। चतुर्थ अङ्क से अंतिम अङ्क तक की घटनायें वाल्मीकि के आश्रम पर गंगा के किनारे घटित होती हैं। इस प्रकार स्थान और काल दोनों एकताओं की दृष्टि से यह नाटक शिथिल है। कार्य-अन्विति की दृष्टि से भी नाटक में शैथिल्य की कमी नहीं। द्वितीय और तृतीय अङ्क के वार्तालाप फल की ओर उन्मुखता और तीव्रता में कोई विशेष सहायक नहीं। वासन्ती के वार्तालापों से भवभूति के कवित्व शक्ति का भले ही परिचय प्राप्त हो पर नाटक के सौकर्य में कोई वृद्धि नहीं होती। समीक्षकों का तो यहाँ तक कहना है कि द्वितीय से चतुर्थ अङ्क को यदि हटा भी दें तो नाटक की कथा और फल-प्राप्ति में कोई अन्तर नहीं आने को।

(२) उत्तररामचरित का दूसरा दोष पात्रों की बहुलता का अभाव है। सभी पात्र एक प्रकार के बने हुये सांचे में ढले हैं। शूद्रक के मृच्छकटिक अथवा भास के दरिद्रचारुदत्त में जो विविध प्रकार के पात्र दृष्टिगोचर होते हैं इसका भवभूति के नाटकों में सर्वथा अभाव है। राम, लक्ष्मण सीता, शम्बूक, वासन्ती आदि जितने भी पात्र हैं गम्भीर प्रकृति के हैं। भवभूति यहाँ पात्रों में दैवी गुण का आधान करने के पक्षपाती प्रतीत होते हैं। एक प्रकार के पात्रों के दर्शन तथा उनमें सर्वत्र गम्भीरता देखकर पाठक वा दर्शक में कुतूहल की कमी हो जाती है। दूसरी ओर यह भी कहा जा सकता है कि या तो भवभूति की सत् और असत्, भले और बुरे, विनोदी और गम्भीर इत्यादि विभिन्न प्रकार के द्वन्द्वमय पात्रों के चित्रण में कोई रुचि नहीं थी अथवा परख ही न थी।

(३) भवभूति के नाटकों में विदूषक का सर्वथा अभाव है। भवभूति गम्भार प्रकृति के व्यक्ति थे और हास्य-विनोद में उनकी प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती। पूरे उत्तररामचरित में केवल एक ही विनोद का प्रसङ्ग है जब प्रथम अङ्क में चित्र-दर्शन के अवसर पर मिथिला का दृश्य आने पर उर्मिला की ओर संकेत करती हुई सीता लक्ष्मण से पूछती हैं कि 'यह कौन है' और लक्ष्मण झेंप जाते हैं। भवभूति की प्रवृत्ति भले ही हास्य-विनोद में न रमती रही हो पर सहृदय सामाजिक तो हास्य के माध्यम से कठोर से कठोर दुःख को भूलता है। करुण-रस के दृश्य से विगलितहृदय सामाजिक के लिये विदूषक अथवा हास्य का अन्य कोई माध्यम पूर्ण शान्ति और शीतलता प्रदान करता। संस्कृत नाटक के औदरिक विदूषकों के महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता।

(४) भवभूति की भाषा में वह सरलता नहीं जो भास की सरल एवं लघुविस्तरी वाक्यों वाली भाषा में है। उत्तरचरित के अतिरिक्त अन्य नाटकों में तो भवभूति ने प्राकृत भाषा के इतने लम्बे-लम्बे वाक्य दिये हैं कि अरुचि उत्पन्न करते हैं और भावबोध में काठिन्य उत्पन्न करते हैं।

(५) उत्तररामचरित नाटक में विलापों और प्रलापों का आधिक्य है। इससे भवभूति के काव्यगुण और मानव-मन की परख का भले ही अनुमान लगे, पर पात्रों के चरित्र में एक प्रकार की लचर दिखाई पड़ती है। स्त्री-पात्रों को कौन कहे स्वयं इस नाटक के नायक सर्वसद्गुणों के आकर राम बार-बार फूट-फूट कर रोते हैं और कहते हैं कि उनका हृदय फटा जा रहा है, विधि मर्मस्थानों पर प्रहार कर रहा है, इत्यादि। ऐसे प्रलाप उनके धीरोदात्त चरित्र के विकास और परिपुष्टि में सहायक नहीं माने जा सकते। उनके प्रलापों में बार-बार इन्हीं भावनाओं की पुनरुक्ति हुई है जैसे दुर्मुख से सीता-प्रवाद के विषय में सुनकर उनकी उक्ति—**एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाकादालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसृतम्**—(१।४०); **हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः** इत्यादि (३।३८); **दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधातु न भिद्यते, वहति विकलः कायो मोहो न मुञ्चति चेतनाम्**, इत्यादि (३।३१); **तथैव तीव्रो हृदिशोक शङ्कुर्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः** (३।३५); **कष्टमतिदारुणोऽयं हृदयमर्मोद्घातः** (६।३२ के बाद); **स्तथाप्येष प्राणः स्फुरति न तु पापो विरमति** (६।३३)। केवल राम, ही नहीं जनक का विलाप भी मुक्तकण्ठ–जैसा है। स्त्री पात्रों में सीता और वासन्ती के विलाप भी इसी कोटि है। इस प्रकार हम देखते हैं कि विलाप वर्णन में भवभूति पूरी छूट बरतते हैं। उनके पात्र जहाँ-कहीं बैठकर जी भर कर रो लेते हैं। भवभूति का आदर्श भी तो है कि रोने से दुःख में कमी होती हैं (३।२९)।

(६) पञ्चम अङ्क में लव ने राम के चरित्र पर आक्षेप करते हुये कहा है—

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते
सुन्दस्त्रीमथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते ।
यानि त्रीण्यपराङ्मुखान्यपि पदान्यासन् खरायोधने
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥—५।३५

यहाँ आदर्शचरित्र और नायक पर ये आक्षेप कथमपि शोभनीय नहीं। नायक के चरित्र में जो दोष हों या रसविरुद्ध बातें हों उन्हें या तो छोड़ देनी चाहिये या अन्यथा रूप से उनका उपन्यास करना चाहिये । क्षेमेन्द्र ने औचित्य-विचारचर्चा में इसका निर्देश करते हुये कहा है :

अत्राप्रधानस्यरामसूनोः कुमारलवस्य परप्रतापोत्कर्षासहिष्णोर्वीररसोद्दीपनाय सकलप्रबन्धजीवितसर्वस्वभूतस्य प्रधाननायकगतस्य वीररसस्य ताडकादमनखररणापसरण--अन्यरणसंसक्तवालिव्यापादनादिजनविहितापवादप्रतिपादनेन स्ववचसा कविना विनाशः कृत इत्यनुचितमेतत् ।

साहित्यदर्पण (६) में नायक के दोषों की उद्भावना दोषप्रकरण में उल्लिखित है ।

यत्स्यादनुचितं वस्तु नायकस्य रसस्य वा ।
विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत् ॥

अनुचितमितिवृत्तं यथा रामस्य छद्मना बालिवधः । तच्चोदात्तराघवे नोक्तमेव वीरचरिते तु वाली रामवधार्थमागतो रामेण हत इत्यन्यथा कृतः ॥

इसके अतिरिक्त रंग-निर्देश सम्बन्धी त्रुटियाँ भी ढूंढने पर यत्र-तत्र दिखाई पड़ सकती हैं ।

पर, इन दोषों से भवभूति के नाटक की आभा में कोई न्यूनता नहीं आने को। भवभूति वश्यवाच कवि हैं और सरस्वती उनकी इच्छा का अनुवर्तन करती है। परम्परा के अनुसार केवल वीर या शृंगाररस ही नाटक के प्रधान रस होते हैं पर भवभूति ने करुणरस को न केवल अपने नाटक का प्रधानरस बनाया अपितु अन्यरसों को उसी का विवर्त माना । वे दर्शन, वेद-वेदाङ्ग तथा अन्य शास्त्रों के प्रतिष्ठित प्रकाण्ड पण्डित थे और सभी का सार इस नाटक में प्रदर्शित किया है। भावों की वर्णना, रस-निष्पत्ति, कथानक, चरित्र-चित्रण इत्यादि सभी दृष्टियों से उत्तररामचरित संस्कृत-साहित्य का एक प्रशस्त नाटक है और विज्ञ समालोचक सदैव से इस पर रीझता आया है और रीझता रहेगा—

उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।

पञ्चम प्रकरण

भवभूति : समीक्षण

भवभूति की शैली

महाकवि भवभूति संस्कृत साहित्य के मान्य-वदान्य कवि हैं। उनकी शैली की सबसे प्रमुख विशेषता है शब्दों में प्रौढि तथा उदारता एवं अर्थ का गौरव। इसकी ओर स्वयं उन्होंने संकते किया है।

यत्प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं
तच्चेदस्ति ततस्तदेवगमकं पाण्डित्यवैदग्धयोः।

—मालतीमाधव, १।१०

भवभूति के सम्पूर्ण-साहित्य में पाण्डित्य और वैदग्ध्य का यह मञ्जुल संगम विद्यमान है। भाषा भावानुसार नर्तन करती है। कवि के मन में ज्योंही कोई नवीन भाव उदित होता है अथवा नवीन दृश्य दिखाई पड़ता हैं त्यों ही उसी के अनुरूप भाषा हो जाती है। उत्तररामचरित में पर्वत-कुहरों में गद्-गद् नाद से प्रवहमान नदी के वर्णन के समय भवभूति की भाषा सारे दृश्यों को वर्णना के माध्यम से ही पाठक के सामने उपस्थित कर देती है।

एते ते कुहरेषु गद्गद्नदद्गोदावरीवारयो
मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दाक्षिणाः।
अन्योन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलै—
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्संगमाः॥

—२।३०

[ये वे दक्षिण दिशा के पर्वत हैं जिनकी गुफाओं में गोदावरी नदी का जल गद्-गद् नाद करता है और जिनके शिखर मेघमाला से आच्छन्न हैं। ये वे पुण्य नदी-संगम हैं जो अगाध जल वाले हैं तथा अन्योन्य प्रतिवात से उत्तालतरंगों वाले हैं।]

अनुप्रासच्छटा से नितान्त रम्य निम्न पद्य में वन-प्रदेश का सारा दृश्य ही सामने आ जाता है। वाणी की प्रौढ़ता का यह कमनीय उदाहरण है।

गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचक—
स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चावतोऽयंगिरिः ।
एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै—
रुद्वेलन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः ॥—२।२९

भवभूति की शैली की विशेषता है वर्णित हो रहे विषयों में सहसा मोड़ आना। कोई पात्र किसी वस्तु का वर्णन कर रहा है, पर नयी परिस्थिति या घटना के घटित होने पर उसके वर्णन का प्रकार सहसा बदल जाता है। उदाहरण के लिये महावीरचरित षष्ठ अङ्क में माल्यवान् राक्षसों की अजेयता तथा बाहुबल पर गर्व कर रहा है पर इसी समय उसकी बांयी आँख फड़कने लगती है और वह कहता है कि भाग्य उसे बोलने भी नहीं दे रहा है :

दुर्गोऽयं चित्रकूटस्तदुपरि नगरं सप्तधातुप्रकार—
प्राकारं दुस्तरैषा निरवधिपरिखाप्यब्धिरभ्रंकषोर्मिः
(विमृश्य) अथवा किमनेन—
दोर्दण्डा एव दृप्यद्रिपुदलनमहासत्रदीक्षाः प्रतीक्ष्या
(वामाक्षिस्पन्दनं सूचयन् सव्यथम्)
किं नो विधिरिह वचनेऽप्यक्षमो दुर्विपाकः ॥—६।७

ऐसे वचन भवभूति के नाटकों में कई मिलते हैं।

भवभूति की वर्णन-शैली में सादगी नहीं, सरलता उन्हें प्रिय नहीं। वर्णन विस्तृत तथा क्लिष्ट हैं। कालिदास की सरलता और सादगी का यहाँ दर्शन नहीं होता। भवभूति शब्दब्रह्मविद् तथा परिणतप्रज्ञ हैं अतः उनके भावों को समझने के लिए सूक्ष्म अध्ययन तथा निरीक्षण-परीक्षण की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु उनकी उस दुरूह और क्लिष्ट शैली में क्रमिक विकास लक्षित होता है। उनके अन्तिम नाटक उत्तररामचरित में प्राथमिक दो नाटकों की अपेक्षा शैली अधिक सरल, स्पष्ट तथा बोधगम्य हो गयी है। इस प्रकार उनकी शैली में क्रमिक विकास लक्षित होता हैं।

भावों की वर्णना-व्यंजना में भवभूति की शक्ति अद्वितीय है। वे भावों की अत्यन्त गम्भीरता में प्रविष्ट होते हैं तथा उसी अनुभूति के साथ उसका वर्णन करते हैं। यह भवभूति की बहुत बड़ी विशेषता है और यह उनको अन्य कवियों से निस्सन्दिग्धरूप में अलग कर देता है। भावों की अनुभूति तथा वर्णना में संस्कृत का कदाचित् ही कोई कवि इतनी ऊँचाई पर पहुँचा हो। भवभूति के नाटक नाट्य-काव्य हैं। काव्य उनका अभीष्ट विषय है और कालिदास के अनन्तर इस कोटि का कोई कवि नहीं हुआ। उनका काव्य-गुण नाटक से ऊपर है और

उनकी सभी कृतियों में यह प्रदर्शित हुआ है। मानव-हृदय के मूल स्रोतों तक भवभूति की पहुँच है और वहाँ से प्रवाहित होने वाले नाना भावों, मनोविकारों अथ च संवेगों का उन्हें दर्शन होता है। कलाकार की रंगीनी और पच्चीकारी भले ही भवभूति में न मिले—और प्रकृति के पावन पुजारी तथा मानव हृदय के भावुक पारखी के लिये यह अपेक्षित भी नहीं है, पर वर्णन में तल्लीनता और व्यापकता का यहाँ हमें उन्मुक्त रूप से दर्शन होता है।

भवभूति की शैली में गौडी रीति का प्राधान्य है जिसमें गद्यभाग में समास बहुलभाषा एवं सानुप्रास पद-विन्यास की प्रमुखता होती है। जहाँ कालिदास की कमनीय शैली में मधुरिमा है वहाँ भवभूति की शैली में औदात्त्य। यह गुण एक प्रकार से अवगुण का रूप भी धारण कर लेता है क्योंकि इन नाटकों से पूर्ण परिचय जिन दर्शकों या पाठकों ने नहीं प्राप्त किया है उनके लिये यह दुरूह दिखायी पड़ती है। पर भवभूति के पद्यों में यह बात नहीं है। अंतिम नाटक उत्तररामचरित की भाषा स्पष्ट है। यहाँ यह भी स्मरण कर लेना चाहिये कि यद्यपि भवभूति माधुर्य गुण में कालिदास से अवरकोटि में आते हैं पर भावों की गहराई तथा परिस्थितियों के बहुरूपी चित्रण में निश्चित रूप से आगे निकल गये हैं।

प्रकृति के बहुरङ्गी चित्रण में भवभूति की शैली अद्वितीय है। भवभूति को प्रकृति का केवल कोमल पक्ष ही अभीष्ट नहीं है। केवल कोमल एवं मनोहर का चित्रण वास्तविक कविकर्म नहीं है यह तो मात्र विलास-प्रियता और तमाशबीनी है। सच्चा कवि तो वह है जो प्रकृति के समस्त रूप का सहृदयता से अवलोकन करे और समान अभिनिवेश तथा तल्लीनता से याथातथ्य उनका उपन्यास करे। जब हम भवभूति को इस दृष्टिकोण के परिवेश में देखते हैं तो यह स्पष्ट पता चल जाता है कि भवभूति प्रकृति के सच्चे पारखी हैं। कोमल एवं उग्र, सुहावने एवं भयङ्कर सभी प्रकार के प्राकृतिक दृश्यों का उन्होंने अवलोकन किया है और उनको पूरी तल्लीनता से व्यञ्जित किया है। भवभूति की शैली इससे बड़ी चमत्कारिणी तथा हृदयहारिणी बन गयी है।

भवभूति की शैली का एक दोष है लम्बे-लम्बे ससासान्त पदों का प्रयोग। यह स्थिति उनके गद्य तथा पद्य दोनों में पायी जाती है। लम्बे-लम्बे गद्यमय संवादों का प्रयोग भी भवभूति में बहुलता में मिलता है। यह अवस्था महावीर-चरित में है और मालतीमाधव में तो अत्यन्त प्रचुरता के साथ पायी जाती है। हो सकता है ऐसा करते समय भवभूति के सामने साहित्यशास्त्रियों का **'ओजः समासभूयस्त्वमिति गद्यस्य जीवितम्'** का आदर्श रहा हो। यह अवस्था गद्य-काव्यों और निबन्धों के लिये प्रशस्त भले ही हो पर नाटक में तो यह अवस्था

वैरस्य की उत्पादिका तथा रस-प्रतीति में व्यवधान डालने वाली है। महावीर-चरित तथा मालतीमाधव में वे गौडी रीति का प्रयोग करते हैं जिसका लक्षण काव्यानुशासन में इस प्रकार दिया गया है :

ओजोगुणयुक्ता गौडीया रीतिः। अस्यां च बन्धौद्धत्यं समासदैर्घ्यं संयुक्तवर्णत्वं प्रथमतृतीयाक्रान्तौ द्वितीयाचतुर्थौ युक्तौ रेफश्च कार्यः ॥
—१।२४

गौडी-रीति के प्रयोग से इन दोनों नाटकों की स्थिति उत्तररामचरित से सुतरां भिन्न है। उत्तररामचरित में करुणरस की व्यञ्जना है तथा तदनुकूल कोमल पदों की संघटना है एवं लम्बे समासों एवं कटुवर्णों का अभाव है। इस नाटक में वैदर्भी रीति का कविने आश्रय लिया है जिसका लक्षण इस प्रकार है :

माधुर्यगुणयुक्ता वैदर्भी रीतिः। अस्यां च प्रायेण कोमलो बन्धोऽसमासः......।—काव्यानुशासन, १·१३

शब्दों तथा वाक्यों के बन्धों में कहीं-कहीं शैथिल्य का दर्शन होता है। ऐसे भी कुछ वाक्य हैं जो किसी न किसी प्रकार से दोषपूर्ण हैं।[1] पर, इसके विपरीत भवभूति की शैली भावनाओं की गहराई तथा उन्हें उतने ही उपयुक्त शब्दों में व्यञ्जित करने के कारण अपनी प्रभावुकता में बेजोड़ है। वे गम्भीर से गम्भीर भावों को उतनी समर्थ भाषा में व्यञ्जित करते हैं जो उस भावना को यथातथ्य रूप में चित्रित कर देती है। उनकी भाव-व्यञ्जना के विषय में यही कहा जा सकता है—Intensity of feeling expressed in a language which accurately depicts that feeling.

नवीन उपमाओं की संघटना में भवभूति की शैली कहीं-कहीं कालिदास से भी आगे बढ़ जाती है। संस्कृत के कवियों के नायिका की आँखों की उपमा मृगी की आँखों से देना बहुत प्रिय था; उनके काव्यों मे मृगनयनियों का प्राचुर्य मिलता है। कालिदास की यक्ष-वधू की आँखें सामान्य मृगी की आँखें नहीं अपितु चकित हरिणी की आँखों के समान है—वह 'चकितहरिणी प्रेक्षणा' (मेघदूत) है, एक तो मृगी की आँखों में स्वाभाविक लौल्य फिर चकित अवस्था में तो पूछना ही क्या ? कभी इधर कभी उधर घूमती रहती हैं। पर भवभूति को इतने से ही सन्तोष नहीं हुआ। सीता की आँखें सामान्य हरिणी की आँखों के समान नहीं। उनकी आँखें उस प्रकार चञ्चल हैं जिस प्रकार एक वर्ष के डरे हुये मृग शावक की आँखें चपल होती हैं। एक तो एक वर्ष का छोटा बच्चा दूसरे त्रस्त ! आँखें कभी इस दिशा को कभी उस दिशा को देखेंगी।

१. द्रष्टव्य, टोडरमल-संपादित महावीरचरित की भूमिका, पृ० ३३

कालिदास के चकित शब्द में कुछ स्तब्धता भी हो सकती है पर इस त्रस्त और एकहायन की तो स्थिति ही दूसरी है। यहाँ स्थिरता कहाँ ?

त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टे--३।२८

कवि के उत्तररामचरित में वैदर्भी रीति का प्रसार भी दर्शनीय है।

भवभूति के ग्रंथों में सूक्तियों की बहुलता दिखाई पड़ती है। भवभूति के मुख से एक बात यदि सुन्दर निकल गई तो अवसर आने पर वे उसे पुनः-पुनः दुहराते हैं। यही कारण है कि एक ही श्लोक दूसरे ग्रंथों में भी दुहराया गया मिलता है। ऐसे श्लोक बहुलता से मिलते हैं। उत्तररामचरित में ही एक श्लोक दो बार कहा गया है (२।१९; ६।५)।

भवभूति की भाषा

महाकवि भवभूति शब्द तथा अर्थ-तत्त्व के ज्ञाता है। काव्य में प्रौढ़ि तथा उदारता की उद्घोषणा करने वाले कवि का भाषा पर कितना अधिकार रहा होगा यह प्रश्न सुस्पष्ट है। उन्होंने बड़े ही आत्मविश्वास से कहा है—

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते ॥---१।२

भाषा ही भाव-व्यञ्जित करने का साधन है। दूसरे शब्दों में वह भावों की वाहिका है। जिस प्रकार शरीर के बिना प्राण की सत्ता नहीं उसी प्रकार भाषा के बिना भी भाव की सत्ता नहीं। समर्थ कवियों में भाषा भाव का अनुगनन करती है। जिस प्रकार के भाव की वर्णना करनी है उसी प्रकार की भाषा ढल जायेगी। समर्थ कवियों की भाषा एक अत्यन्त तरल पदार्थ होती है जो किसी भी ढाल पर ढल जाया करती है। यदि शृंगार-रस की वर्णना में कटुवर्ण बहुल भाषा होगी तो यह नितान्त अनुचित तथा अरोचकी बात होगी। इसी प्रकार वीर तथा रौद्र रसों की वर्णना में कोमलकान्तपदावली वाली भाषा दिखाई पड़े तो यह अनस्थान बात होगी। कवि पोप अपने 'एसेज़ आन क्रिटिसिज्म' नामक ग्रंथ में बहुत ही ठीक कहा है :

'The sound must seem an echo to the sence.'

जब हम भवभूति की भाषा पर विचार करते हैं तो वे एक समर्थ कवि दिखाई पड़ते हैं और उनकी भाषा भी सर्वथा समर्थ दिखाई पड़ती है। भाषा-ज्ञान तथा उनकी ध्वनि पर भवभूति का असाधारण अधिकार है। कालिदास सरल भाषा के पक्षपाती थे पर भवभूति, जैसा कि पहले संकेत किया गया हैं, गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे। उनमें सरल शब्दावली का अभाव मिलेगा। भवभूति के नाटकों को सहसा रङ्गमञ्च पर देखने से पूर्व उनका अध्ययन-मनन अपेक्षित है। भाव यहाँ पूर्णतः स्पष्ट नहीं, अपितु अर्ध प्रकट तथा अर्ध अप्रकट

(Half revealed and half concealed) है। पाठक को भावों को पकड़ने के लिये उन पर ध्यान देना पड़ेगा।

भवभूति की भाषा में भावों की अभिव्यक्ति की अपूर्व शक्ति है। किसी दृश्य को उपस्थित करते समय भाषा उसे मूर्तिमान् रूप में उपस्थित कर देती है। भाषा की ध्वनि ऐसी होती है पूरा दृश्य ही ध्वनित हो उठता है। भाषा की शक्ति का ऐसा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। 'एते ते कुहरेषु गद्‌गदनदद् गोदावरीवारयो' (उत्तर० २।३०) इत्यादि उदाहरण इस बात के स्पष्ट द्योतक हैं। भाषा की शब्दावली ही इस प्रकार ध्वनित हो रही है कि नदी का गद्‌गदनाद ध्वनित हो उठता है।

भवभूति की भाषा परिस्थितियों के अनुसार बदलती है। प्राकृतिक दृश्य के वर्णन के समय भाषा उस चित्र का दृश्य उपस्थित कर देती है। उनकी पद-शय्या इतनी सावधानी से बैठायी गयी है कि एक शब्द भी इधर से उधर नहीं हो सकता। वे शब्दों के धनी हैं। उन्हें शब्दों के अनेकों पर्याय स्मरण हैं तथा बहुत से शब्द तो ऐसे मिलेंगे जिनके सभी पर्यायों का भवभूति ने उपयोग कर डाला है। उन्होंने महावीरचरित की प्रस्तावना में 'वश्यवाचः कवेर्वाक्यम्' कहा है। उनकी सभी कृतियों में वाणी की वश्यता का उदाहरण देखा जा सकता है।

भवभूति का प्राकृत भाषा का प्रेम भी दर्शनीय है। यद्यपि महावीरचरित में तथा उत्तररामचरित में प्राकृत की कमी है पर मालतीमाधव में इसकी बहुलता भी दर्शनीय है। मालतीमाधव के १० अङ्कों में से ९ में प्राकृत विराजती है और अङ्क ३ तथा ७ में बड़े-बड़े संवाद इसी में निबद्ध हैं। महावीरचरित में प्राकृत के कम ही अंश हैं तथा नाटककार शौरसेनी तथा महाराष्ट्री प्राकृतों के अन्तर नहीं कर सका है और इनका मिश्रण दिखाई पड़ता है। कहीं-कहीं तो विभिन्न स्थलों पर एक ही शब्द के दो रूपों का प्रयोग हुआ है जैसे कहीं 'वट्टदि' है तो कहीं 'वट्टइ'। [1]प्राकृत के विषय में सामान्यतः भवभूति ने सौरशेनी प्राकृत तक ही अपने को सीमित रखा है।[2]

---

१. महावीरचरित के प्राकृत के उदाहरणों के लिये द्र० टोडरमलकृत महावीरचरित की प्रस्तावना, पृ० २८-२९।

२. Bhavabhūti with his limited Scope, confines himself to Sauraseni and models his style on Sanskrit, so that the speakers of prakrit are committed to the absurdity of elabrorate style in what is to be supposed to be a vernacular—A. B. Keith, Sanskrit Drama, P. 203.

भवभूति की भावानुवर्तिनी भाषा की डी० एल० राय ने प्रशंसा की है। जहाँ कालिदास की भाषा अपनी सरलता में महत्त्व रखती है वहाँ भवभूति की भाषा की गम्भीरता भी कम महत्त्व की नहीं। शब्दब्रह्मविद् तथा परिणतप्रज्ञ कवि भवभूति पामरजनश्लाघ्य भाषा के पक्षपाती नहीं। उनकी धीर गम्भीर-भाषा का अपना विशेष स्थान है।

भवभूति की भाषा में भावव्यञ्जना की अपूर्व शक्ति है। एक ओर जहाँ वह मूर्त पदार्थों की वर्णना में उनको साकार उपस्थित कर देती है वहाँ दूसरी ओर अमूर्त भाव पदार्थों की वर्णना में भी उनका साङ्गोपाङ्ग वर्णन कर पाठक के मन में उनकी सम्यक् उद्बुद्धि कर देती है। कवि में यह सफलता बड़े मार्के की है। वस्तुतः काव्यकर्म में भाषा का यही महत्त्व है। काव्यकर्म के दो अङ्ग हैं—अनुभूति और वर्णना। वर्णना के लिये हीं भाषा की अपेक्षा होती है। कवि की अनुभूति कितनी भी प्रखर, कितनी भी सच्ची और कितनी भी मार्मिक क्यों न हो पर जब तक सशक्त भाषा के माध्यम से वह अवतरित होकर प्रवाहित न हो तब तक किस काम की। भवभूति की भाषा सशक्त है और भावव्यञ्जना में पूर्णतः सफल है। पदवाक्यप्रमाणज्ञ भवभूति वाणी के धनी हैं।

काव्य-प्रकर्ष

भवभूति का कविरूप इनके नाटकों में अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होता दिखाई पड़ता है। उनकी वैखरी जो शब्दविधान करती है वह सहज कवितामय होता है। काव्यका गुण सौन्दर्य-विधान है जिसमें मन तल्लीन हो जाय। राजशेखर ने इसीलिये काव्य को 'अविचारितरमणीयरचना' की संज्ञा दी है। काव्य में निर्माता और स्रोता बरबस इतने आकृष्ट हो जाते हैं कि अन्य विषयों को भूलकर उसी में अवगाहन करने लगते हैं। किन्तु, ऐसी स्थिति सर्वत्र नहीं हो सकती। यह इस बात पर निर्भर करती है कि कवि की अनुभूति कितनी तीव्र है तथा उसकी भाषा कितनी सशक्त है। दोनों—अनुभूति और वर्णना—के मणिकाञ्चन योग में ही काव्य का प्रकर्ष है। यह सबके बूते की बात नहीं। विरले प्रतिभाशक्ती ही इतनी शक्ति से सम्पन्न होते हैं—

काव्यं तु जायते जातु कस्यचित्प्रतिभावतः।

जब हम भवभूति पर इस दृष्टि से ध्यान देते हैं तो वे उच्च कक्षा के कवि दिखाई पड़ते हैं। वस्तुतः भवभूति का कविरूप ही इन नाटकों में विशेष-रूप से प्रष्फुटित हुआ है। अनुभूति की तीव्रता देखनी हो तो देखिये—पत्थर भी रो देंगे, फिर सचेतन प्राणियों की क्या बात? शब्दशक्ति देखनी हो तो फिर दूसरा कवि अच्छा ही नहीं लगेगा।

भवभूति की विशेषता है कि जिस वस्तु का वर्णन उन्होंने पकड़ा है उसका पूरा निर्वाह किया है। अपूर्ण अथवा ऊपरी वर्णन उन्हें प्रिय नहीं। पूर्ण तथा अन्तग्राही वर्णन उनकी विशेषता है। इसीलिये उनके नाटकों में ऊपरी चाकचिक्य और कलाबाजी का अभाव है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं एवं मनोवृत्तियों का वर्णन उन्होंने किया है और वह वर्णन इतना पूर्ण तथा हृदयहारी है कि मन को परम विश्रान्ति मिलती है। कालिदास की शकुन्तला में शकुन्तला के रूप-सौन्दर्य पर कवि की दृष्टि अच्छी तरह जमी थी पर उत्तररामचरित में भवभूति ने उधर विशेष ध्यान ही नहीं दिया प्रसंगोपात्त होने पर मात्र संकेत कर दिया। यहाँ तो कवि की दृष्टि सीता के शील-सौदर्य की ज्योत्स्ना की आभा को प्रदर्शित करने पर है।

वस्तुतः भवभूति का सौन्दर्य-वर्णन मात्र प्रकृत रसकी उदबुद्धि के निमित्त हुआ है। विरहिणी सीता का वर्णन तमसा कर रही है। सीता का सुन्दर शरीर करुणरस की प्रतिमूर्ति बन गया है। पाठक का ध्यान सौन्दर्य पर न जाकर करुण पर ही चला जाता है :

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकबरीकमाननम् ।
करुणस्य मूर्तिरिव वा शरीरिणी
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ॥ उत्तरराम०—३।४

[पीले तथा दुर्वल कपोल से युक्त, चञ्चल वेणी से युक्त मुख को धारण करती हुई जानकी करुणा की मूर्ति या शरीरधारिणी विरहव्यथा-सी वन में आ रही है।]

इस उदाहरण में कपोल और कबरी भी करुण के ही उद्‌बोधक हो गये हैं। वस्तुतः, जैसा कि स्वर्गीय डी० एल० राय ने कहा है, सीता के बाहरी रूप को देखने का अवकाश ही भवभूति को नहीं है। वे सीता के गुणों पर मुग्ध है। भवभूति का वर्णन इतना पवित्र, प्रशस्त एवम् उदात्त है कि उनका सीता के प्रति मातृभाव सर्वत्र व्यञ्जित है। सीता बाहर-भीतर सर्वत्र माता ही माता हैं।[1] वस्तुतः भवभूति का वर्णन रस-भाव से आपूर्ण है। वहाँ सुख-दुःख का निश्चय नहीं। इन्द्रियजन्य ज्ञान वहाँ शेष नहीं रह जाता। राम सीतास्पर्शजन्य सुख का वर्णन करते हुये कह रहे हैं :

---

१. कालिदास और भवभूति, पृ० १०८

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो-
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च संमीलयति च ॥—उत्तर०, १।३५

[प्रिये ! तेरे प्रत्येक स्पर्श में ऐसा मनोविकार जो इन्द्रियगणों को स्वविषय-ग्रहण में असमर्थ बना देता है, चेतना को भ्रमितकर देता है तथा जगा देता है उस समय में यह सुख है या दुःख, मोह है या निद्रा अथवा विषविसर्प है या मद' यह निश्चय नहीं कर सकता ।]

वस्तुतः यही स्थिति भवभूति के काव्य की है । इस की ही एकमात्र एकत्र सत्ता है । भवभूति की सीता राम के लिये आह्लादकारी और सकलेन्द्रियों की सम्मोहनकर्त्री हैं ।

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि ।
एतानि तानि वचनानि सरोरुहाक्ष्या
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ॥

भवभूति किसी दृश्य वा पदार्थ का वर्णन करने लगते हैं तो उसका पूरा निर्वाह करते है । यह और बात है कि उनका यह वर्णन नाटक की कथावस्तु को कहाँ तक आगे बढ़ाता है और यह उस दृष्टि से वह दोष भी हो सकता है, किन्तु, कवित्व की दृष्टि से उनका यह वर्णन ऊँचा है और अपनी समकक्षता में किसो को नहीं रखता । इसके उदाहरण के रूप में हम दो विवरणों का संकेत कर सहते हैं—एक तो मालती माधव में श्मशान का वीभत्सवर्णन और दूसरा उत्तररामचरित में लवके स्वरूप तथा पराक्रम का वर्णन । दोनों वर्णन नाटकीय कथानक को अग्रसारित करने में कोई विशेष महत्त्व नहीं रखते, पर काव्य की दृष्टि से तथा रस-बोध की दृष्टि से सुतरां स्तुत्य हैं । कवि वह है जो जिधर हाथ लगावे रस टपकने लगे जिस, जिस मिट्टी को छुवे वह सोना बन जाय, जिस कथानक को ले वह रस-भाव-भरित हो जाय । यही है भवभूति की सफलता । सीता के दुःख में भी दर्शक वा पाठक सुखका अनुभव करता है; यही है रस स्थिति । विगलितवेद्यान्तर ब्रह्मानन्दसहोदर साहित्यरस की उद्‌बुद्धि करना भव-भूति का महान् कविकर्म है ।

उत्तरचरितके पाँचवे अंक में लव संग्रामाङ्गण में चन्द्रकेतु का वर्णन कर रहे हैं । कई पद्यों में लगातार यह वर्णन चल रहा है—

किरति कलितकिञ्चित्कोपरज्यन्मुखश्री-
रनवरतनिगुञ्जत्कोटिना कार्मुकेन ।
समरशिरसि चञ्चत्पञ्चचूडश्चमूना-
मुपरिशरतुषारं कोऽप्ययं वीरपोतः ॥—५।२

[यह पञ्चचूड वीरबालक कौन है जिसका मुख ईषत् क्रोध से लाल है और जो लगातार टंकार कर रहे धनुष से समराङ्गण में मेरी सेना को ऊपर बाणरूपी ओलों की वृष्टि कर रहा है ।]

मुनिजनशिशुरेकः सर्वतः सैन्यकाय
नव इव रघुवंशस्याप्रसिद्धः प्ररोहः ।
दलितकरिकपोलग्रंथिटङ्कारघोरं
ज्वलितशरसहस्रैः कौतुकं मे करोति ॥—५।३

[यह मुनि बालक एकाकी है, इसके चतुर्दिक् सैन्यसमूह व्याप्त है । यह रघुवंश के ही किसी अप्रसिद्ध नवीन अङ्कुर की भाँति है । यह बालक प्रज्ज्वलित सहस्रों बाणों से हाथियों के कपोलग्रंथि को विदीर्ण करने से घोर शब्द करते हुये मेरे मन में कौतूहल उत्पन्न कर रहा है ।]

यह वर्णन कई पद्यों तक आगे चलता है । इसी प्रकार मालतीमाधव में श्मशान के बीभत्स-वर्णन का भी प्रसंग है । पञ्चम अङ्क में इसका विस्तृत वर्णन नाटकीय संघटना की दृष्टि से तुच्छ होते हुये भी काव्य की दृष्टि से यह उत्तम-कोटिक ही है ।

भवभूति के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता, जैसा कि अन्यत्र संकेत किया गया है, उनके भावों की गहराई तथा सघनता है । करुणरस की वर्णना मात्र पाठक के मन में करुण की उद्‌बुद्धि कराना नहीं अपितु पाठक को अश्रु-विगलित कर देना है । कवि का पात्र ही नहीं रोता है, कवि स्वयं पात्र में बैठकर रो रहा है, सारा वातावरण रो रहा है, पशु-पक्षी, पर्वत, नदी, नाले रो रहे हैं और इनके बीच बैठा हुआ सहृदय सचेतन दर्शक या पाठक रोयेगा नहीं तो और क्या करेगा ? फूट-फूट कर रोयेगा तभी उसके मन को शान्ति मिलेगी; उसका चित्त प्रसाद प्राप्त करेगा, मानसिक खेद में न्यूनता होगी । दूसरा मार्ग ही क्या है—

पूरोत्पीडे तडागस्य परीवाहः प्रतिक्रिया ।

भवभूति धीर-प्रशान्त प्रकृति के महाकवि हैं । गुरु-गम्भीर पाण्डित्य से उनकी प्रवृत्ति में चाञ्चल्य नहीं, लौल्य नहीं । धीर, गम्भीर एवं शान्तगति से उनकी भावधारा प्रवाहित होती है । इसी धीरता और गम्भीरता का परिणाम है कि उनके नाटकों में विदूषकों का अभाव है । विदूषकों की परम्परा संभवतः नाट्य-

शास्त्र के आरम्भ से ही चली आ रही थी—ईसा के चार सौ वर्ष पूर्ववर्ती भास में भी इसका स्वच्छन्द विहार है, पर भवभूति ने उनको हटा दिया है। उनको मसखरा नहीं चाहिये। यह प्रश्न हो सकता है कि भवभूति के नाटकों में विदूषकों की अपेक्षा ही नहीं तो फिर विदूषक क्यों रहें? पर, यह प्रश्न समीचीन नहीं। वीरचरित तथा उत्तरचरित में भले ही विदूषक के अभाव में भी काम चल जाय, पर मालतीमाधव में तो विदूषक के लिये पूरा अवकाश है। इसलिये यही प्रतीत होता है कि भवभूति की प्रवृत्ति ही इस ओर नहीं थी। उनकी इसी प्रवृत्ति का परिणाम है कि उनके नाटकों में हास्य के स्थलों का अभाव है। उनके समग्र नाटकों को पढ़ने पर दो चार स्थल ही ऐसे मिलेंगे जिनमें हास्य की, वह भी स्मित हास्य की, उद्बुद्धि हुई है। भवभूति कूद-फाँद कर हँसने-हँसाने वाले कवि नहीं। उत्तारचरित में हास्य का एक सुन्दर प्रसंग है। चित्र दर्शन के अवसर पर सीता का लक्ष्मण से उर्मिला का चित्र दिखाना—पर, कवि ने उसका निर्देशकर ऐसा मोड़ लिया कि फिर वह अवसर ही नहीं आया।

भवभूति के नाटकों में नवरसों की वर्णना बड़ी समीचीन हुई है। उनका प्रधान तथा अभीष्ट रस करुण है तथा उनकी मान्यता है कि सभी रसों का उत्स वही है। अतः यह बहुत स्वाभाविक है कि वे उसकी वर्णना में अपनी लेखनी की सारी शक्ति लगा देते पर जहाँ तक अन्यरसों का प्रश्न है प्रसङ्गोपात्त होने पर उनका भी वर्णन वे उसी अभिनिवेश तथा तल्लीनता से करते हैं। वीभत्स के प्रसङ्गों का निर्देश पहले किया गया है।

नाना परिस्थितियों एवं मनोगतियों का वर्णन भवभूति एक अजीब सफलता से करते हैं। तपोवन में राम के अश्वमेध का अश्व गया है। विद्यार्थियों ने इससे पूर्व कभी अश्व को नहीं देखा था। इस अश्व को देखकर उन्हें उसे पहचानने में सफलता नहीं हुई। वे लव से आकर कहते हैं--

पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं
दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रा-
न्किं वाख्यातैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः॥

—उत्त० ४।२६

[वह पीछे बड़ी पूँछ धारण किये है जिसे बार-बार हिला रहा हैं। उसकी ग्रीवा लम्बी है तथा उसे चार खुरें हैं। वह तृण खाता है तथा आम्रफल के परिमाण के विष्ठापिण्डों को गिराता है। अथवा वर्णनों से क्या? वह दूर जा रहा है। आओ, आओ ! हम जा रहे हैं।]

काव्य हृदय को रमा देने वाली वस्तु है। ज्यों ही वाल्मीकि के आश्रम में जनक, वसिष्ठादि के आने से अनध्याय होता है छोटे-छोटे बटुक आह्लाद के प्रकर्ष से नाँच उठते हैं। आज भी छोटे बच्चे छुट्टियों के नाम से प्रसन्न होते हैं। भवभूति की अन्तर्दृष्टि ने इस तथ्य को बड़ी बारीकी से सन्निविष्ट किया है। देश-काल का चित्रण भवभूति के नाटकों में यथास्थान दिखाई पड़ता है जिनके सूत्र-संग्रह से उनकी रूपरेखा निर्मित हो सकती है।

अन्य विषयों का वर्णन करते-करते जब भवभूति करुणरस पर आते हैं तो वहीं ठनक जाते हैं और पाठक को आचूल निमग्न करा देते हैं। उत्तररामचरित का करुणरस भवभूति का प्रमुख कविकर्म है। कुछ लोगों ने उत्तरचरित के तृतीय अङ्कको नाटकीय दृष्टि से आवश्यक नहीं माना, पर वस्तुतः काव्य की दृष्टि से तो यह अङ्क चरम उत्कर्ष को प्राप्त हुआ है। राम और वासन्ती के संवादों में करुणरस की जो छटा दिखाई पड़ती है उसमें अपूर्व शक्ति और शालीनता है। वासन्ती के हृदय का आक्रोश एवं शोक महाकवि ने बड़ी ही सुन्दरता से अङ्कित किया है—

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमिहोत्तरेण॥—उत्तर० ३।२६

['तू जीवन है, तू मेरा द्वितीय हृदय है, तुम नेत्रों में चादनी है, तू अङ्गों में अमृत है' इत्यादि सैकड़ों वचनों से उस मुग्धा को वश में करके उसी को········ अथवा बस, अब इस विषय में आगे कहने से क्या लाभ ?]

यही कह कर वह मूच्छित हो जाती है। जब पुनः चेतना का उसमें सञ्चार होता है वह पुनः इस त्याग का कारण पूछती है। राम कहते हैं कि लोकाराधन के लिये उन्होंने सीता का त्याग किया। उस समय वासन्ती की यह उक्ति कितनी पीड़ा तथा आक्रोशभरी है।

अयि कठोर ! यशः किल ते प्रियं
किमयशो ननु घोरमतः परम्।
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः
कथय नाथ कथं बत मन्यसे॥ —उत्तर० ३।२७

[हे कठोर ! तुम्हें यश प्रिय है यह बात प्रसिद्ध है। पर, इससे बढ़कर अपयश और क्या होगा ? मृगनयनी सीता का बन में क्या हुआ ? हे नाथ ! बताइये इसे आप क्या मानते हैं ?]

वासन्ती की इस मर्मभेदी वातों से राम का शोक भी फूट पड़ता है; वह शोक जो अन्दर ही अन्दर उन्हें पुटपाक जैसा जलाता था बाहर निकल पड़ता हैं। अपने शोक को तो वे भीतर ही रखे थे—

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तरगूढघनव्यथः ।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ॥ —उत्तर० ३।१

वे फूट-फूट कर रो पड़ते हैं और कवि को कहना पड़ता हैं।

पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया ।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ॥ —उत्तर० ३।२९

मनोभावों, दुःख-सुखों आदि के वर्णन के अतिरिक्त भवभूति का प्रकृतिवर्णन भी सफल है। नाटक में प्रकृतिवर्णन के लिये काव्य-जैसा अवकाश नहीं रहता। नाटककार को तो केवल प्रसङ्गोपात्त होने पर ही उसका वर्णन करना होता है और वह भी केवल उस मात्रा तक ही जब तक कथानक उससे सम्बद्ध है। उस सीमित अवकाश में भवभूति का प्रकृतिवर्णन अत्यन्त उच्चकोटि का दिखाई पड़ता है! गोदावरी नदी के गद् गद कर रहे जलका वर्णन अपूर्व है; वन्यप्रान्त, श्मशान, युद्धभूमि आदि का वर्णन उसी शक्ति और तल्लीनता के साथ दिखाई पड़ता है। वनप्रान्तस्थ क्रौञ्चगिरि का यह वर्णन कितना पूर्ण है :

कूजत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचक—
स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चावतोऽयं गिरिः ।
एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै—
रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः ॥
—उत्तर० २।२९

गोदावरी नदी के जल-संगम का वर्णन भी बिम्बग्राही तथा पूर्ण है।

एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो
मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दाक्षिणाः ।
अन्योन्यप्रतिघातसङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहलै—
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः ॥
—उत्तर० २।३०

भवभूति की शब्दावली अलंकारों की छटा से भी अलंकृत है। अलंकारों की काव्य की उपयोगिता के विषय में मतैक्य नहीं है। कुछ लोग अलंकारविहीन कविता का अस्तित्व ही नहीं मानते। जिसप्रकार अग्निका धर्म दाहकत्व है उसी प्रकार काव्य का धर्म सालंकार होना है। अलंकार-विहीन कविता विधवा के समान है।

गुणालङ्काररहिता विधवेव सरस्वती ।

इसके विपरीत ध्वनिवादी अलंकार को आवश्यक नहीं मानते । चाहे जो भी हो पर इतना तो निश्चित ही है कि अलंकार काव्य के लिए आवश्यक चाहे न भी हो पर उसके उत्कर्षाधान में निश्चितरूपेण सहायक हैं । यद्यपि भवभूति अलंकारों को केवल प्रदर्शन के लिये नहीं इकट्ठा करते और न तो जबर्दस्ती उन्हें लाते ही हैं पर वाणी पर उनका अटूट अधिकार है और अनजाने ही अलंकारों की संघटना हो जाती है । अलंकारों में शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों पाये जाते हैं । 'कूजत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कार' वाले पूर्वोद्धृत पद्य में अनुप्रास की छटा अपनी बांकी अदा दिखाती है । अर्थालंकारों में उपमा, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार विशेष रूप से दिखाई पड़ते हैं । अलङ्कार की शोभा इस पद्य में देखिये ।

अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः ।
उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम् ॥ —उत्तर० ३।९

[(पञ्चवटी के दर्शन से) आज अत्यन्त उद्दामरूप से जलने वाले अन्तर्निहित दुःखाग्नि के धुयें के संघात की भाँति मोह मुझे पहले से आच्छादित कर रहा है]

प्रकृति वर्णन

काव्य के वर्ण्यविषयों में प्रकृतिवर्णन भी एक प्रमुख है । प्रकृतिवर्णन प्रधानतः अङ्ग बन कर ही आते हैं । प्रकृतिवर्णन से कवि की प्रकृति का पता चलता है । प्रकृति-वर्णन सूक्ष्म तथा अभिनिवेश पूर्वक होना चाहिये । कवि के लिये प्रकृति के जितने भी रूप हैं सभी वर्ण्य होते हैं । उसमें सुन्दर और असुन्दर का विवेक ठीक नहीं । कंटे-छंटे उद्यानों, वापी, तड़ाक आदि के वर्णन में उसकी जितनी रुचि होनी चाहिये उतनी ही रुचि गम्भीर भयानक वनों, मरुभूमियों और पशुपक्षियों के वर्णन में भी होनी चाहिये । जब हम भवभूति को इस दृष्टि से देखते हैं तो भवभूति वस्तुतः ऊँची रुचि के कवि दिखाई पड़ते हैं । प्रकृति के जितने भी रूप प्रसङ्गतः और नाटक की प्रकृति के अनुकूल उपस्थित हुये भवभूति ने अपूर्व सफलता और प्रेम के साथ उनका वर्णन किया है । महाकवि कालिदास का विशेष आग्रह प्रकृति के सुकुमार रूप की ओर है पर महाकवि भवभूति का ऐसा कोई पक्षपात नहीं; इसके विपरीत वे प्रकृति के भयानक तथा उग्र रूपों की वर्णना में विशेष प्रकर्ष दिखाते हैं । प्रकृति के उग्र-कठोर पार्श्व की ओर उनकी प्रवृत्ति विशेष रमी है ।

नाटक में प्रकृति-वर्णन के लिये अवकाश कम होता है। महाकाव्यों में जहाँ कविगण कई-कई सर्गों में पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय आदि का वर्णन कर जाते हैं वहाँ नाटककार के लिये कुछ सीमित पद्यों तक ही प्रकृतिवर्णन की छूट होती हैं। इस प्रकार नाटककार की शक्ति और रुचि का पता बड़ी सरलता से लग जाता है। इस सीमित संख्या में वह विषयों का वर्णन किस सफलता से करता है और उसका वर्णन कितना पूर्ण तथा सूक्ष्म है यही उसके प्रकृति-प्रेम का निकष है।

महाकवि भवभूति ने प्रकृति-वर्णन में विषयों का चुनाव बड़े कौशल से किया है तथा उनका पूर्ण वर्णन किया है। भवभूति की दृष्टि प्रकृति के उग्र, भयानक और विषम रूप पर गयी। भवभूति का वर्णन प्रकृति के अलङ्कृत रूप की ओर नहीं गया है इसी लिये उसकी यथार्थता में कोई सन्देह नहीं उत्पन्न होता। वस्तुतः कवि ने प्रकृति के रूप को देखा, आँखें खोल कर हृदय से देखा और लोगों को दिखाया। भीषण दण्डक वन का वर्णन देखिये :

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित् क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः
स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः।
सीमानः प्रदरोदरेषु विलसत्स्वल्पाम्भसो यास्वयं
तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते॥ —उत्तर० २।१६

[वनप्रदेश कहीं-कहीं तो नितान्त शान्त है और कहीं-कहीं भयंकर जानवरों की प्रचण्डध्वनि से शब्दायमान हैं। कहीं स्वेच्छया सोये सर्पों की श्वास से अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है। जल का अभाव है, कहीं-कहीं छोटे गड्ढ़ों में थोड़ा जल दिखायी पड़ रहा है। प्यासे गिरगिट अजगरों के प्रस्वेद-बिन्दुओं का पान कर रहे हैं।]

पहाड़ी नदियों का वर्णन देखिये :

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरवीरुत्—
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज—
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः॥ —उत्तर० २।२०

[यहाँ प्रवल प्रवाह वाली छोटी नदियाँ बह रही हैं। इनके किनारे वानीर लतायें खड़ी हैं जिनपर मत्तपक्षी बैठे हैं! उन वानीर-पुष्पों से सुवासित होने से इनका शीतल जल सुगन्धित है तथा इनकी धारायें फल से लदे काले जामुन के निकुञ्जों से टकरा कर शब्द कर रही हैं।]

और भी—

दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूना--
मनुरसितगुरूणि स्त्यानमम्बूकृतानि ।
शिशिरकटुकषायः स्त्यायते सल्लकीना-
मिभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगंधिः ॥--उत्तर० २।२१

[यहाँ बिलों में रहने वाले भालुओं के थूकयुक्त शब्द, जो प्रतिध्वनियों से भारी हुये हैं, वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं तथा सल्लकी लताओं का गन्ध, जो हाथियों के द्वारा ग्रंथि को तोड़कर फेंके जाने से उत्पन्न हो रहा है, बढ़ रहा है।]

क्रौञ्चावत पर्वत का सानुप्रास यह वर्णन देखिये ।

कूजत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचक—
स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चावतोऽयं गिरिः ।
एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै—
रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः ॥

—उत्तर० २।२९

[यह क्रौञ्चावत नामक पर्वत है, यह कुन्जरूपी कुटीरों में कूज रहे उलूक-समूह के घूत्कार शब्दों से युक्त है तथा इसपर कीचकों (वासों) की ध्वनि से कौए निःशब्द हो गये हैं। इस पर्वतपर इधर-उधर चल रहे मयूरों की ध्वनियों से डराये गये अजगर पुराने चन्दनवृक्षों के तनों पर इतस्ततः सरक रहे हैं।]

गोदावरी के गद् गद् ध्वनि करने वाले जल का यह वर्णन देखिये। इसमें शब्दों की ध्वनि से ही नदी जल की ध्वनि उत्पन्न हो रही है :

एते ते कुहरेषु गद्-गद्नदद्गोदावरीवारयो
मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दाक्षिणाः ।
अन्योन्यप्रतिघातसङ्कुलचलत्कल्लोलकोलाहलै—
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्संङ्गमाः ॥

--उत्तर० २।३०

[ये वे दक्षिण के पर्वत हैं जो कुहरों में गद्गद् शब्द कर रहे गोदावरी नदी के जलों से युक्त है तथा जिनके नील शिखर मेघों से आक्रान्त हैं ! ये वे गभीर जल वाले पवित्र नदीसंगम है जो परस्पर प्रतिघात से संकुल तथा चंचल ऊर्मियों के शब्दों से मुखरित हैं।]

वर्षा-ऋतु का यह वर्णन देखिये :

स्थितमुपनतजृम्भारम्भबिम्बैः कदम्बैः
कृतमतिकलकण्ठैस्ताण्डवं नीलकण्ठैः ।
अपि च विघटमानप्रौढतापिच्छनीलः
श्रयति शिखरमद्रेर्नूतनस्तोयवाहः ॥

—महावीर० ५।४३

[कदम्ब विकासोन्मुख हो रहे हैं, मधुर कण्ठवाले नीलकण्ठ ताण्डव कर रहे हैं तथा विकसित हो रहे तमाल वृक्ष की नाई नील नवीन मेघ पर्वत की चोटीपर छा रहे हैं ।]

निम्न पद्य में कावेरीतट की भूमि का वर्णन हुआ है ।

यत्पर्यन्तमहीध्रसीम्नि कुहलीमाध्वीकधारोद्गिर—
द्धृष्यत्पूगवनीघनीकृततलैस्तुङ्गैजरच्छाखिभिः ।
लक्ष्यन्ते विविधाश्रमाः स्थिरतपःस्वाध्यायसाक्षात्कृत—
ब्रह्माणो निवसन्ति यत्र मुनयः कल्पस्थितेः साक्षिणः ॥

—महावीर० ७।१३

[इस पर्वत-सीमा के प्रान्त में ताम्बूलीलता से च्युत मकरन्दधारा को चुलाने वाले पूगवृक्षों से निबिड़ बड़े-बड़े पुराने वृक्ष हैं । इन पुराने वृक्षों से ऋषिओं के आश्रम लक्षित हो रहे हैं जिनमें कल्प के साक्षी मुनिगण रहते हैं जो तपस्या तथा स्वाध्याय से ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुके हैं ।]

मालतीमाधव नाटक में महाकवि ने श्मशान के दृश्य का बड़ा ही विशद, वीभत्स, एवं पूर्ण चित्रण किया है । प्रसङ्ग को पढ़ते ही श्मशान का वीभत्स दृश्य सामने उपस्थित हो जाता है । यद्यपि नाटकीय सौन्दर्य की दृष्टि से यह वर्णन बहुत उपादेय नहीं है पर काव्य की दृष्टि और प्रकृतिचित्रण की दृष्टि से यह वर्णन बड़ा ही व्यापक, पूर्ण एवं अनुभूतिमय है । यहाँ एकाध उदाहरणों का उपन्यास किया जा रहा है ।

उत्कृत्योत्कृत्य कृत्तिं प्रथममथ पृथूत्सेधभूयांसि मांसा—
न्यंसस्फिक्पृष्ठपीठाद्यवयवसुलभान्युग्रपूतीनि जग्ध्वा ।
आत्तस्नायवान्त्रनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्कः करङ्का—
दङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यम व्यग्रमत्ति ॥

—मालती० ५।१६

[यह अत्यन्त दीन पिशाच पहले तो शरीर की त्वचा को उखाड़कर अनन्तर लम्बे शरीर होने के कारण कन्धे, कटि, पीठ आदि स्थलों से प्राप्त प्रचुर तथा

तीव्र दुर्गन्धवाले मांसों को खाकर अपने अङ्क में लिये अस्थि के मांस को दाँत खोलकर निश्चिन्तता से खा रहा है ।]

तथा—

निष्टापस्विद्यदस्नः क्वथनपरिगलन्मेदसः प्रेतकायान्
कृष्ट्वा संसक्तधूमानपि कुणपभुजो भूयसीभ्यश्चिताभ्यः ।
उत्पक्वस्रंसिमासं प्रचलदुभयतः संधिनिर्मुक्तमारा—
देते निष्कृष्य जङ्घानलकमुदयिनीर्मज्जधाराः पिबन्ति ॥

—मालतीमाधव ५।१७

[शवभक्षी ये पिशाच प्रचुर चिताओं के ताप से जिनके रुधिर गिर रहे हैं और अच्छी तरह पकाने से जिनकी मेदायें (चरबी) गिर-गिर रही हैं, ऐसे धूम्रव्याप्त शवशरीरों को भी खींचकर उत्कृष्ट पाकयुक्त तथा गिर रहे मांस से सम्बद्ध, तापवश हिलते हुये मूल और अग्रभाग में अस्थि-संयोग-स्थानों से पृथग्भूत जङ्घा के काण्ड को समीप में अग्नि से पृथक् कर निकलती हुई मज्जा की धाराओं को पी रहे हैं ।]

इन उदाहरणों में श्मशान का बड़ा ही वीभत्स वर्णन हुआ है ।

मालतीमाधव में वनप्रदेश का निम्न वर्णन बड़ा ही सुन्दर है ।

वानीरप्रसवैर्निकुञ्जसरितामासक्तवासं पयः
पर्यन्तेषु च यूथिकासुमनसामुज्जृम्भितं जालकैः ।
उन्मीलत्कुटजप्रहासिषु गिरेरालम्ब्य सानूनितः—
प्राग्भागेषु शिखण्डिताण्डवविधौ मेघैर्वितानाय्यते ॥

—९।१५

[लतागृह के निकट की नदियों का जल वेतसपुष्पों से सौरभयुक्त है । नदी-तटों में जूही के फूलों की नयी कलियाँ विकसित हो गयी हैं । यहाँ पर विकसित गिरिमल्लिका पुष्पों से शोभासम्पन्न पर्वतशिखरों पर मयूरों के नर्तन में मेघ वितान का कार्य कर रहे हैं ।]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृतिचित्रण में भवभूति संस्कृत की प्रचलित परम्परा से पृथक् थे । संस्कृत के सभी कवि जिसमें महाकवि कालिदास भी सम्मिलित हैं, प्रकृति के सुकुमार पक्ष के आग्रही थे । वे प्रकृति के कोमल अंगों का भी वर्णन कर सकते हैं पर यह बात नहीं कि उनकी आसक्ति केवल उसी तक सीमित है । प्रकृति के वीभत्स, रौद्र और विषम रूप के वर्णन में अपेक्षाकृत उनकी अधिक रुचि है । भयानक दण्डकारण्य, श्मशान भूमि, पर्वत श्रेणी का वर्णन उन्हें विशेष अभीष्ट है । प्रकृति उनके लिये चेतन है और मानव

भावनाओं के विकास, वृद्धि और उद्दीपन में विशेष योगदान देती है। भवभूति की प्रकृति वर्णना भावोद्दीपन में पीठिका का कार्य करती है। उत्तररामचरित के तृतीय अंक का प्रकृति-वर्णन इसका ज्वलन्त निदर्शक है। बारह वर्षों के दीर्घ काल के अनन्तर दण्डक वन के पूर्वानुभूत विषय वस्तुतः बड़े ही मार्मिक हो उठते हैं। करभ का प्रसंग बारह वर्ष पूर्व को सारी स्मृतियों को जागृत कर देता है। प्रकृति के परिवर्तन को ओर कवि की अन्तर्दृष्टि निहित है, वह समय विपर्यास से प्राकृतिक दृश्यों में विपर्यास को लक्षित करता है :

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्।
बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदम्
निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति॥

—उत्तरामचति, २।२७

[राम पञ्चवटी प्रदेश में शम्बूकवध के निमित्त जाकर पूर्व परिचित प्रदेशों के विषयमें कह रहे हैं: पहले जहाँ नदियों का प्रवाह था वहाँ अब रेतीली भूमि निकल आयी है; वृक्षोंकी सघनता तथा विरलता भी उलट गयी है। बहुत समय के बाद देखे जाने पर यह वन मुझे दूसरे वन-सा लग रहा है, पर पर्वतों का अपरिवर्तित स्थान यह वही वन है इस बुद्धि को दृढ़ कर रहा है।]

करुणरस

कलाप्रियता को करुणा में भी एक विशेष प्रकार का रस वा आनन्द मिलता रहा है। अनादि कालसे लोग दुःख का वर्णन करते तथा सुनते आये हैं। लोगों की मान्यता यहाँ तो तक है कि दुःख के संवेग के अवसर पर ही सर्वोत्तम कृतियों की रचना होती है। 'रसेषु करुणो रसः' एक प्रसिद्ध आभाणक है जिसके अनुसार रसों में प्रमुख रस करुण है। संस्कृत का आद्य काव्य रामायण भी महर्षि वाल्मीकि के शोकमग्न होने पर ही प्रस्फुटित हुआ था। आलङ्कारिक-शिरोमणि आनन्दवर्धन ने रामायण का रस भी करुण ही बताया है :

रामायणे हि करुणो रसः स्वयमादिकविना सूत्रितः 'शोकः श्लोकत्वमागतः' इत्येवं वादिना। निर्व्यूढश्च स एव सीतात्यन्तवियोगपर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता।

—ध्वन्यालोक, ४

आनन्दवर्धन के अनुसार जहाँ मन आर्द्र होता है वहाँ अधिक माधुर्य होता है :

माधुर्यमार्द्रतां याति यतस्तत्राधिकं मनः ॥

—ध्वन्यालोक, २

इस प्रकार करुण रस की स्थापना वाल्मीकि के समय से ही मानी जाती है जिसकी आनन्दवर्धन ने सिद्धि की।[1] किन्तु, महाकवि भवभूति की रस-सम्बन्धिनी धारणा करुण को ही एक मात्र मूल रस मानती है जिससे इतर रसों की उत्पत्ति होती है। उनके विचार से यह रस प्रकृति है, अन्य रस विकृति हैं, विकार हैं। जिस प्रकार जल तो एक है पर विभिन्न दशाओं में वह आवर्त, तरङ्ग, बुदबुद इत्यादि दशाओं को प्राप्त करने पर भी मात्र जल है, अन्य सब तो क्षणिक हैं और अंततः जल ही होंगे उसी प्रकार करुणरस प्रकृति है, अन्य रस उसी की विकृतियाँ है, अंततः करुण में ही उनका पर्यवसान होने वाला है। भवभूति का विचार निम्न उद्धृत पद्य में स्पष्ट है :

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवा श्रयतेविवर्तान्।
आवर्तबुद्बुद्दतरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समग्रम् ॥

—उत्तरराम० ३।४७

[एक ही करुक रस निमित्तों (विभावादिकों) के भेदों से भिन्न होता हुआ पृथक्-पृथक् विवर्तों (परिणामों) का मानों आश्रय लेता है, जैसे कि एक ही जल (वायुक्षोभादि निमित्तों के भेद से) आवर्त, बुद्बुद तथा तरङ्ग रूप विकारों का आश्रय लेता है किन्तु वस्तुतः वह सभी जल ही है।]

इस पद्य पर वीरराघाव की टीका इस प्रकार है :

एक इति। रस्यते स्वाद्यत इति रसः काव्यानुशीलनाभ्यासवशविशदी भूतवर्णनीयतन्मयोभवनयोग्यसामाजिकमनो मुकुरभाव्यमानतया निर्भरानन्दसंविद्रूपः। करुण इष्टजनवियोगजन्यदुःखातिशयः। एक एव सन्नपि निमित्तभेदात् व्यञ्जकविभावादिविच्छित्तिविशेषाद् भिन्नः विलक्षणः। पृथक् पृथग् विवर्तान् परस्परविलक्षणश्रृङ्गाराद्यात्मना परिणामान्। 'व्यस्तेपरिणामः स्याद्विवतः' इति कपिलः। श्रयते भजते

---

१. महाकवि भवभूति ने भी आनन्दवर्धन से पूर्व ही रामायण में करुणरस बताया था—

भगवान् भूतार्थवादी प्राचेतसः.......पावनं वचनामृतं करुणाद्भुतरसं किञ्चिदुपनिबद्धम्।

—उत्तर०, अङ्क ७।

इदमत्र कवेर्मतम्-यद्यपि शृङ्गार एक एव रस इति शृङ्गारप्रकाशकारादि-मतम्, तथापि प्राचुर्याद् रागिविरागिसाधारण्यात् करुण एक एव रसः। अन्य तु तद्विकृतय इति।"

टीकाकार करुण को प्रधान रस बताने के लिये दो तर्क प्रस्तुत करते हैं : १. इसका जीवन में आधिक्य होता है (प्राचुर्याद्) और २. यह रागी और विरागी सभी में होता है (रागिविरागिसाधारण्यात्)।

यद्यपि—मूल पद्य का प्रसंगतः अर्थ उत्तररामचरित के विषय अथवा राम के जीवन प्रसंग से ही अन्वित है जैसा कि वीरराघव कहते हैं :

एक एव सन्नपि निमित्तभेदात् सखित्वपतीत्वपत्नीत्वाद्युपाधिभेदाद् भिन्नः विलक्षण इव पृथक् पृथग् विवर्तान् श्रयते। वासन्तीसीतारामप्रभृतिषु परस्परविलक्षणावस्था विशेषा भजति ॥

इसी प्रसंगागत अर्थ की ओर उत्तररामचरित के दूसरे टीकाकार घनश्याम ने भी निर्देश किया है : अत्र करुणरस एव अन्यरसत्वेनापि परिणत इति फलितोऽर्थः।

लेकिन इस प्रसंगानुकूल अर्थ के अतिरिक्त भवभूति का लक्ष्य करुणरस के प्राधान्य के प्रतिपादन में भी है। यह पद्य उनकी रस-सम्बन्धी धारणा का प्रतीक है और जब हम उनके चूडान्त ग्रन्थ उत्तररामचरित पर ध्यान देते हैं तो इस कथन की प्रामाणिकता स्पष्ट हो जाती है। कविने एक लक्षण दिया जिसके लक्ष्यग्रन्थ ढूंढने के लिये दूर जाने की अपेक्षा नहीं स्वयं उत्तररामचरित ही लक्ष्यग्रन्थ है।

अब विचारणीय बात यह है कि यदि भवभूति ने इस सिद्धान्त की स्थापना की है तो उत्तररामचरित में इसकी सिद्धि कहां तक होती है। उत्तररामचरित के पाठक को यह भलीभाँति विदित है कि इस नाटक में करुण रस ही प्रधान रस है अन्य रस गौण भूत हैं अथवा उनका अन्ततः अन्तर्भाव करुण रस में ही हो जाता है। प्रथम अङ्क चित्रदर्शन है। इस अङ्क का महत्त्व इस नाटक में बहुत अधिक है। एक-एक सूत्र को सिद्धि अन्त तक जाकर होती है। चित्र-दर्शन वाले अंक में गुरुजन नगर से दूर चले गये हैं। गुरुजनों का आशीर्वाद लेकर अष्टावक्र ऋषि आते हैं और राम उनसे प्रतिज्ञा करते हैं कि लोकाराधन के लिये वे सीता का भी त्याग कर सकते हैं। इसी प्रतिज्ञा के कुछ हीं समय बाद लोकनिन्दा की बात सुनायी पड़ती है। चित्रदर्शन के अवसर पर जो संयोग श्रृंगार, हास्य इत्यादि की धारणा थी वह सद्यः विषाद में परिणत हो जाती है। वह विषाद, दुःख और करुणा भी एकान्तिक नहीं—सारे नाटक में व्याप्त है। इस नाटक के सभी प्रधान पात्र—राम, लक्ष्मण, जनक कौसल्या

आदि इस दुःख से दुःखी हैं। वनदेवता भी इस करुणा-सागर में निमज्जन कर रहे हैं। प्रत्येक पात्र के मुख से विषाद और करुणा टपकती है। जब राम पञ्चवटी में जाते हैं तो उनकी स्मृतियाँ जागृत हो उठती हैं, वे शोक से संतप्त हो उठते हैं। उनकी दशा देखिये :

चिराद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः
कुतश्चित्संवेगात्प्रचल इव शल्यस्य शकलः।
व्रणो रुढग्रंथिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः
घनीभूतः शोको विकलयति मां मूर्च्छयति च॥

—उत्तर० २।२६

[यह प्रगाढ़ शोक, जो देर से आरम्भ होने वाले और तीव्र विष के समान है, किसी हेतु से हिले हुये शल्य के टुकड़े के समान है तथा बद्धमूल एवं फूटे हुये फोड़े के समान है, मुझे विकल कर रहा है और मूर्च्छित कर रहा है।]

राम का शोक चरम सीमा तक पहुँच जाता है और वे विलाप कर बार-बार मूर्च्छित हो जाते है। उनके विलाप का यह उदाहरण देखिये :

हा हा देवि स्फुटति हृदयं स्रंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ् मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि॥

[हे देवि ! हा ! हा ! हृदय फट रहा है, देह का बन्धन ढ़ीला पड़ रहा है, संसार सूना दिखाई पड़ रहा है, सतत ज्वाला से अन्तःकरण जल रहा है, विषाद करता हुआ दुःखी अन्तरात्मा अन्धतमम् में डूब रहा है, चतुर्दिक् मोह छा रहा है, मैं मन्दभागी क्या करूँ ?][1]

इस प्रकार जब हम उत्तररामचरित के कथानक की ओर ध्यान देते हैं तो उसमें करुणरस का प्राधान्य लक्षित होता है। महाकवि ने ऐसा उदात्त चरित्र का इसमें चित्रण किया है कि उसकी करुणा में दर्शक की रागात्मिका वृत्ति का तादात्म्य सदैव बना रहता है। इसकी करुणा एक स्थायी छाप छोड़ती है जिसमें कवि, पात्र, दर्शक, वाचक और श्रोता सभी समभावेन निमग्न हो जाते हैं। यह कविका परम साफल्य है। महाकवि ने बनवास के समय श्रीरामचन्द्र के चरित्र को देखकर पत्थर का भी रोना बताया है—

---

१. यह श्लोक किञ्चित् परिवर्तन के साथ मालतीमाधव (९।२०) में भी आया है।

जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै--
रपि ग्रावा रोदित्यपिदलति वज्रस्य हृदयम् ॥

—उत्तर० १।२८

वस्तुतः इस नाटककी करुणा का यही रहस्य है। सचेतनों को कौन कहे अचेतन भी रो देंगे।

उत्तररामचचिरित के अतिरिक्त भी भवभूति को अन्यत्र जहाँ अवकाश मिला है वहाँ करुण रस के वर्णन में उनकी प्रवृत्ति रम गयी है। मालतीमाधव में स्थल-स्थल पर विलापों की शृंखला दिखायी पड़ती है। कहीं माधव विलाप कर रहा है, तो कहीं मकरन्द और कहीं सौदामिनी बिलख रही हैं।

नाट्यकला

भवभूति के नाटकों को नाटचकला से समीक्षा करने पर वे उन्नतकोटि के ठहरते हैं। नाटचकला के अन्तर्गत नाटक के सभी तत्त्व आ जाते है, यथा, कथानक, पात्र, अन्वितियाँ, कथोपकथन इत्यादि। जहाँ तक कथानक का प्रश्न है भवभूति का क्षेत्र सीमित है--दो नाटकों की कथावस्तु श्रीरामचन्द्र के प्रथित आख्यान से सम्वद्ध है और मालतीमाधव की प्रणयकथा लोकवृत्त पर आधारित है।[1] दो रामचरित पर आधृत नाटकों की कथावस्तु के विन्यास में भवभूति को प्रचलित परम्परा का पालन आवश्यक था। परम्परा के पालन के साथ-साथ भवभूति ने उचित मौलिकता का भी सन्निवेश किया-है। किसी विद्वान् के अनुसार भवभूति का उद्देश्य रामकथा का वर्णन न हो कर उसकी व्याख्या है। इस दृष्टि से उनके परिवर्तन सोद्देश्य ठहरते हैं। महावीरचरित में विश्वामित्र के आश्रम से रावण के दूत का आगमन और सीता, राम लक्ष्मण, उर्मिला आदि के प्रसंग आरम्भ हो जाते हैं। परशुराम को भी माल्यवान् उकसाता है। ये सभी घटानायें भवभूति की मौलिक सूझ हैं। राम के वनवास में कैकेयी भी निमित्त नहीं है। उत्तररामचरित में अन्त में सीता राम का मिलन भी नवीनोद्भावना ही है। इसका उद्देश्य नाटक को सुखान्त बनाना है। कथावस्तु की दृष्टि से भवभूति के नाटकों में कुछ दोष भी हैं। मुख्यदोष यह है कि कथावस्तु इस प्रकार की है कि, अन्वितियों का निर्वाह सम्यक् रूप से नहीं हो पाया हैं। महावीरचरित और उत्तररामचरित दोनों विस्तृत काल से सम्वद्ध हैं। मालतीमाधव का समय इस दृष्टि से सीमित

---

१. इन नाटकों कथानकों के विस्तृत विवेचन के लिये तत्तद् नाटकों के विवेचन प्रसङ्ग में दिये कथानकों के विमर्श को देखिये।

हैं। स्थान की अन्विति किसी भी नाटक में ठीक नहीं उतरी है। वीरचरित में पूरे भारत में यह व्याप्त है। आकाश से भी सम्बन्ध है। उत्तररामचरित में भी क्षेत्र व्यापक है और मालतीमाधव की स्थिति भी यही है। किन्तु यदि समग्र रूप से विचार किया जाय तो भवभूति के नाटक प्रशस्त हैं। मर्यादा का निर्वाह करते हुये भी उनमें पर्याप्त नवीनता है तथा मनोभावना को वे प्रभावित करते हैं।

भवभूति के नाटकों के पात्र भी बड़ी कुशलता से निर्मित हैं। पात्रों के प्रकार भी बहुत से हैं। अत्यन्त क्रोधी, अत्यन्त शान्त, कापालिक, बौद्ध, भिक्षुणी इत्यादि बहुत प्रकार के पात्र इन नाटकों में हैं। नाटक की मुख्य शक्ति उसके पात्रों पर निहित रहती है। पात्रों के चरित्राङ्कन में भवभूति ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। महावीरचरित के प्रमुख पात्र हैं, राम–परशुराम और माल्यवान् हैं। सीता लक्ष्मण, दशरथ, विश्वामित्र, वसिष्ठ और सतानन्द का भी अपना विशेष स्थान हैं। ये पात्र अपने व्यवहारों से इतने स्पष्ट चित्रित किये गये हैं कि वे एक-एक वर्ग के प्रतीक बन गये हैं। माल्यवान् की कुशाग्रबुद्धि सभी आगामी अपायों का चिन्तन करती है। और उनके प्रतीकार को भी ढूंढ निकालती है भले ही वे प्रतीकार असफल रहते हैं। परशुराम का रौद्र रूप तथा उद्धत व्यवहार भी अपना वैशिष्ट्य रखता है। मालती-माधव में मुख्य पात्र मालती तथा माधव हैं जिनकी रोमाञ्चक प्रणयकथा कही गयी है। इन्हीं की प्रणयकथा तथा कामन्दकी के बुद्धिवैभव पर सारी घटनायें घटित हो रही हैं। मकरन्द, मदयन्तिका, लवङ्गिका और बुद्धरक्षिता का भी अपना विशेष महत्त्व है। माधव और मालती, परस्पर एक दूसरे के प्रेम में पागल हैं, भावलोक में विचर रहे हैं। वे दोनों अत्यन्त भावुक हैं और प्रणय के लिये विपत्तियों को भी झेलते हैं। मकरन्द आदर्श मित्र है जो मित्र के अभाव में जीवित रहना भी अभीष्ट नहीं मानता और प्राण-त्याग को उद्यत होता है। कपालकुण्डला और अघोरघण्ट का रूप और कार्य चित्रित करने में भी कवि ने पर्याप्त सफलता पायी है।

उत्तररामचरित के मुख्य पात्र राम, सीता, वासन्ती, जनक, तमसा, कौसल्या, लव-कुश, चन्द्रकेतु आदि हैं। इस नाटक के प्रणयन के समय नाटककार की प्रौढ़ि चरमावस्था तक पहुँच गयी थी। इस नाटक के सभी पात्र चाहे उस नाटक में उनका महत्त्व कितना भी छोटा क्यों न हो अपने रूप में पूर्ण हैं। श्री राम—महान् कर्मनिष्ठ, लोकरञ्जक तथा कर्त्तव्यपरायण होने के साथ ही आदर्श प्रणयी भी हैं। एक ओर लोकाराधन के लिये सीता का त्याग करने से भी वे विरत नहीं होते तो दूसरी ओर आदर्श धर्मपत्नी का त्याग कर वे पुटपाक की भाँति भीतर ही भीतर जलने भी लगते हैं। भवभूति के पात्र गम्भीरता की

प्रतिमूर्ति हैं। उनके पात्रों में किसी प्रकार की उच्छृंखलता नहीं, चुहल नहीं। भवभूति के नाटकों में विदूषकों का सर्वथा अभाव है। भवभूति के नाटकों में पात्रों के उतने प्रकार भी उपलब्ध नहीं होते जितने भास के नाटकों में।[१]

भवभूति के सभी नाटकों के पात्र सामान्यतः एक ही धरातल पर हैं। कोई करुणा में डूबा है तो कोई वीर में तो कोई विलाप ही कर रहा है। यद्यपि उनके पात्रों में बहुत ही मौलिकता है, बहुत ही भावुकता है, पर मृच्छकटिक जैसे जीवट के पात्रों का अभाव खलता है।[२] भवभूति ने प्रथित नायकों की चारित्रिक त्रुटियों में परिमार्जन का भी यथासाध्य प्रयास किया है।

भवभूति के संवादों का भी अपना विशेष महत्त्व है। भवभूति के पात्र प्रायेण भावुक होते हैं अतः अपने भावों को वे खुलकर व्यक्त करते हैं। लघु-विस्तार के लिये यहाँ अवकाश नहीं। चाहे वार्तालाप हो या कोई दृश्य-वर्णन यह बहुत दूर तक चलता है और कहीं-कहीं सीमा का अतिक्रमण भी कर जाता है, नाटक में एक प्रकार की गतिहीनता को उत्पन्न करता है। महावीरचरित में परशुराम के क्रोध का प्रसङ्ग ले लीजिये। नाटककार बारी-बारी से सभी व्यक्तियों के साथ उनका विवाद दर्शाता है। खुलकर वाक्कलह होता है। दीर्घविस्तारी संवाद नाटकीय गतिशीलता की दृष्टि से चाहे जो हों पर हृदयावर्जक अवश्य हैं। इन संवादों में वाक्य भी प्रायः लम्बे-लम्बे होते हैं। मालतीमाधव के प्राकृत भाषा में हुये दीर्घविस्तारी संवाद आलोचकों को बहुत खले हैं। वस्तुतः प्राकृतभाषा के गद्य में निबद्ध यह संवाद वैरस्यजनक है।

भवभूति के नाटकों की भाषा के विषय में पहले संकेत किया जा चुका है। भवभूति भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् हैं; वश्यवाक्-कवि हैं। जैसे भाव का चित्रण करना है, भाषा उसी के अनुरूप होती है। भाषा की सरलता के विषय में उनका कोई आग्रह नहीं। क्लिष्ट, श्लिष्ट तथा समस्त भाषा का प्रयोग भवभूति में बहुलता से मिलता है। प्राकृत सभी नाटकों में एक ही प्रकार की है—शौरशेनी प्राकृत और प्राकृत में पद्यों का अभाव है। यद्यपि भवभूति सरलता के पक्षपाती नहीं पर उनकी भाषा ऐसी कहीं भी नहीं होने पायी है जो विषय और भाव के विपरीत हो, अपितु वह सदैव विषय और भावकी व्यञ्जना में समर्थ है।

भवभूति के नाटक रस-निष्पत्ति की दृष्टि से बेजोड़ है। भवभूति रस के

---

१. भास के नाटकों में पात्रों के विवेचन के लिये द्रष्टव्य, पं० बलदेव उपाध्याय, महाकवि भास।

२. पात्रों का विशद विवेचन तत्तद् नाटकों के प्रसङ्ग में देखिये।

आचार्य हैं। रस में दर्शक, सराबोर हो जाते हैं। यद्यपि उनके नाटकों में सभी रसों का वर्णन है पर करुण, शृंगार, वीभत्स और रौद्र की वर्णना में महाकवि ने सारी शक्ति केन्द्रित कर दी है। इन रसों का वर्णन तथा भावों की गम्भीरता से वर्णना भवभूति के नाटकों में अप्रितिम हैं। महावीरचरित में वीररस की वर्णना भी सफलता से की गई है। भवभूति की समर्थभाषा ने रसों की बड़ी ही सफलता से निष्पत्ति करायी है।[1] मालतीमाधव में शृंगार की विभिन्न भावदशाओं का बड़ी सूक्ष्मता से वर्णन कराया गया है, विशेषरूप से विप्रलम्भ का नवम अङ्क मे वर्णन उल्लेखनीय है। पञ्चम अङ्क में रौद्र और वीभत्स के वर्णन भी महाकवि की प्रौढि के परिचायक हैं। भवभूति को हास्य रस से कोई विशेष आसक्ति नहीं। वे गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे अतः हास्य में उन्हें कोई आनन्द नहीं दिखाई पड़ा। उनके नाटकों में विदूषकों का अभाव इसी का निदर्शक है। हास्य का अभाव होने पर भी व्यंग्य की कमी नहीं हैं। व्यंग्य के प्रसङ्ग सरलता से ढूँढे जा सकते हैं।

नाटक में अन्वितियों का प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है—समय, स्थान तथा कथानक की अन्वितियाँ। नाटक की घटना का समय उतने ही समय से सम्बद्ध होना चाहिये जितने समय में नाटक प्रदर्शित किया जा सके या अधिक से अधिक एक दिनका समय हो। दूसरी अन्विति स्थान की। घटना का सम्बन्ध उतने ही स्थान से होना चाहिये जितना उस सीमित समय के अन्तर्गत सम्भव हो। कथानक के विस्तार तथा विन्यास में गति होनी चाहिये। यो तो संस्कृत के प्रायेण किसी भी नाटक में इन अन्वितियों पर ध्यान नहीं दिया गया है। काल की दृष्टि में उत्तररामचरित बारह वर्षों के दीर्घ समय से सम्बद्ध है, महावीर-चरित का कथानक राम के सम्पूर्ण पूर्व चरित्र (विवाह, वनवास, रावण-वध, राज्याभिषेक) से सम्बद्ध है। मालतीमाधव का कथानक अपेक्षाकृत कम समय से सम्बद्ध है। स्थान की अन्विति पर भवभूति के किसी भी नाटक में ध्यान नहीं दिया गया है। वीरचरित अयोध्या, मिथिला और समुद्र पार लंका तक व्याप्त है। उत्तरचरित का कथानक अयोध्या के राजप्रासाद, जनस्थान दण्डकारण्य और वाल्मीकि के आश्रम तक फैला है। कार्य की सत्वरता में भी स्थान-स्थान पर

---

१. इस विषय में Wilson महोदय की उक्ति देखिये। कालिदास और भवभूति की तुलना करते हुये वे कहते हैं—"The former **Suggets** or indicates the sentiment while the latter **expresses** in forcible language"—डा. भण्डारकर द्वारा उद्धृत, मालतीमाधव प्रस्तावना, पृ. १२

विशेष बाधा पड़ी है। उदाहरणार्थ उत्तररामचरित के तृतीय अङ्क के विषय को लीजिये। काव्य और रसपरिपाक-दृष्ट्या यह अङ्क बड़ा ही महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावशाली है पर नाटकीय गति में कोई सहायता नहीं मिलती, इसके विपरीत नाटक के कथानक में मन्थरता आ जाती हैं। कथानक वहीं का वहीं पड़ा रहता है और दर्शक रोने-गाने लगता है। आगे जाने पर जब मुख्य कथासूत्र से सम्बन्ध होता है तो उसकी रसमग्न चित्त-वृत्ति को झटका लगता है। इस प्रकार अन्विति-त्रय का भवभूति के नाटकों में पालन नहीं हुआ है।

भवभूति ने नाटकों में प्रकृति के दृश्यों का भी चित्रण किया है। पर यह नाटक को सजाने की दृष्टि से नहीं, अपितु ये प्राकृतिक दृश्य प्रकृत रस को उद्‌बुद्ध करने में सहायक हैं। भवभूति को प्रकृति की सुकुमारता से प्रेम नहीं। कवि धीर-गंभीर विषय और भयावह प्राकृतिक दृश्यों को उपस्थित करने में विशेष कुशलता दिखाता है।

नाटक के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण बात है उसकी अभिनेयता। नाटक की सबसे बड़ी सफलता उसका अभिनेय होना है। यह श्रव्य नहीं, अपितु दृश्यकाव्य है। भवभूति के सभी नाटकों का उनके जीवन-काल में ही अभिनय हो चुका था। उनके नाटकों का प्रथम प्रदर्शन कालप्रियानाथ के मंदिर में हुआ था। सम्भावना है कि महावीरचरित देखने के बाद लोगों पर अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने अपनी विपरीत प्रतिक्रिया प्रकट की। भवभूति के आत्मसम्मान को इससे ठेस लगी और उन्होंने **'ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञाम्'** के द्वारा अपने दृढ़ आत्मविश्वास को प्रकट किया। सम्प्रति यह कहा जा सकता है त्रुटियों के होने पर भी संस्कृत सामाजिकों के सम्मुख भवभूति के नाटकों का अभिनय बड़ी सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है।

भवभूति की दृष्टि में प्रेम

महाकवि भवभूति की प्रेम की धारणा बड़ी प्रधान है। उनका प्रेम आदर्श है। प्रेम से उनका आशय उस सम्बन्ध से है जो दो हृदयों को स्नेह-सूत्र में बाँध दे। उनका प्रेम विश्वजनीन है, जिसमें कोई कलुष नहीं, कोई दुराव नहीं। प्रेम उनकी दृष्टि में अनिर्वचनीय वस्तु है, अविनाशी है। प्रेम की उत्पत्ति सांसारिक कारणों से नहीं होती। यह पूर्वजन्मों के दृढ़ सम्बन्धों की प्रतीति है। यह दो हृदयों का पारस्परिक आकर्षण है। उनकी धारणा देखिये—

भूयसा जीविधर्म एष यद्रसमयी कस्यचित्क्वचित् प्रीतिः। यत्र लौकिकानामुपचारस्तारामैत्रकं चक्षूराग इति। तमतिप्रतिसंख्येयमनिबन्धनं प्रेमाणमामनन्ति।

अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया ।
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति ॥
—उत्तर रा० ५।१७

[सुमन्त कह रहे हैं—प्रायेण यह प्राणियों का धर्म है कि किसी का किसी में रसमय प्रेम हो जाता है । इसमें लोगों का व्यवहार 'तारामैत्रक' (तारा = आँख की पुतलियाँ) चक्षूराग होता है । उस प्रकार के प्रेम को अनिर्वचनीय तथा अहेतुक मानते हैं । जो अहेतुक प्रेम है उसका प्रतीकार (दूर करने का उपाय) नहीं है । वह प्रेमात्मक सूत्र प्राणियों के आत्मा को सी देता है ।]

अन्यत्र वे लिखते हैं—

अथवा स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्ष इति विप्रतिसिद्धमेतत्—
व्यतिजषति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥
—उत्तरराम० ६।१२ ; महावीरच० १।२५

[स्नेह हो और हेतु की अपेक्षा रखे यह विरुद्ध है अर्थात् स्नेह में हेतु नहीं होता ; प्रेम अकारण होता है । पदार्थों को कोई आन्तरिक कारण परस्पर मिलता है, प्रेम बाह्य निमित्तों का आश्रय नहीं लेता—बाह्य कारणों से प्रेम नहीं होता । सूर्य के उदित होने पर कमल खिल जाता है और चन्द्रमा के उदित होने पर चन्द्रकान्तमणि द्रवित होने लगती है—इनके विकसित होने तथा द्रवीभूत होने का कोई बाह्य कारण नहीं । आन्तरिक अलौकिक स्नेह से ही वे उस प्रकार हो जाते हैं ।]

प्रेम के विषय में इसी प्रकार की उक्ति भागीरथी पृथ्वी से कहती है—

यद्वा सर्वसाधारणो ह्येष मानसो मोहग्रन्थिश्चेतनावतामुपप्लवः संसारतन्तुः ।—उत्तर० ७।३ के बाद

[अथवा चेतन प्राणियों में यह व्यापक मानसिक ममतापाश सर्वसाधारण है, यह संसार का (संयोजक) सूत्र है ।]

भवभूति ने अपने नाटकों में प्रेम की वर्णना बड़ी ही उत्कृष्ट की है । पात्रों का प्रेम अत्यन्त उन्नत कोटि का है । कहीं न तो स्वार्थ है न द्वेष, अलौकिक स्नेह की धारा सर्वत्र प्रवाहित है । पति-पत्नी का प्रेम भवभूति ने जिस पराकाष्ठा को पहुँचाया है वह अन्यत्र दुर्लभ है । सीता-राम का प्रेम आदर्श पति-पत्नी का प्रेम है, मालती-माधव का प्रेम आदर्श प्रेमी-प्रेमिका प्रेम है, मकरन्द का प्रेम

आदर्श मित्र का प्रेम है, चन्द्रकेतु और लव का प्रेम दोनों की सदाशयता का द्योतक है। राम का लव-कुश के प्रति प्रेम, जनक का सीता के लिये प्रेम, पृथ्वी का सीता के प्रति स्नेह--ये सभी प्रेम आदर्श कोटि के प्रेम हैं।

पति-पत्नी का प्रेम भवभूति ने बड़ी विशदता के साथ अंकित किया है। यहाँ परस्पर हृदय मिल जाते हैं, सारे दुराव छिप जाते हैं। दाम्पत्य की प्रेमावस्था का सूचक यह पद्य बड़ा ही मनोरम है--

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते॥

--उत्तर० १।३९

[वह दाम्पत्य प्रणय सुख तथा दुःख में एक-सा रहता है, सम्पत्ति-विपत्तिरूप सभी दशाओं में अनुगत (अनुकूल) रहता है, जिसमें हृदय का विश्राम होता है, जिसमें वृद्धावस्था से रस की कमी नहीं होती, समय बीतने से लज्जा, संकोचादि आवरणों के नष्ट होने से जो स्नेह के सार अर्थात् प्रगाढ़ प्रेम के रूप में स्थित हो जाता है। ऐसा सुमानुष पुरुष का विलक्षण प्रेम किसी प्रकार से अर्थात् बड़े सौभाग्य से प्राप्त होता है।]

वस्तुतः दाम्पत्य प्रेम का जितना उज्ज्वल-उत्कृष्ट चित्रण भवभूति ने किया है उतना किसी अन्य संस्कृत-कवि ने नहीं किया है। सांसारिक वासना की गन्ध इस सुमानुष प्रेम में कहाँ दिखाई पड़ सकती है। मांसल प्रेम का संस्कृत के बहुत से कवियों ने वर्णन किया है और इस से कविशिरोमणि कालिदास भी मुक्त नहीं पर भवभूति के काव्य में मांसल प्रेम भी सूक्ष्म स्नेहरस में परिणत हो जाता हैं। सीता-राम के दाम्पत्य प्रेम का वर्णन महाकवि ने जिस परिष्कार तथा अभिनिवेश के साथ किया है वह उनकी कला का उत्कृष्ट परिपाक है। सीता के सो जाने पर राम का यह वचन देखिये—

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः॥

--उत्तर० १।३८

[यह सीता घर में लक्ष्मी है, नेत्रों में अमृत की अञ्जनशलाका है, इसका यह स्पर्श शरीर में गाढ़ा चन्दन रस है इसकी यह भुजा कण्ठ में शीतल-कोमल

मुक्ताहार है, इसका क्या नहीं प्रिय है, यदि कोई वस्तु परम असह्य है तो इसका विरह ।]

सीता के प्रत्येक वचन राम के लिए आह्लादकारी एवं जीवनदायक हैं :

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
संतर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि ।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ॥

—उ० रा०, १।३६

[हे कमलनयने । ये तेरे मधुरवचन म्लान जीवन-कुसुम को विकसित करने वाले हैं, तृप्त करने वाले हैं, सकलेन्द्रियों को मुग्ध करने वाले हैं, कानों के लिये अमृत हैं तथा मन के रसायन हैं ।]

भवभूति ने प्रेम के बहुविधरूपों का चित्रण किया है । मालतीमाधव में विवाह के पूर्ववर्ती प्रेम का वर्णन है, उत्तररामचरित में विवाह के बाद का । वियोग में प्रेम का चित्रण करने में भवभूति को विशेष आनन्द मिलता है। महाकवि कालिदास ने कहा था कि वियोग में प्रेम सञ्चित होकर और घना हो जाता है—

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंशिनस्ते त्वभोगा—
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशी भवन्ति ॥—मेघ०

उस प्रेमराशि का प्रत्यक्ष निदर्शन है उत्तररामचरित ! सीता और राम के वियोग में प्रेम और घना हो जाता है । राम के वियोग को देखकर सीता का सारा विक्षोभ नष्ट हो जाता है । उन्हें वासन्ती का राम के प्रति उपालम्भ भी नहीं रुचता । उधर राम की वियोग में जो दशा होती है वह निराली ही है । पुटपाक की नाईं भीतर ही भीतर वे जल रहे हैं, भले ही स्वभावगाम्भीर्य से उनका यह अन्तर्दाह किसी को न दिखाई पड़े—**पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ।**

भवभूति प्रेम की नाना कोटियों का प्रदर्शन करते है । प्रथम दर्शन में जो दो प्राणियों में चक्षूराग प्रेम होता है उसका किस-किस प्रकार विकास होता है, किन-किन परिस्थितियों में वह कैसा रूप धारण करता है और अन्ततः अद्वैतावस्था को प्राप्त हो जाता है यह भवभूक्ति की कमनीय कृतियों में लक्षित होता है । भवभूति गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति हैं, हलकापन का किसी भी क्षेत्र में आभास नहीं मिलता । यही अवस्था प्रेम के क्षेत्र में भी है । सभी उन्नत कोटि के प्रेमी हैं और एक दूसरे के सुख-दुःख में संपत्ति-विपत्ति में अनुकूल, एक हैं ।

प्रणय-कलह से इस प्रेम में कोई अन्तराल नहीं पड़ता। सन्तान प्रेम की ग्रंथि को जोड़ता है। प्रेम के प्रथम प्रभाव का वर्णन करते हुये भवभूति कहते हैं—
इतरेतरानुरागो हि दारकर्मणि पराध्यं मङ्गलम्, गीतश्चायमर्थोऽङ्गिरसा यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिरिति—मालतीमाधव, २।

प्रथमदर्शन का ही वहाँ अन्यत्र वर्णन भी उपलब्ध होता है—**सा पुनर्मम प्रथमदर्शनात्प्रभृत्यमृतवर्तिरिव चक्षुषोर्निरतिशयमानन्दमुत्पादयन्त्ययस्कान्तमणि-शलाकेव लोहधातुमन्तःकरणमाकृष्टवती सर्वथा**—मालतीमाधव।

यह चक्षूराग प्रेम को पराकाष्टा को प्राप्त हो जाता है और मालती नन्दन से विवाहे जाने पर प्राणत्याग की आकांक्षा प्रकट करती है। पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध की महत्ता का पता मालतीमाधव के निम्न पद्य से भलीभांति लग सकता है—

प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा
सर्वे कामाः शेवधिर्जीवितं वा।
स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसा—
मित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु॥ —मालतीमा०

[कामन्दकी मालती और माधव को उपदेश देते हुये कह रही है कि स्त्रियों के लिये पति तथा पतियों के लिए धर्मपत्नियाँ परस्पर प्रिय मित्र, सारी बन्धुता, समस्त काम, धन और जीवन हैं—इसे तुमलोग जानो।]

इसी प्रकार के प्रोत्कृष्ट प्रेम के प्रतीक हैं राम-सीता। उनका प्रेम संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं में समान रहता है, यहाँ कायिक संबन्ध अपना महत्त्व खो बैठता है। उनका प्रेम शुद्ध भावजगत् की वस्तु बन जाता है; मास-लता का आभास तक नहीं रहता। इसी प्रेम की भवभूति ने कामना की—
भद्रं तस्य सुभानषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते।

स्त्री-पुरुष के प्रणय के अतिरिक्त मित्रों के स्नेह का भी भवभूति ने उसी उदात्त रूप में चित्रण किया है। मकरन्द का माधव के प्रति प्रेम इसी उच्चकोटि का है। माधव की विपत्ति में वह प्राणत्याग करने को उद्यत हो जाता है।

प्रियस्य सुहृदो यत्र मम तत्रैव संभवः।
भूयादमुष्य भूयोऽपि भूयासमनुसञ्चरः॥ —मालती० ९।४१

[प्रियमित्र माधव का जहाँ जन्म हो वहीं मेरा भी जन्म हो। मैं अगले जन्म में पुनः अनुगामी होऊँ।]

मित्रता का आदर्श भी बड़े ही प्रशस्त शब्दों में प्रतिपादित किया है—

प्राणैरपि हिता वृत्तिरद्रोहो व्याजवर्जनम्।
आत्मनीव प्रियाधानमेतन्मैत्रीमहाव्रतम्॥ —महा० ५।५६

माता-पिता का सन्तान के प्रति सम्बन्ध भी इसी प्रकार ऊँचा बताया गया हैं। संक्षेप में भवभूति ने जितने प्रकार के स्नेह सम्बन्ध हैं उनका बड़ा उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया है और प्रेम के विषय में अपनी प्रशस्त स्थापना भी प्रस्तुत की है। रामायणीय श्लोक जो भवभूति ने कुश के मुख से कहलवाया है वस्तुतः वही भवभूति के प्रेम का आदर्श है।

हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्। —उत्तर० ६।३२

हृदय ही परस्पर के प्रेमसम्बन्ध को जानता है, वह कहने की वस्तु नहीं, अनिर्वचनीय है। ऐसा ही तो प्रेमी सामने रहने मात्र से प्रिय को आनन्द देता है। कितनी अनोखी सूझ है। कवि ने मनोविज्ञान का मर्मोद्घाटन कर दिया है--

न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः॥

[जो जिसका प्रेम-पात्र है वह कुछ न करता हुआ भी मात्र सुख से दुःखों को दूर करता है क्यों कि जो जिसका प्रिय व्यक्ति है वह उसका अनिर्वचनीय द्रव्य है।]

धन्य है प्रेम की ऐसी कमनीय तथा उदात्त धारणा।

मित्रता का आदर्श

भवभूति ने मित्रता का आदर्श बहुत ऊंचा प्रस्तुत किया है। मित्र का आदर्शरूप उन्होंने मकरन्द और माधव की मित्रता में चित्रित किया है। जिसके साथ मैत्री हुई उसके लिये प्राणों का भी कोई महत्त्व नहीं है, उसके लिये सर्वस्व न्यौछावर है। महावीरचरित में भवभूति ने मैत्री का मूल मंत्र-प्रस्तुत किया है। इस एक ही पद्य में मैत्री की पूर्ण परिभाषा प्राप्त हो जाती है:

प्राणैरपि हिता वृत्तिरद्रोहो व्याजवर्जनम्।
आत्मनीव प्रियाधानमेतन्मैत्रीमहाव्रतम्॥—महा० ५।५९

[प्राणदेकर भी हितसाधन का व्यवहार (वृत्ति), अद्रोह, कपटत्याग, अपनी ही भाँति प्रियकरना—यही महान् मैत्री व्रत है।]

मकरन्द और माधव इसी प्रकार के मित्र हैं, कामन्दकी भूरिवसु की इसी प्रकार हितकारणी है, विभिन्न सखियाँ अपनी सखियों का हितसाधन इसी आदर्श को अग्रसर करके करती हैं। मित्रों का प्रेम भवभूति के नाटकों में अत्यन्त गम्भीर, वास्तविक तथा हृदयों को मिलाने वाला है। कहीं कपट-दुराव नहीं है। मकरन्द की मैत्री छोटी उम्र से ही चली आ रही है। माधव की मालती के वियोग में विपन्नावस्था को देखकर वह कहता है:

आजन्मनः सह निवासितया मयैव
मातुः पयोधरपयोऽपि समं निपीय ।
त्वं पुण्डरीकमुख बन्धुतया निरस्त-
मेको निवापसलिलं पिबसीत्ययुक्तम् ॥—९।४०

लड़कपन का मित्र अकेले मरे यह उसे बर्दाश्त नहीं।[1] पति-पत्नी भी मूलतः मित्र ही हैं जिनको भवभूति 'प्रेयो मित्रं' कहते है। भवभूति के सभी नाटकों में मित्रता का आदर्श उदात्त रूप में अङ्कित हुआ है।

सन्तान के सम्बन्ध में धारणा

सन्तान पिता-माता के पररस्परिक स्नेहसूत्र को जोड़नेवाला है। सन्तान होने के बाद पति-पत्नी का पारस्परिक स्नेह और दृढ़तर हो जाता है। उनका पारस्परिक प्रेम स्थायी हो जाता है। सन्तानरूपी गांठ भी स्वतः आनन्ददायक है :

अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात् ।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति बध्यते ॥

—उत्तरराम० ३।१७

[स्नेह्का आश्रय होने से दम्पती के अन्तःकरणरूप तत्त्व का 'अपत्य' इस प्रकार का यह अद्वितीय आनन्द ग्रन्थि बाँधी जाती है।]

अपत्य की जो व्याख्या भवभूति ने उपस्थित की उसका उदाहरण भी बड़ा ही सटीक दिया है। लव को देखकर राम के हृदय में जो स्नेहसागर उमड़ा वह उसी प्रकार का स्नेह है :

अङ्गादङ्गात्सृत इव निजस्नेहजो देहसारः
प्रादुर्भूय स्थित इव बहिश्चेतनाधातुरेकः ।
सान्द्रानन्दक्षमितहृदयप्रस्नवेनैव सृष्टो
गात्रं श्लेषे यदमृतरसस्रोतसा सिञ्चतीव ॥

--उत्तर० ६।२२

[यह अङ्ग-अङ्ग से च्युत हुये स्नेह से उद्भूत मेरे शरीर का उत्कृष्ट अंश है, मानो मेरी चेतना-धातु ही प्रादुभूति होकर सामने खड़ी है, मानो प्रगाढ आनन्द से क्षुभित मेरे हृदय की धारा से निर्मित हुआ है क्योंकि आलिङ्गन के समय यह शरीर में अमृतधारा की भाँति सिञ्चन कर रहा है।]

वस्तुतः अपत्य-स्नेह ऐसा ही होता है। कुछ जन्मान्तर संस्कार-वश ही यह स्नेह गुप्त स्थानों पर भी प्रकट होता है। पुत्र की ऐसी धारणा बड़ी ही मनोरम है।

---

१. लरिकाई को प्रीति कहो अलि छूटे कैसी।—सूरदास

वैवाहिक जीवन का आदर्श

भवभूति ने पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध का आदर्श भी बड़ा समुन्नत प्रस्तुत किया है। भवभूति का यह आदर्श नीति, धर्म और व्यवहार का मूल मंत्र है। उनके पारस्परिक सम्बन्ध का आदर्श देखिये--

प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा
सर्वे कामा शेवधिर्जीवितं वा।
स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसा-
मित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु ॥

—मालतीमाधव ६।१८

पति-पत्नीका यह पारस्परिक सम्बन्ध भवभूति ने सर्वत्र चित्रित किया है—चाहे वह सीता-राम का प्रेम हो या मालती और माधव का। स्त्री-पुरुष दोनों का सुख-दुःख एक हो गया है, उनमें किसी प्रकार का पार्थक्य नहीं रह गया है। दोनों का अन्तःकरण परस्पर सी दिया गया है। ऐसे पति-पत्नी के आदर्श सम्बन्ध का निदर्शक ही तो यह पद्य है :

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यद्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं तत्प्राप्यते ॥

—उत्तर० १।३९

स्त्री और पुरुष परस्पर धर्म और कर्म के सहायक हैं। सभी अभिलाषायें दोनों की एक दूसरे में निहित हैं।

मधुरवाणी का महत्त्व

सुन्दर वाणी सभी मंगलों का मूल है और वह हितसम्पादन करती है। वह कामधेनु है। महाकवि ने लव के मुख से मधुरवाणी की प्रशंसा कराते हुये लिखा है :

कामान्दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं
कीर्तिं सूते दुष्कृतं या हिनस्ति।
तां चाप्येतां मातरं मङ्गलानां
धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः ॥

—उत्तरराम०, ५।३१

[जो मनोरथों को पूर्ण करती है, अकल्याण को दूर करती है, कीर्ति उत्पन्न करती है, पापोंका नाश करती है ऐसी मंगलों की जननी सुन्दर सत्य वाणी को विद्वान् लोग धेनु (कामधेनु) कहते हैं ।]

जिस प्रकार मधुर वाणी दैवी वाणी है और कामों को पूर्ण करती है उसी भाँति कटु वाणी राक्षसी वाणी है और मंगलों का नाश करने वाली है :

ऋषयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः ।
सा योनिः सर्ववैराणां सा हि लोकस्य निर्कृतिः ॥

उत्तरराम० ५।३०

[ऋषि लोग उन्मत्त तथा उत्तेजित लोगों की वाणी (अर्थात् मदयुक्त और क्रोधपूर्ण वाणो) को राक्षसी वाणी कहते हैं, वह सभी शत्रुताओं की जड़ हैं और संसार की विघातिका है ।]

इस प्रकार भवभूति ने कटुवाणी की निन्दा के साथ मधुर वाणी की प्रशंसा प्रस्तुत की है ।

हास्य-व्यंग्य

भवभूति के नाटकों के विषय में सबसे बड़ी आक्षेप की बात जो उठती है वह हास्य की कमी । हास्य की ही सृष्टि के लिये संस्कृत नाटककार विदूषक की उद्भावना करते थे । पर भवभूति ने अपने तीनों रूपकों में से विदूषकों को बाहर निकाल फेंका है । इस हास्य की कमी का कारण क्या है ? क्यों एक प्रचलित तथा स्थिर परम्परा का भवभूति ने बहिष्कार किया ? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि भवभूति गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे । प्रकाण्ड पाण्डित्य ने—विशेषतः दार्शनिक अध्ययन ने—उनकी इस गम्भीरता में वृद्धि की । उन्हें उच्छृंखल हास्य अच्छा नहीं लगता था । बात भी ठीक है—**'एको रसः करुण एव'** के प्रतिष्ठापक आचार्य को उच्छृंखल हास्य कैसे अच्छा लगता है ? वस्तु और रस के तल में प्रवेश कर उसका साङ्गोपाङ्ग वर्णन भवभूति की विशेषता है जिसमें नखरेपन के लिये कम अवकाश रह जाता है । उनका प्रेम वास्तविक तथा सटीक होता है, उसमें अनुभूति रहती है । यही कारण है कि उन्मुक्त हास्य का एक भी उदाहरण नहीं है । जो हास्य यहाँ है वह शिष्ट हास्य है, स्मित हास्य है । प्रश्न यह है हास्य की सृष्टि में क्या भवभूति दक्ष नहीं थे अथवा उनकी उधर प्रवृत्ति ही नहीं थी ? कालिदास के प्रशंसक होने पर भी भवभूति ने हास्य की सर्जना क्यों नहीं की, जब कि कालिदास में हास्य की अच्छी मात्रा मिलती है । प्रोफेसर विलसन का विचार है कि व्यक्ति जितनी ही गम्भीरता से सोचता है

उतना ही तथ्यों पर अधिक ध्यान देता है और हास्य में उससे कम दक्ष होता है।[1]

किन्तु हास्य की प्रवृत्ति न होने पर भी यत्र-तत्र हास्य के मधुर छींटे दिखाई पड़ते हैं। उदाहरणार्थ उत्तररामचरित में चित्र दर्शन के प्रसङ्ग में मिथिला का दृश्य आने पर सीता उर्मिला को लक्ष्य कर लक्ष्मण से पूछती हैं—**वत्स इयमपरा का?** (१।१८ से आगे) इसी प्रकार मालती का वेष बनाये मकरन्द से माधव का कटाक्ष भी हास्य का उत्पादक है--**भगवति, कृतपुण्य एव नन्दनो यः प्रियासीदर्शी कामयिष्यते** (मालतीमाधव)। भवभूति के हास्य के विषय में यह स्मरण रखना आवश्यक है उनका हास्य शिष्ट तथा सूक्ष्म है और स्मितहास्य की कोटि में आता है।

भवभूति में हास्य की कमी होते हुये भी इस कमी को वे व्यंग्य के द्वारा पूर्ण करते हैं। गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति से जिस प्रकार के व्यंग्य की अपेक्षा हो सकती है वह भवभूति में पर्याप्त रूप में मिलता है। महावीरचरित में परशुराम के प्रसङ्ग में व्यंग्य के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। शतानन्द और परशुराम के संवाद तो व्यंग्य और कटूक्तियों से आपूर्ण हैं। उत्तर रामचरित में **'अयि कठोर यशः किल ते प्रियम्'** व्यंग्य का ही उदाहरण है। वासन्ती राम पर आक्षेप करती हुई व्यंग्य की वर्षा करती है। मालती माधव में **कहं णाम णववहू विस्सम्भणोवाअजणुअम्** (७।१) भी द्रष्टव्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भवभूति में यद्यपि हास्य की मात्रा कम है पर उसका सर्वथा अभाव नहीं। हास्य की कमी को वे व्यंग्य के द्वारा पूर्ण कर लेते हैं।

कर्त्तव्यनिष्ठा

भवभूति के नाटकों का प्रमुख आदर्श है कर्त्तव्यनिष्ठा। सभी पात्रों की अपने अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूकता लक्षित होती है। कर्त्तव्यपालन में किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं दिखाई पड़ती। कर्त्तव्यपालन के लिये सर्वस्व बलिदान कर देना भवभूति का लक्ष्य है। पति का पत्नी के प्रति, पत्नी का पति के प्रति, मित्र का मित्र के प्रति, राजा का प्रजा के प्रति, अनुचर का स्वामी के प्रति

---

1. "That the more deeply a man feels, the more prone he is to look at facts and the less able to humour or jest.".

आदिक बहुविध कर्त्तव्य दिखाई पड़ते हैं जिनके पालन में तत्तद् व्यक्ति संलग्न हैं।

कर्त्तव्य का सर्वाधिक उदात्तरूप उत्तररामचरित में निखरा है। यहाँ कर्त्तव्य-भावना सभी सम्बन्धों से ऊपर हो गयी है। उत्तररामचरित में कर्त्तव्य और स्नेह में द्वन्द्व छिड़ता है, एक ओर प्रजा के प्रति कर्त्तव्य-भावना उमड़ती है जिसके लिये राम ने अष्टावक्र के सामने प्रतिज्ञा की थी :

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥–उत्तर० १।१२

पर, दूसरी ओर पतिपरायणा सहधर्मचारिणी सती-साध्वी सीता के प्रेम को भी छोड़ना कठिन है। सीता पर लोकापवाद लग गया है। पौरजानपदों को उनके आचरण में शङ्का उत्पन्न हो गयी है। राम के मनमें गम्भीर अन्तर्द्वन्द्व उठता है। क्या मात्र लोक-निन्दा से सीता का त्याग कर दिया जाय? लोक तो निरंकुश है, जिसको चाहे जो कह दे।[1] इस अन्तर्द्वन्द्व में कर्त्तव्य की विजय होती है। राम राजा अपने सुख के लिये थोड़े हुये हैं, वे तो प्रकृति—प्रजा—के अनुरञ्जन करने के लिये राजा हुये हैं—राजा प्रकृतिरञ्जनात्। अन्त में वे सीता के त्याग का ही निश्चय करते हैं :

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्।
यत्पूरितं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता ॥—उत्तर० १।४१

इस कर्त्तव्य-पालन की भावना उनमें सर्वत्र जागरूक है। कर्त्तव्य-पालन के सामने, दया, क्षमा, क्रोध आदि कोई भी मनोविकार बाधक नहीं। इसीलिये तो शम्बूक-वध के प्रसङ्ग में वे कहते हैं :

रे हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्।
रामस्य गात्रमसि निर्भरगर्भखिन्न-
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते ॥—उत्तर०, २।१०

राम ने सारे सम्बन्धों और मोहों का त्याग कर सीता का कर्त्तव्यपालन के निमित्त ही तो निष्कासन कर दिया। उत्तररामचरित के कथानक के विन्यास के माध्यम से भवभूति ने कर्त्तव्यनिष्ठा का उपदेश दिया है। नाटक सोद्देश्य रचा गया है। यहाँ सभी पात्रों में कर्त्तव्य के पालन की बात देखी जाती है। अनुष्ठान

१. तुलना कीजिये—

गहिन जाइ रसना काहूकी सोइ भाषै जो सूझे।
दीनबन्धु कारुन्यसिन्धु बिनु कौन हियेकी बूझे ॥ —तुलसीदास

के लिये घर परिवारवालों का साथ भी छोड़ दिया जाता है। प्रथम अङ्क में ही राम कहते :

किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति।
सङ्कटा ह्याहिताग्नीमां प्रत्यवायैर्गृहस्थता॥—उत्तर० १।८

यही कर्त्तव्य-भावना दुर्मुख नामक दूत में दिखाई पड़ती है। सीता के अपवाद को वह राम से नही कहना चाहता, पर, कर्त्तव्यवश वह विवश है, कहना ही पड़ेगा––

हा, कहं दाणिं देवीमन्तरेण ईदिसं अचिन्तणिज्जं जणाववादं देव्वस्स कह इस्सं। अहवा णिओओ क्खु मे ईदिसो मन्दभाअस्स (उत्तर० १।३८।३९) लव और कुश; सुमन्त्र, जनक आदि में भी यह कर्त्तव्य-भावना दिखाई पड़ती है। महावीरचरित मे शतानन्द इसी कर्त्तव्य-भावना से प्रेरित होकर यजमान की रक्षा के निमित्त परशुराम के साथ वाग्विवाद में संलग्न होते हैं, राष्ट्र का रक्षक तो पुरोति ही होता है––राष्ट्रगोपः पुरोहितः।

कर्त्तव्य की भावना मालतीमाधव और महावीरचरित में भी चित्रित हुई है। महावीरचरित में राम, परशुराम, माल्यवान्, बालि इत्यादि सभी पात्र स्वकर्त्तव्यपालन में संलग्न हैं। मालतीमाधव में कामन्दकी सारा सूत्रसञ्चालन कर्त्तव्यभावना से ही करती है। मकरन्द की भूमिका भी मित्र के प्रति कर्त्तव्य-भावना से ही अधिकतर हो रही है। मित्र के हित के लिए ही वह मालती का वेश धारण करता है यद्यपि कार्य खतरे से खाली नहीं। मालती में भी कर्त्तव्य की भावना दिखाई पड़ती है। परिवार के प्रति कर्त्तव्य और प्रेम के अन्तर्द्वन्द्व में वह संलग्न दिखाई गई है।

भवभूति के सभी नाटकों में पात्र अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग है। कर्त्तव्य की भावना के सामने वे सभी सुख-दुःखों को झेलते हैं। कर्त्तव्य का स्थान उनके लिये सबसे बड़ा है।

भवभूति का नियतिवाद

संसार की घटनाओं में सर्वत्र कार्य-कारण संबन्ध ही दृष्टिगत नहीं होता। प्राणियों के शुभाशुभविधान में नियति का स्थान भी महत्त्वपूर्ण होता है। नियति मनुष्य के प्रयत्नों के विपरीत शुभ और अशुभ का विधान करती है। मालती के प्रति आसक्त माधव कहता है कि यद्यपि मालती में मन के आसक्त होने से पीड़ा होती है फिर भी वह आसक्त तो हो ही गया। वस्तुतः प्राणियों के शुभाशुभ की नियामिका नियति ही तो है :

सन्तापसन्ततिमहाव्यसनाय तस्या-
मासक्तमेतदनपेक्षितहेतु चेतः।
प्रायः शुभं च विदधात्यशुभं च जन्तोः
सर्वङ्कषा भगवती भवितव्यतैव ॥

—मालतीमाधव, १।८४

[यह मेरा मन किसी हेतु की अपेक्षा न कर सन्तापसमूह रूप महादुःख को झेलने के लिये उसमें आसक्त हो गया। प्रायेण सर्वनियामिका भगवती भवितव्यता ही प्राणियों का शुभ तथा अशुभ विधान करती हैं।]

भवभूति का यह नियतिवाद मूलतः उनके नाटकों में व्याप्त है। प्रेम भी इसी नियति का ही परिणाम है। बाह्य कारणों पर वह ध्यान नहीं देता। इसी नियति की लीला तो थी कि मर्यादापुरुषोत्तम ने सती-साध्वी धर्मपत्नी का त्याग कर दिया। मालती-माधव का परिणय, सीता-मिलन आदि सभी इसी नियतिनटी के क्रिया-कलाप हैं। भवभूति नियतिवाद में आस्था रखते दिखाई पड़ते है।

भवभूति : आशावादी कवि

भवभूति भवितव्यता को स्वीकार करते है, जीवन में करुण की सत्ता मानते हैं, महनीय पात्रों को दुःखी प्रदर्शित करते है। इससे प्रश्न यह उठता है कि क्या भवभूति जीवन में निराशावादी हैं ? जीवन में कहीं प्रकाश की किरण उन्हें दिखायी पड़ती है या नहीं ? प्रकृति-वर्णन में भी उन्हें प्रकृति के रूक्ष, विद्रूप और विषम रूप-वर्णन में ही रुचि है। नाटकों में हास्य की कमी है। ये सब बातें क्या उन्हें निराशावादी तो नहीं बताती ?

वस्तुतः उत्तर इसका नकारात्मक ही होगा। जीवन के प्रति भवभूति की महती आस्था है। लोकानुरञ्जन और कर्त्तव्यपालन ये उनके प्रमुख लक्ष्य हैं जिनकी स्थापना उन्होंने बड़े परिश्रम के साथ की है। निराशावादी के सामने प्रकृतिरञ्जन की बात ही नहीं उठती। जीवन के प्रति और जगत् के प्रति उन्हें महती आस्था है। प्रसिद्ध श्रुतिवचन के आधार पर उनका यह वचन यहाँ उदाहरण रूप से उपन्यस्त किया जा सकता है: **अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकास्तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते ये आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यन्ते।** उत्तर०—मालतीमाधव में मकरन्द आत्महत्या करने के लिये उद्यत होता है, पर वह भी कर्त्तव्यभावना और नवीन आशा के सञ्चार से—एक तो इससे वह अपने मित्र के प्रति कर्त्तव्य पूरा करना चाहता है, दूसरे उसे नवीन जन्म में माधव का

मित्र होने की आकाक्षा भी—है। अतः हम यह मानने के लिये प्रस्तुत नहीं कि भवभूति निराशावादी हैं। आशा का प्रकाश उनके रूप को में निहित है।

सामाजिक चित्रण

भवभूति के नाटकों के अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का चित्र भी उपस्थित होता है। इनके नाटकों के आधार पर तत्कालीन सामाजिक अवस्था को भली-भाँति रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है। भवभूति के काल में समाज में वर्णव्यवस्था और आश्रमव्यवस्था का पूर्णतः प्रामुख्य था। चातुर्वण्य की मर्यादा अक्षुण्ण थी। समाज में वृद्धों और ब्राह्मणों का समान होता था। हिन्दू धर्मके साथ ही साथ बोद्ध धर्म भी प्रचलित था और उसकी साधु-साधुनियाँ फैली हुई थीं। कामन्दकी, बुद्धरक्षिता आदि बौद्ध-धर्म की अनुयायिनी प्रतीत होती हैं। हिन्दुओं के घरमें भी इनका स्वच्छन्द आवागमन होता था और ये सम्मान पाती थीं। कापालिकों का स्थान भी विशिष्ट था। ये अघोर-सम्प्रदाय वाले आभिचारिक क्रियाओं को सम्पन्न करते थे और नर-बलि भी लुके छिपे देते थे। अघोरघण्ट और कपालकुण्डला इसी के द्योतक हैं। इन आभिचारिकों के सम्बन्ध में लोगों में यह धारणा थी कि ये अलौकिक सिद्धि से सम्पन्न होते हैं। ये जब अवसर पाते तो किसी को अपने अभीष्ट स्थान पर उड़ा ले जाते थे। मालती को कपालकुण्डलाने कराला देवी के मन्दिर में बलि देने के लिये उड़ा लिया था। इन आभिचारिकों का मुख्य स्थान श्मशान के समीप एकान्त भूमि में होता था। साधुनियाँ भी अलौकिक सिद्धि प्राप्त कर लेती थीं। सौदामिनी की सिद्धि भी किसी कापालिक से कम न थी।

इन आभिचारिक-क्रिया कलापों से पृथक् वैदिक परम्परा भी अक्षुण्ण रूप से चल रही थी। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था, कर्मकाण्ड का प्रचलन, वेद-वेदाङ्गों का अध्ययन हिन्दुओं के प्रचलित था। स्वयं भवभूति की वंशपरम्परा में वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान हुआ था। वैदिक शाखाओं में वेदाध्ययन भी प्रचलित था। ब्राह्मणग्रंथों और श्रुति-सिद्धान्तों का उल्लेख उनके अध्ययन का सूचक है।

भवभूति के समय में स्त्रियों का स्थान सम्मानजनक था। साधु स्त्रियाँ दूर-दूर तक पढ़ने जाती थी और पुरुषों के साथ उन्मुक्तरूप से शिक्षा लेती थीं। कामन्दकी और भूरिवसु साथ-साथ ही पढ़े थे। लड़कियों के उन्मुक्त शिक्षण का यद्यपि कोई दूसरा संकेत तो नहीं मिलता पर इतना स्पष्ट है कि घर में संगीत, ललित कला आदि की उन्हें शिक्षा मिलती थी। चित्रकला में भी दक्ष होती थीं। पत्नी का घर में पूरा सम्मान था। वह पति का वन्धु मित्र, संगिनी और सर्वस्व होती थी।

कौटुम्बिक जीवन समानता और स्नेह पर आधारित था। भवभूति के ग्रंथों के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्त्रियों के प्रति उनका दृष्टिकोण स्वस्थ और सहानुभूतिपूर्ण था।

भवभूति का युग राजतंत्र का युग था। सामंतशाही व्याप्त थी। छोटे-छोटे राज्य फैले हुये थे। राजा के दुर्बल होने पर अमात्यों का प्रभुत्व होता था। नन्दन ऐसा ही प्रभावी अमात्य है। शिक्षा के प्रसङ्ग से लोग दूर-दूर तक जाते थे। शिक्षा समाप्त कर पुनः वे अपने स्थान को लौटते थे।

समय-समय पर सामाजिक पर्व और उत्सव हुआ करते थे। बड़े-बड़े मेले जनसमुदाय के एकत्रित होने के अवसर होते थे। कुछ मेले बहुत बड़े होते थे जिनमें दूर-दूर दिशाओं से मनुष्य एकत्रित होते थे। कालप्रियानाथ के उत्सव में लगने वाला मेला ऐसा ही बड़ा मेला था। भवभूति के तीनों रूपकों का प्रदर्शन यहीं पहले हुआ था। ऐसे मेलों में नाच-तमाशों के होने का भी इससे अनुमान लगता है। ये मेले प्रचार के अमूल्य साधन होते थे जहाँ लोग अपनी नवीन कृतियों से लोंगों को परिचित कराते थे। बच्चों को अनध्याय से कितना प्रेम होता है तथा यह प्रेम सार्वभौम और सार्वकालिक है इसको सूचना भवभूति के उत्तररामचरित में मिलती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भवभूति के नाटकों के आधार पर उनके देश-काल की परिस्थिति की हम संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर सकते हैं, यद्यपि बहुत व्यापक और विस्तृत सामग्री हमें यहाँ नहीं मिल सकती। सूक्ष्म तन्तुओं के आधार पर ही यह रूपरेखा खड़ी की जा सकती है।

भवभूति की नारी

महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों में नारी को महनीय पद प्रदान किया है। नारी के कन्या, पत्नी और माता—इन तीनों रूपों का इन्होंने विशद चित्रण किया है। नाना प्रकार की सामाजिक परिस्थितियों और विभिन्न मनोदशाओं में भवभूति के नारी-पात्र विभिन्न प्रकार के व्यवहार करते हैं, परन्तु उनके उदात्त चरित्र पर कहीं असर नहीं पड़ता। कन्या को वे परार्थ की वस्तु मानते हैं जिसे किसी न किसी को देना है :

कन्यायाश्च परार्थतैव मता।—महावीर० १।३०

कन्या की याचना कोई भी कर सकता है फिर समर्थों की तो बात ही क्या—

साधारण्यानिरातङ्क कन्यामन्योऽपि याचते।
किं पुनर्जगतां जेता प्रपौत्रः परमेष्ठिनः॥—महा० १।३६

कन्या के दान से बड़ों के साथ सम्बन्ध और मित्रता हो जाती है। यह

स्नेह-सूत्र का संस्थापक है। कन्यादान में पिता ही अधिकारी होता है। भवभूति की कन्या अत्यन्त सुशील है। वह समस्त दुःखों को झेलने के लिये प्रस्तुत है, पर माता-पिता का दुःख वह सहन नहीं कर सकती (द्र० मालतीमाधव, अङ्क २)। कौमार्यकाल में कन्या किसी पुरुष से सम्बन्ध स्थापित करना बुरा मानती है। वे अत्यन्त कोमल, असहनशील और कुसुम के सदृश सुकुमार होती हैं। भवभूति को स्त्रीजाति के प्रति कितना सम्मान था इसका अनुमान उनके निम्न सिद्धान्त-वाक्य से लगाया जा सकता है—

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ॥—उत्त० ४।११

स्त्री के पत्नी रूप का भी भवभूति ने बड़ा ही मनोरम तथा प्रोज्ज्वल रूप प्रदर्शित किया है। वह गृह की लक्ष्मी है, पति के लिये आनन्ददायिनी है, उसकी बाहें कण्ठ में हार की भाँति हैं :

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो—
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥—अ० १।३८

जनक भी तो कौसल्या को दशरथ के गृह की लक्ष्मी बताते हैं—

आसीदियं दशरथस्य गृहे यथाश्रीः ॥—उत्त० ४।६

स्त्री के विना सारा संसार ही जीर्णारण्य बन जाता है। वह नीरस और निस्सार हो जाता है :

जगज्जीर्णारण्यं च भवति कलत्रे ह्युपरते
कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव ॥—उ० ६।५१

तथा—

शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्। असारः संसारः। काष्ठप्रायं शरीरम्॥
—उत्त० १।४६।४७

वह पति का जीवन, हृदय और आखों की ज्योत्स्ना है :

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे ॥—उ० ३।२६

पति और पत्नी परस्पर मित्र, बन्धु और सम्पत्ति हैं। कैसी उदात्त कल्पना है, कैसा ऊँचा आदर्श है। दाम्पत्य सम्बन्ध की इतनी उदात्त कल्पना दुर्लभ है—

प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा
सर्वे कामा शेवधिर्जीवितं वा।
स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसा—
मित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु ॥—मालतीमा०, ६।१८

स्त्री अपने पति की सहधर्मचारिणी होने के साथ ही साथ दैनन्दिन कार्यों में परामर्शदात्री भी है। जटिल और उचित-अनुचित कार्यों में वह पति को सत्परामर्श देती है। मन्दोदरी रावण को पुनः पुनः हितावह कार्य का उपदेश देती है (द्र० महावीर चरित ६।८—११)। वह पति को धर्मच्युत कभी नहीं देखना चाहती (दिष्ट्या अपरिहीनधर्मः स राजा—उत्तरराम० ३।७।८) वह सुख-दुःख, भोग-विलास, सम्पत्ति-विपत्ति में पुरुष का साथ देती ही है पर उसकी धार्मिक कृत्यों में तो सर्वाधिक उपयोगिता है। श्रुति-वचन भी तो यही है—

अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया।.........यावज्जायां न विन्दते असर्वो हि तावद् भवति—शतपथब्राह्मण, ५।२।१।१०

अर्थात् स्त्री पुरुष का अर्धाङ्ग है। पुरुष जब तक स्त्री को नहीं पा जाता तब तक असम्पूर्ण रहता है।

ऐतरेय-आरण्यक भी यही कहता है—

पुरुषो जायां वित्त्वा कृत्स्नतरमिवात्मानं मन्यते॥—१।३।५

भवभूति के नाटकों में प्रधान पात्र श्री रामचन्द्र जी धार्मिक कृत्य की पूर्ति के लिये इसी आदर्श के अनुसार स्वर्णमयी सीता का प्रतिष्ठापन करते हैं।

नियोजय यथाधर्मं प्रियां त्वं धर्मचारिणीम्।
हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिमध्वरे॥—उ०रा०, ७।२०

भवभूति की स्त्री सहधर्मचारिणी है। वह पति में प्राणशक्ति का सञ्चार करती है। उसके मधुर वचन क्लिन्न, परिश्रान्त, और म्लान जीवकुसुम के विकासकारी हैं, सकलेन्द्रियों को मुग्ध करने वाले हैं और कर्णों के अमृत तथा मन के रसायन हैं—

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि॥—उ० रा० १।३६

नारी की सबसे दुःखमयी अवस्था पति से वियोग है। इसमें उसके सारे सुख-स्वप्न ध्वस्त हो जाते हैं, असीम दुःख होता है। सीता का सारा जीवन वियोग का ही है। वस्तुतः उत्तररामचरित पीड़ा की कहानी है। करुणा से सराबोर नाटक में विरहिणी सीता का रूप देखिये—

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद्विप्रलूनं
हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घशोकः।
ग्लपयति परिपाण्डुक्षाममस्याः शरीरं
शरदिज इव घर्मः केतकीगर्भपत्रम्॥—उत्त० ३।५

[यही वह सीता है । शोक से इसकी अवस्था ही बदल गयी है । हृदयरूपी सुमन को सुखाने वाला, कठोर, एवं दीर्घकालव्यापी शोक वृन्त से टूटे हुये मनोहर नवपल्लव के समान अतिशय पाण्डुवर्णवाले तथा कृश इस सीता के शरीर को इस प्रकार म्लान बना रहा है जैसे शरद् ऋतु में उत्पन्न घाम केतकीपुष्प के क्रोड में अवस्थित पत्र को ।]

दीर्घकालीन विरह के अनन्तर पति का दर्शन होने पर कई प्रकार के भाव उमड़ जाते हैं । भावशबलता का उदाहरण देखिये—

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशा—
द्वियोगे दीर्घेऽस्मिन्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव ।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैर्गाढकरुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन् क्षण इव ।।—उत्त० ३।१३

भवभूति की नारी शिक्षिता, सर्वशास्त्रों में विचक्षण, कलाभिज्ञा और सुसंस्कृता है । कामन्दकी सर्वशास्त्रों में निष्णात है, वह बाहर अध्ययन करने जाती है । मालती चित्रकला में प्रवीण है और मनोविनोद के लिये एवं विरहवेदना की परिशान्ति के लिये माधव का चित्र निर्मित करती है । कामन्दकी एक ओर तो नीति के नाना उपदेशों को देती है और दूसरी ओर धर्मशास्त्र का भी निर्देश करती है । भवभूति की नारी कामकला में भी निष्णात है । कामोद्दीपन में सखियों का स्थान मालतीमाधव में विशेष है । आत्रेयी वेदान्त पढ़ने के लिये दण्डकारण्य में जाती है । इसका आशय यही है कि स्त्रियाँ अध्ययन के लिये दूर देशों तक चली जाती थीं ।

सन्तान के सुख के लिये भवभूति के पात्र चिन्तित हैं । सन्तान ही तो स्त्री-पुरुष के हृदय-ग्रंथि को और दृढ़ता से जोड़ता है । भवभूति की नारी स्वाभिमानिनी है । लोकपरिभव उसे स्वीकार नहीं । सीता कहती हैं—

नयतु मामात्मनोऽङ्के निलयमम्बा न सहिष्यामीदृशं जीवलोकस्य परिभवमनुभवितुम् ।—उत्त० ७।१६/१७

भवभूति के नारी पात्रों में क्रूरपात्र भी दिखाई पड़ते हैं । इनमें कपालकुण्डला और सूर्पणखा का नाम लिया जा सकता है । पर ऐसा भवभूति का आदर्श नहीं । पात्रों के बहुविध प्रकार-प्रदर्शन में विपरीत प्रकृति के पात्र दिखायी ही पड़ेंगे ।

भवभूति की नारी स्वतः ही पवित्र नहीं, अपितु दूसरों को भी पूत करती है । लोक उसी से सनाथ हैं । यह विधि की विडम्बना है कि उसे लोक-निन्दा का भाजन बनना पड़ता है । जगत् का नियम भी विचित्र ही—**यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ।**' सीता की अग्नि-परीक्षा वस्तुतः प्रदर्शन मात्र ही थी, उसकी अपेक्षा न थी——

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः ।
तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ॥—उ० रा०, १।१३

यदि कोई सीता की निन्दा करता है तो उसकी उक्ति ही पापमयी है। सीता से जगत् सनाथ और पुण्यात्मा है।

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः ।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ॥ —उत्तरराम० १।४३

भवभूति की नारी सन्तान के प्रति करुणामयी है। भगवती पृथ्वी सीता के सुख और कल्याण के लिये सदा चिन्तित हैं। पशु-पक्षियों और तृण-गुल्मों के प्रति भी नारी अपत्य-सम्बन्ध स्थापित कर लेती है और उसके भी सुख-सुविधा का उतना ही ध्यान करती है। वार्धक्य में उसकी करुणा और बढ़ जाती है। कौसल्या और अरुन्धती बच्चों के मंगल-सम्पादन में सर्वदा-सर्वथा सचेष्ट हैं।

भवभूति के गुण

भवभूति के नाटकों में कुछ विशिष्ट गुण हैं जो उनके महत्त्व को नितान्त उदात्त बना देते हैं। सबसे प्रधान गुण है भवभूति की वर्णन-पटुता। प्रायशः यह आक्षेप है कि भवभूति की भाषा बड़ी कठोर है[१]। किन्तु इसके सत्य होते हुये भी, जब विषय का प्रवाह चलता है, और कोई गम्भीर घटना प्रस्तुत होती है तो भाषा अपेक्षाकृत सरल हो जाती है। इसके अतिरिक्त भवभूति की भाषा का प्रधान गुण है विषय या दृश्य का प्रतिबिंब अङ्कित कर देना। मूर्त विषय की तो बात ही क्या अमूर्त मनोभावों के चित्रण में भी भवभूति की भाषा सुतरां सफल और बेजोड़ है। भवभूति के गद्य अपेक्षाकृत अधिक कठोर तथा उबाने वाले हैं। किन्तु, गद्यभाग की संख्या पद्य से वैसे भी चतुर्थांश है और पद्य में वह दुरूहता भी नहीं। डा० बेलवलकर का यह कथन उपयुक्त है कि कोई भी लेखक इस प्रकार अपने पद्य और गद्य को पूर्णतः दो भिन्न आधारों पर रखने में समर्थ नहीं हुआ है। कालिदास की सुकुमारता, कलाकारिता और अलङ्कार-विधान भवभूति में उपलब्ध नहीं होता पर भवभूति परिस्थिति के किसी विशिष्ट अंशों या विशिष्ट भावनाओं को लेते हैं और उनका क्रमिक रूप से सांगो-

---

१. ग्रियर्सन महाशय की उक्ति इस प्रसङ्ग में महत्त्वपूर्ण है—I do not believe that ever was a Pandit in India who could have understood, say, the more dificult passages of Bhavabhūti at first hearing without previous study."

२. Rāma's later history, Part I, P. LXXXII

पाङ्ग वर्णन करते हैं। शोकावस्था का यह वर्णन देखिये, जो विना किसी विशेष तड़क-भड़क के होते हुये भी सटीक वर्णन प्रस्तुत कर रहा है :

अयं ते वाष्पौघस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो
विसर्पन् धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया
परेषामुन्नेयो भवति च भराध्मातहृदयः॥

—उत्तरराम०, १।२९

[सीताहरण के प्रसङ्ग का चित्र-दर्शन लक्ष्मण के कराने पर सीता वियोग की बात स्मरण आ जाने से राम को अपार दुःख हो गया। उनके आँसुओं को देखकर लक्ष्मण कह रहें हैं—यह आप का अश्रुसमूह टूटे हुये मुक्ताणियों के हार के समान अविच्छिन्न धाराओं के रूप में गिरता हुआ, जर्जरित कणों (बिन्दुओं) वाला होकर भूमि पर लोट रहा है और अपने हृदय को पूर्ण कर देने वाला आवेग रोके जाने पर भी फड़कते हुये ओष्ठ तथा नासापुट से अनुमेय हो रहा है।]

भवभूति का सबसे बड़ा गुण है गम्भीर मनोभावों की सम्यक् वर्णना और पाठक के मन में उनकी उद्‌बुद्धि कर देना जिसका उल्लेख अन्यत्र किया गया है। भावनाओं का वर्णन वे इतनी सच्चाई और ईमानदारी से करते हैं कि उन्हीं के साथ अपना तादात्म्य कर देते हैं। भावनाओं की वर्णना में जितनी सघनता भवभूति में दिखाई पड़ती है उतनी अन्य किसी संस्कृत-कवि में नहीं। भावों की वर्णना को अलङ्कारों के आडम्बरों में उपस्थित कर देना उन्हें प्रिय नहीं। अलङ्कारों के आडम्बरों में भाव-सौन्दर्य तो लुप्त हो जाता है, केवल अलङ्कार ही रह जाता हैं। मानवीय भावों की गहराई में प्रविष्ट होकर उन्हें उसी गम्भीरता तथा मार्मिकता के साथ उपस्थित कर देना भवभूति की सबसे बड़ी सफलता है। हृदय के भावों का वर्णन सीधे शब्दों में करना कवि की विशेषता है। भावों की सघनता तथा विस्तार दोनों वस्तुयें भवभूति के नाटकों में सर्वत्र व्याप्त हैं। उत्तररामचरित में यदि करुण-प्रसङ्ग आया हैं तो वह लघुविस्तारी नहीं, दीर्घ विस्तरी है, पूरे नाटक में प्रसृत है। कोई वस्तु जब व्यापक (extensive) हो जाती है तो प्रकृत्या सघनता (Intensity) की न्यूनता हो जाती है, पर भवभूति में विस्तार होने पर सघनता में भी वृद्धि हो जाती है। यदि करुणा का प्रसङ्ग व्यापक होता है तो करुण की रसानुभूति भी व्यापक हो जाती है। दर्शक, पाठक, पात्र और स्वयं कवि भी उस रस-सागर में गोता लगता है। धन्य है ऐसा महाकवि। सहृदय रसिकों को कौन कहे जड़ पदार्थ भी रो उठते हैं—
अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।

भवभूति का काव्यप्रकर्ष भी समुन्नत कोटिका है। नाटकीय दृष्टि से भले ही उन्हें वह सफलता न प्राप्त हुई हो जो कालिदास वा शूद्रक को प्राप्त है, पर काव्यगुण की दृष्टि से भवभूति के नाटकों का महत्त्व कथमपि न्यून नहीं है। उत्तर-चरित वस्तुतः लिरिक ड्रामा (गीति-नाटक) है जो हृत्तन्त्री को झंकृत कर देता है। इसीलिये प्रोफेसर एस० के० डे के अनुसार कालिदास के उत्तरवर्ती नाटककारों में काव्य-प्रकर्ष की दृष्टि से कोई नाटककार भवभूति से आगे नहीं है।[१] काव्यधारा उनके सभी नाटकों में प्रवाहित हो रही है, विशेषकर 'गीति-पद्यों' में जो सभी नाटकों में समान रूप से उपलब्ध हैं। वे मानव-भावनाओं के कवि हैं जिनकी बहुरूपता में उनकी प्रवृत्ति विश्राम पाती है। मानव प्रवृत्ति को उन्हें महान् परख है। साथ ही प्रकृति के रूपों के दर्शन की भी उनमें क्षमता है। प्रकृति की सुकुमारता में वे रहने वाले व्यक्ति नहीं, उसके उग्र, विद्रूप और विषम रूप में उनकी प्रकृति रहती है। भवभूति भावना को पकड़ मानव-जीवन के उस उत्स में प्रविष्ट हो जाते हैं जिस रसधार से जीवन अनुप्राणित एवं रसाप्लावित होकर प्रवहमान रहता है। यही रसधारा जीवन को सरस बनाती है। कई भावों की एकत्र उपस्थित का बड़ा ही मनोरम वर्णन भवभूति ने किया हैं। भावशबलता का यह उदाहरण दर्शनीय है :

तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशात्
वियोगे दीर्घेऽस्मिन् झटिति घटनोत्तम्भितमिव।
प्रसन्नं सौजन्याद् दयितकरुणैर्गाढकरुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन्क्षण इव॥—उत्तर०, ३।१३

[सीता तमसा के साथ पञ्चवटी में जा रहीं है, सहसा श्रीराम दिखाई पड़ जाते हैं, उनकी कोमल वाणी सीता के कर्ण-कुहरों में प्रविष्ट हो जाती है। उस समय सीता की जो विचित्र दशा होती है उसका वर्णन तमसा कर रही है— सखि सीते ! तुम्हारा हृदय निराशा (पुनः प्राप्ति की आशा न होने) से तटस्थ (उदासीन) है, अकारण त्यागरूप अप्रिय करने से कलुषित है, दीर्घ वियोग में आकस्मिक संयोग से स्तम्भित की भाँति है, राम के सौजन्य से प्रसन्न है, प्रिय के शोक से घने शोकवाला तथा प्रेम से पिघला हुआ है।]

---

१. Other dramatists may exhibit a greater degree of some characteristic quality, but it is scarcely too much to say that none among the successors of Kālidāsa surpasses Bhavabhūti in pure poetry.— History of sanskrit literature, P., 297.

इतने मनोभावो की एकत्र स्थिति स्तुत्य है ।

भवभूति ने पात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सावधानी तथा कुशलता प्रदर्शित की है । पात्रों के चरित्राङ्कन में मर्यादा-निर्वाह तथा मनोवैज्ञानिकता का आश्रय लिया गया है । जनक के वचनोंसे उनके ब्रह्मविद्, अनुभवी, और ज्ञानी होने का प्रमाण मिलता है । परशुराम के वार्तालापों से उनका विश्वविश्रुत उग्र तथा रोषी रूप प्रकट हुआ है । राम और सीता अपनी महानता में अतुलनीय हैं । लव की भाषा धार्मिकता से आपूर्ण है । लव तथा चन्द्रकेतु का स्वरूप उनके कथनोपकथनों से व्यञ्जित होता है । दो ब्रह्मचारियों के वक्तव्य से उनके दार्शनिक विषयों में विवाद की क्षमता दृष्टिगत होती वै । वन्य पशुओं के चित्रण में भी भवभूति ने विशेष दक्षता प्रदर्शित की है ।

भाषा पर भवभूति का पूर्णतः अधिकार है । वे वश्यवाक् कवि हैं । शैली और अभिव्यक्ति दोनों परिष्कृत हैं । वाक्य-रचना ऐसी होती है कि उससे दृश्य तथा ध्वनि प्रतिध्वनित होने लगते हैं । 'गद्गदनदद्' का उदाहरण बहुचर्चित है, जिसका अन्यत्र निर्देश किया गया है । सघन भावनाओं की अभिव्यक्ति मे इनकी भाषा सरस हो जाती है तथा समस्त पदावली का भी वे त्याग कर देते हैं ।

भवभूति के दोष

महाकवि भवभूति के नाटकों में कुछ दोष भी दिखाई पड़ते हैं, जिनका उल्लेख करना अपेक्षित है । वैसे, ये दोष ऐसे नहीं कि इनसे भवभूति के वैशिष्ट्य, महत्त्व और प्रभावुकता में किसी प्रकार का प्रभाव पड़े । दोष शब्द स्वतः सापेक्ष है और उनके परिपेक्ष्य में गुणों की आभा और निखरती है । इन दोषों का तत्तद् नाटकों के प्रसङ्ग में निर्देश कर दिया गया है । यहाँ उनका संक्षेप में एकत्र आकलन कर दिया जाता है :

(१) आधुनिक नाट्यसिद्धान्त के अनुसार नाटक में अन्वितित्रय का ध्यान रखा जाता है अर्थात् (i) कालान्विति, (ii) स्थानान्विति और (iii) कार्यान्विति । कालान्विति के अन्तर्गत नाटकीय घटना का समय उतने तक ही सीमिति हो जितना सामाजिक को संभव प्रतीत हो । नाटक प्राधान्येन तीन-चार घण्टे में ही प्रदर्शित किये जाते हैं । यदि नाटक का कथानक बहुत वर्षों को व्यावृत किये है तो उसका इतने अल्पकाल में प्रदर्शन सम्भव नहीं । भवभूति के नाटकों में इस पर ध्यान नहीं दिया गया है । उत्तरचरित का कथानक बारह वर्षों के दीर्घ काल को समेटे है । महावीरचरित की घटना का सम्बन्ध इससे भी बहुत अधिक है । मालतीमाधव की घटना अपेक्षया कम समय लेती है । स्थानान्विति का आशय यह है कि नाटकीय घटना का सम्बन्ध उतने ही स्थान से

होना चाहिये जितना कि दर्शकों को सम्भव प्रतीत हो। पर, भवभूति ने इस पर भी ध्यान नहीं दिया है। महावीरचरित अयोध्या से लङ्का तक घटना को नचा रहा है। उत्तरचरित भी अयोध्या से दण्डकारण्य और वाल्मीकि आश्रम तक स्थान घेरे है। स्थानान्विति का ध्यान मालतीमाधव में भी नहीं है। तृतीय अन्विति कार्यान्विति है अर्थात् कार्य में त्वरा होनी चाहिये। जब पहले की दो अन्वितियाँ नहीं हैं तो तृतीय कैसे हो सकती है? यदि त्वरा आयेगी भी तो वह काल्पनिक होगी पाठक वा दर्शक का परितोष नहीं करेगी। उत्तररामचरित में तृतीय अङ्क का फलाप्ति से कोई सीधा सम्पर्क नहीं, चन्द्रकेतु और लव का प्रसङ्ग भी वैरस्योत्पादक है। किन्तु यहाँ भी स्मरण रखना चाहिये कि भवभूति आधुनिक नाट्य सिद्धान्त को सामने रख कर साहित्यसर्जना नहीं कर रहे थे और तात्त्विक दृष्ट्या ये दोष संस्कृत नाटककारों पर थोपना युक्तिगत नहीं। अन्वितित्रय का मानदण्ड लेकर नापने पर संस्कृत के नाटककारों को नापना ठीक नहीं होगा।

(२) भवभूति के नाटकों में दूसरा दूषण है किसी वस्तु या स्थिति का वर्णन करते समय अवाधगत्या उसका दूर तक विस्तार। भवभूति अभिधावृत्ति का आश्रय लेते हैं। किसी परिस्थिति का वर्णन करते वे थकते नहीं और दूर तक उसे ले जाते हैं। काव्यप्रकर्ष और रसपरिपाक की दृष्टि से ये बहुत प्रशस्त हैं पर नाटक का भी तो ध्यान रखना ही पड़ता है। मालतीमाधव में श्मशान का वर्णन, उत्तररामचरित में लव और चन्द्रकेतु के विवाद का वर्णन और महावीर-चरित में परशुराम के क्रोध वाले प्रसङ्ग इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। नाटककार को इतनी छूट समीक्षक नहीं देगा।

(३) भवभूति के नाटकों में हास्य की कमी (या दूसरे शब्दों में अभाव) भी खटकती है। संस्कृत नाटकों में हास्य की परम्परा सुस्थापित हो चुकी थी। भवभूति ने जान-बूझकर ऐसे प्रसङ्ग नहीं आने दिये हैं—कहीं आया भी तो स्मित हास्य की कोटि तक ही। औदरिक विदूषक सामाजिक के मन बहलाव के साधन होते हैं। यद्यपि व्यंग्यों के द्वारा भवभूति ने इसे पूरा करने का प्रयास किया है, पर हास्यविहीन व्यंग्य मात्र गाली रह जाता है, जैसे परशुराम और शतानन्द का वाक्कलह।

(४) भवभूति की भाषा भी दुरूह है। ग्रियर्सन महोदय तो यहाँ तक कहते हैं कि कदाचित् ही कभी कोई व्यक्ति प्रथमवार भवभूति की भाषा को समझ सका हो। चाहे यह स्थिति न भी हो पर भवभूति की भाषा के काठिन्य का निषेध नहीं किया जा सकता। उत्तरचरित की भाषा अपेक्षाकृत सरल हो गयी है। पद्यों की भाषा भी गद्यों की अपेक्षा सरल है।

(५) कथनोपकथनों में वाक्य दीर्घविस्तारी होते हैं और गद्य भाग बहुत दूर तक चलता है। महावीरचरित के प्राकृत भाषा के कथनोपकथन इसके प्रमाण हैं। जो आनन्द और सरसता लघुविस्तारी वाक्यों में रहती है वह दीर्घविस्तारी वाक्यों में नहीं।

(६) उत्तररामचरित में लव ने राम पर आक्षेप करते हुए कहा है :

वृद्धास्ते न विचारणीय चरितास्तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते
सुन्दस्त्रीमथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते।
यानि त्रीण्यपराङ्मुखान्यपि पदान्यासन् खरायोधने
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः॥

—उत्तरराम०, ५।३५

यहाँ नाटक के नायक पर आक्षेप किया गया है। साहित्यदर्पण के प्रणेता विश्वनाथ के अनुसार रूपक की इतिवृत्त रचना में चरित्ररक्षा का ध्यान रखना चाहिये। पर, भवभूति ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने लव, जो कि नाटक का अप्रधान पात्र है, का उत्कर्ष दिखाने के लिये राम के चरित पर आक्षेप कर दिया है। साहित्यदर्पण का अभिमत देखिये—

यत्स्यादनुचितं वस्तु नाटकस्य रसस्य वा।
विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्॥

(सा० द० ६।५०)

अनुचितमितिवृत्तं यथा—रामस्य छद्मनाबालिवधः। तच्चोदात्तराघवे नोक्तमेव। वीरचरिते तु बाली रामवधार्थमागतो रामेण हत इत्यन्यथा कृतः।

महावीरचरित में जिस दोष को भवभूति ने सावधानी से बचाया वही उत्तरचरित में आ गया। यही अनौचित्य है। क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में इसका निर्देश करते हुए कहा है :

अत्राप्रधानस्य रामसूनोः कुमारलवस्य परप्रतापोत्कर्षासहिष्णोर्वीर-रसोद्दीपनाय सकलप्रबन्धजीवितसर्वस्वभूतस्य प्रधान नायकगतस्य वीररसस्य ताडकादमनखररणायसारण—अन्य रणसंसक्त बालिव्या-पनादिजनविहितापवादप्रतिपादनेन स्ववचसा कविना विनाशः कृत इति अनुचितमेतत्।

इस प्रकार यहाँ भवभूति के कुछ दोषों का उल्लेख किया गया है। पर, जैसा पहले कहा गया है इनसे भवभूति के महत्त्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

षष्ठ प्रकरण

भवभूति एवं कालिदास

संस्कृत-नाटक-साहित्य में भवभूति और कालिदास दोनों अपना विशिष्ट स्थान रखते है। कालिदास वाणी के वरद पुत्र है तो भवभूति की वाणी वश्या हैं—यं ब्रह्मणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते। वस्तुतः यथार्थ स्थिति तो यह है कि संस्कृतनाटककारों में यदि किसी की कालिदास से तुलना की जा सकती है तो वह महाकवि भवभूति ही हैं। यदि एक की कमनीय कला अपना ललित लास्य दिखाती है तो दूसरे की सघन भावप्रवणता अपना प्रतिस्पर्धी नहीं रखती। पण्डित लोग भवभूति की नाटयसृष्टि पर इतने रीझ गये थे कि उन्होंने वेंरोक उत्तररामचरित को सर्वोच्च नाटयकृति घोषित कर दिया था—

उत्तरे रामचरिते भवभूर्तिशिष्यते।

तथा—

कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः।।

कालिदास संस्कृत के महान् कवि और नाटककार हैं जिनकी प्रसिद्धि भवभूति के युग तक अत्यंत प्रसृत हो चुकी थी। भवभूति ने अपना मार्ग स्वतः निर्माण किया। कलाबाजी और कीमियागीरी के लिये उन्हें अवकाश ही नहीं था। गभीर वनप्रान्तर की निर्झरणी कें समान उनकी कविता स्वच्छन्द गति से प्रवाहित होती है, झाड़-झंखाड़ों, पर्वतचोटियों को थपेड़े देते चलती है। भवभूति और कालिदास के ग्रथों की तुलना करने पर कुछ बातें बहुत स्पष्ट दिखायी पड़ती हैं। संक्षेप में उनका दिग्दर्शनकरा हम उत्तररामचरित और अभिज्ञान शाकुन्तल का तुलनात्यक अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

१.

महाकवि भवभूति के ग्रंथों में सबसे प्रधान वस्तु है भावुकता। भवभूति के पात्र मनोविकारों से इतने अभिभूत हो जाते हैं कि भावुकता की धारा में डूबने लगते हैं। चाहे उत्तररामचरित में राम हो या मालतीमाधव में माधव हों दोनों इतने भावुक हैं कि प्रियावियोग में शरणहीन होकर फूट-फूट कर रोते हैं। भावुकता का ऐसा प्राबल्य कालिदास में नहीं दिखायी पड़ता। दुष्यन्त को भी शकुन्तला का वियोग सहना पड़ा, उन्होंने शकुन्तला का त्याग के साथ ही प्रत्याख्यान भी किया, पर वैसी भावुकता उसमें नहीं है जैसी भवभूति में। दुःख उनको भी है, वे भी पश्चात्ताप करते हैं, पर उस भाँति फूट-फूट कर नहीं

रोते, बार-बार मूर्छित नहीं होते जिस भाँति भवभूति के राम हो रहे हैं। भावों की जितनी सघनता तथा व्यापकता भवभूति में है उतनी कालिदास में नहीं। भवभूति के समस्त पात्र भावुकता के शिकार हैं चाहे वे राम हों, सीता हों, कौसल्या हों, या माधव हों। यहाँ तक कि स्थितप्रज्ञ ब्रह्मविद् राजर्षि जनक भी इस शोक से अभिभूत हैं। भवभूति के नाटकों में पत्थर को रुलाने और वज्र को द्रवित करने की शक्ति है—अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्'। जनक के दुःख का पता इस पद्य से भली-भाँति लगता है :

अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन महता
विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता।
पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे
निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति॥

—उत्तर०, ४।३

[मेरे अपत्य (सीता) पर जो उस प्रकार की आपत्ति पड़ी उस बड़ी भारी, पीड़ाकारक, हृदय को घायल करने वाली आपत्ति से लगा हुआ प्रबल, सतत प्रवहमान और नया जैसा शोक आरे के समान मर्मस्थलों को काट रहा है और रुकता नहीं।]

राम के विलाप से तो पूरा नाटक ही भरा-पूरा है। माधव और मकरन्द के विलापों को मालतीमाधव में देखा जा सकता है। इन नाटकों से भवभूति की भावुक प्रवृत्ति का पता चलता है। वे स्वयं भावुक हैं, उनके पात्र भावुक हैं और उनके सामाजिक भावुक हैं। भवभूति जैसा गम्भीरमना व्यक्ति इतना तरल भी हो उठता है। कालिदास में इतनी भावुकता नहीं दिखायी पड़ती।

भवभूति में जो गम्भीरता है वह कालिदास में लक्षित नहीं होती। उनमें वह सरलता नहीं जो कालिदास में है। लम्बे समस्त पद, विकटबन्ध तथा क्लिष्ट पद उनकी रचना में मिलते हैं। ग्रियर्सन महाशय का यह कथन कि शायद ही कोई पण्डित प्रथम पाठ में भवभूति के नाटकों का अवगम कर सका हो भवभूति के मालतीमाधव और महावीरचरित के विषय में यथार्थ प्रतीत होता है। अपेक्षाकृत उत्तररामचरित की भाषाशैली सरल हो गयी है। कालिदास की शैली में प्रसादगुण का प्राधान्य है। रस के अनुरूप मधुर पदविन्यास कालिदास की विशेषता है। पर भवभूति में इसका प्राधान्य नहीं है।

कालिदास व्यञ्जना के कवि हैं। थोड़े से शब्दों में भावों की अभिव्यक्ति उनकी विशेषता है। किसी रस की अभिव्यक्ति करने में वे अभिधावृत्ति का आश्रय नहीं लेते। पर, भवभूति वर्णनों में व्यञ्जना की अपेक्षा अभिधा का ही आश्रयण ग्रहण करते हैं। वे किसी बात को वर्णन करने चलते हैं तो पाठक

की कल्पना के लिये अवकाश नहीं देते। उसका भरपूर वर्णन करते हैं—वहाँ तक उसे पहुँचा देते हैं जहाँ तक सम्भव है। किसी रस की वर्णना में वे उसे बहुत दूर तक खींचते है। करुण-रस की उनकी वर्णना इसका उदाहरण है। मालतीमाधव में माधव का विलाप दूरतक व्याप्त है। श्मशान का वीभत्स वर्णन भी अधिक है। उत्तररामचरित मे लव और चन्द्रकेतु का संवाद भी दीर्घविस्तारी है।

कालिदास प्रधानतः शृंगार का वर्णन करते हैं। कुमारसंभव में उनका शृंगार अपनी सीमा पर है। पर, भवभूति का प्रधान रस करुण है। सभी रसों का उत्स वे करुण को अङ्गीकार करते हैं--एको रसः करुण एव। अन्य रस इसी के विवर्त वा विकार हैं अपनी इस मान्यता की उन्होंने सिद्धि भी की है। करुणरस के वर्णन में भवभूति अद्वितीय है।

भवभूति का प्रणय-चित्र भी कालिदास की अपेक्षा अधिक उदात्त, उज्ज्वल तथा महनीय है। भवभूति ने प्रेम का जो आदर्श उपस्थित किया है वह संस्कृत-साहित्य में अद्वितीय है। भवभूति का प्रेम अलौकिक है, अद्वितीय है जन्मान्तर से सम्बद्ध है। उसमें कृत्रिमता नहीं, वह मांसल नहीं। उनका प्रेम—हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परं का मूर्त रूप है। सच्चा प्रेम ईश्वर का वरदान है। वह सहस्रों में किसी एक को मिलता है। उसे प्राप्त करने वाला भाग्यशाली व्यक्ति धन्य है। कोई आन्तरिक कारण—अलौकिक सम्बन्ध दो हृदयों को मिलाता है :

व्यतिजषति पदार्थानान्तरःकोऽपि हेतु-
न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः॥

—उत्तरराम० ६।१२

[पदार्थों को कोई आन्तरिक कारण मिलाता है, बाह्य कारणों का प्रेम आश्रय नहीं लेता। सूर्य के उदित होने पर कमल स्वतः विकसित हो जाता है। उधर चन्द्र के उदित होने पर चन्द्रकान्तमणि द्रवित होने लगती है।]

सच्चा प्रेम सुख-दुःख सभी अवस्थाओं में एक रहता है। वार्धक्य से उसमें कोई अन्तर नहीं आता। समय बीतने से वह और पुष्ट हो जाता है।

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यद्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते॥

—उत्तर राम० १।३९

[वास्तविक प्रेम सुख-दुःख दोनों अवस्थाओं में एक रहता है, सम्पत्ति-विपत्ति सभी अवस्थाओं में अनुकूल रहता है, हृदय को वहाँ विश्राम मिलता है, वृद्धावस्था से उस रस में कोई कमी नहीं आती, जैसे-जैसे समय बीतता है वैसे-वैसे आवरणों के नष्ट होने से जो परिणत स्नेह सार-रूप बच जाता है। ऐसा भला प्रेम किसी प्रकार ही सौभाग्यशाली को प्राप्त होता है।]

कालिदास प्रकृति के कोमल, स्निग्ध रूप के उपासक हैं पर महाकवि भवभूति को प्रकृति के स्निग्ध-कोमल रूप के प्रति विशेष पक्षपात नहीं। उन्हें तो उसके उग्र और वीभत्सरूप से ही अधिक प्रेम है। श्मशान का वीभत्स चित्रण, दण्डकारण्य के गम्भीर भयानक दृश्यों का वर्णन भवभूति जमकर करते हैं। जब हम भवभूति के प्रकृति-वर्णन से कालिदास के हिमालय-वर्णन की तुलना करते हैं तो दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। वस्तुतः भवभूति के करुणान्वित चित्त में यदि सुकुमार और ललित का प्राधान्य होता तो करुण का परिपाक ही उस सफलता से नहीं हो सकता था जितना हुआ है। युद्ध के वर्णन में भवभूति जितनी कुशलता प्रदर्शित करते हैं उतनी कालिदास में नहीं दिखायी पड़ती। भवभूति की शाब्दी ध्वनि ही रणभूमि का भयङ्कर दृश्य उपस्थित कर देती है। गाढ बन्ध की यह कला प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में भी दिखायी पड़ती है। '**एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो** में कल-कल करती पहाड़ों से टकराती गोदावरी का दृश्य श्रोता और पाठक के चक्षुपटल के सामने उपस्थित हो जाता है। दण्डकारण्य की जिस उत्तापदायिनी गर्मी का वर्णन महाकवि ने किया है जिसमें गिरगिट अजगर के प्रस्वेदबिन्दु से अपनी प्यास बुझा रहा है वह भवभूति की कुशल लेखनी की ही निर्मिति है।

कालिदास का निर्माणक्षेत्र व्यापक है——काव्य, नाटक दोनों रचा है। पर भवभूति की अद्यावधि निर्विवाद कृति नाटक ही सिद्ध हो सके हैं। वह भी केवल तीन ही। इस प्रकार व्यापकता में कलिदास का साहित्य अधिक है। समग्ररूप से भले ही नाटककार रूप में भी कविकुलगुरु कालिदास उत्कृष्ट माने जाते हैं, पर भवभूति के नाटकों का अपना स्वतंत्र महत्त्व है और कुछ विशेष विषयों में कालिदास के नाटकों से ये निश्चित रूपेण उत्कृष्ट कृति बन गये हैं।

भवभूति के काव्य में पाण्डित्य का पूरा प्रकर्ष है। सरस्वती यदि कालिदास का स्वतः अनुगमन करती है तो भवभूति की वे वशवर्तिनी हैं——**यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।**' वेदोपनिषद् तथा नाना विद्याओं का भवभूति ने खूब अध्ययन किया था। फलतः भवभूति के नाटकों में उनका पाण्डित्य लक्षित होता है। कालिदास राज्याश्रित कवि थे। फलतः कोमल और ललित वस्तु से उनका

सम्बन्ध स्वभावतः था। भवभूति में यह प्रवृत्ति नहीं दिखायी पड़ती। उनके नाटकों में हास्य की कमी और विदूषक का अभाव विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करते है।

इन अन्तरों के होने पर भी भवभूति कालिदास के काव्य के कुशल अध्येता थे। अतः भवभूति पर कालिदास का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। कालिदास के पद्यों की छाया, भाव की छाया भवभूति के नाटकों में यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है। इनसे यही प्रतीत होता हैं कि भवभूति ने कालिदास का अध्ययन किया था और कालिदास के कुछ भाव जाने-अनजाने भवभूति ने ग्रहण कर लिये।

२.

उत्तररामचरित और अभिज्ञानशाकुन्तल

महाकवि कालिदास की सर्वोत्तम नाटचकृति अभिज्ञान शाकुन्तल है[1] तथा हमारे चरितनायक भवभूति की सर्वोत्तम कृति उत्तररामचरित है।[2] फलतः ये दोनों नाटचकृतियाँ संस्कृत की सर्वोत्तम नाटचकृतियों में से हैं। इन दोनों की पारस्परिक तुलना बड़ी ही मनोरञ्जक होगी। इन पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया जाता है।

कथावस्तु—अभिज्ञान शाकुन्तल की कथावस्तु महाकवि कालिदास ने महाभारत से ग्रहण की है। महाभारत आदिपर्व अध्याय ७१ से ७४ में (द्र० गीता प्रेस संस्करण) इनका आख्यान वर्णित है। महाभारत में शकुन्तला विश्वामित्र और मेनका से उत्पन्न बतायी गयी हैं। हिमालय के शिखर पर मालिनी नदी के तट पर इनका जन्म हुआ। शकुन्तों (पक्षियों) द्वारा रक्षित होने से शकुन्तला नाम पड़ा। कण्व ने पाल-पोस कर बड़ा किया। दुष्यन्त के जाने पर दुष्यन्त द्वारा विवाह का प्रस्ताव होता है जिसका शकुन्तला स्त्री की पराधीनता बताकर निषेध करती है। दुष्यन्त के द्वारा आठ प्रकार के विवाहों को बताये जाने पर सशर्त विवाह करती हैं। कण्व आने पर अनुमोदन करते हैं। और पतिगृह में विदा करते हैं। शकुन्तला अपने संवित् का स्मरण कराकर पुत्र को अभिषिक्त करने का दुष्यन्त से निवेदन करती है। दुष्यन्त अस्वीकार करता है और शकुन्तला उपालम्भ देती है। वह सत्यधर्म की महत्ता तथा पतिव्रता पत्नी की महत्ता बताती

---

१. कालिदासस्य सर्वस्वमभिज्ञानशकुन्तलम्।
तथा
काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।

२. उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।

है । इसी समय आकाशवाणी होती है जो शकुन्तला के कथन को सत्य बताती है—**भरस्व पुत्रं दौष्यन्तिं सत्यमाह शकुन्तला** । इसके अनन्तर दुष्यन्त उसे अङ्गीकार करता है और पट्टमहिषी पद देता है ।

महाभारतीय कथा का सारांश यही है ।

अभिज्ञान शाकुन्तल के **प्रथम** अङ्क में दुष्यन्त कण्व के आश्रम में जाता है और कण्व की अनुपस्थिति में शकुन्तला और दुष्यन्त में परिचय तथा प्रेम होता है । प्रियम्वदा तथा अनुसूया नामक शकुन्तला की सखियाँ इसमें योग-दान देती हैं । **दूसरे** अङ्क में दुष्यन्त और विदूषक शकुन्तला की चर्चा करते हैं । दुष्यन्त से सेनापति मृगया की प्रशंसा करता है । माता की आज्ञापूर्ति के लिये दुष्यन्त विदूषक को घर भेंज देता और शकुन्तला के प्रसङ्ग को 'परिहास विजल्पित' बताता है । स्वतः तपोवन की रक्षा के लिए रुक जाता है । तीसरे अङ्क में दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रणय तथा गान्धर्व विवाह होता है । चौथे अङ्क में दुर्वासा का आगमन होता है और प्रिय द्वारा भूल जाने का शकुन्तला को शाप मिलता है । चिह्न दिखाने पर प्रिय याद करेगा ऐसा उपाय बताते हैं । शकुन्तला को कण्व गौतमी और शिष्यों के साथ पतिगृह में प्रस्थान कराते हैं । विदाई का मार्मिक वर्णन है । पञ्चम अङ्क में पूर्वोक्त लोगों के साथ शकुन्तला राजदरबार में प्रवेश करती है । अंगूठी खो गयी रहती है । दुष्यन्त प्रत्याख्यान करते हैं । शकुन्तला अन्तर्द्धान हो जाती है । धीवर को अँगूठी की प्राप्ति होती है । अंगूठी की प्राप्ति से राजा को पश्चात्ताप होता है । छठें अङ्क में राजा विलाप करते हैं । स्वर्ग से इन्द्र द्वारा आहूत होने पर जाते हैं । **सप्तम** अङ्क में स्वर्ग से लौटते समय हेमकूट पर्वत पर पति-पत्नी का मिलन होता है ।

महाभारत और शकुन्तला की कथावस्तु में अन्तर—महाकवि कालिदास ने महाभारतीय आख्यान में कुछ परिवर्तन किये हैं । ये परिवर्तन आख्यान-वस्तु को अधिक मनोवैज्ञानिक तथा न्याय्य धरातल पर लाने तथा नायक के चरित में उत्कर्ष के लिये किये गये हैं । मुख्य परिवर्तन हैं—(१) दुर्वासा के शाप की अवतारणा । महाभारत में दुर्वासा के शाप का अस्तित्व नहीं । दुष्यन्त किसी शाप के कारण शकुन्तला को नहीं भूल बैठा है, अपितु वह पहचान कर भी लोकलज्जा के भय से शकुन्तला का प्रत्याख्यान करता है । वह आकाशवाणी के कहने पर ही वह उसे स्वीकार करता है । इस प्रकार महाभारत में वह कपटी—समाज के भय से सत्यका अपलाप करने वाला दर्शाया गया है । कालिदास ने इसका मार्जन शाप की अवतारणा कर किया है । इससे एक तो नाटक अधिक यथार्थ हो गया है और दूसरे दुष्यन्त का चरित्र उज्ज्वल हो गया है ।

(२) महाभारत में शकुन्तला को पुत्रकी प्राप्ति कण्वाश्रम में ही होती है, पर अभिज्ञान शाकुन्तल में प्रत्याख्यान के बाद पुत्र उत्पन्न होता है।

(३) महाभारत में शकुन्तला का प्रत्याख्यान तथा अङ्गीकार एक ही स्थल पर होता है। बात तथा स्थान की दृष्टि से कोई व्यवधान नहीं है, पर अभिज्ञान शाकुन्तल में दोनों में अन्तर है। प्रत्याख्यान करने पर शकुन्तला चली जाती है और फिर अन्तर्द्धान हो जाती है। उस समय राजा उसे अङ्गीकार नहीं करता। दोनों के प्रेम को वास्तविक प्रदर्शित करने के लिये दोनों की वियोग-जन्य अवस्था का प्रदर्शन नितान्त आवश्यक था। कालिदास ने यही किया।

उत्तररामचरित—जिस प्रकार शाकुन्तल की घटना महाभारत से ली गई है उसी भाँति उत्तरचरित की घटना वाल्मीकीय रामायण के कथानक पर आश्रित है। वाल्मीकीय रामायण में रावणवध के अनन्तर राम अयोध्या में राज्य कर रहे थे। प्रजा के द्वारा सीता के चरित्र के विषय में आक्षेप किये जाने पर वन दिखाने के मिस से सीता को वाल्मीकि के आश्रम पर छोड़ दिया गया। वहीं सीता ने लव-कुश को जन्म दिया। पीछे राम के अश्वमेध करने पर महर्षि वाल्मीकि लव-कुश को लेकर यज्ञभूमि में पधारते हैं। लव-कुश रामचरित का गान करते हैं। राम उनको पहचानते हैं। सीता को ग्रहण करने की अभिलाषा होने पर भी वे संकोच करते है और सतीत्व-परीक्षा का प्रस्ताव करते हैं। सीता इस लज्जास्पद प्रस्ताव को सुनकर शपथ करती हुई पाताल में प्रविष्ट हो जाती है :

सर्वान्समागतान्दृष्ट्वा सीता काषायवासिनी।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यमधोदृष्टिरवाङ्मुखी॥
यथाऽहं राघवादन्यं मनसाऽपि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥

—उत्तरकाण्ड, ९४।१४-१७

अन्ततः पृथ्वी विवर देती है और जगज्जननी सीता पृथ्वी में प्रविष्ट हो जाती हैं।

बस इतना ही उपजीव्य है महाकवि भवभूति के उत्तररामचरित का।

अब उत्तररामचरित का संक्षिप्त कथानक देखिये—प्रथम अङ्क में कौसल्या, वसिष्ठ आदि ऋष्यशृङ्ग के आश्रम में चले गये हैं। अयोध्या में राम, सीता आदि

हैं। लक्ष्मण मनोविनोद के लिये राम का चित्र लाते हैं जो सीता की लङ्कामें अग्निशुद्धि तक है। चित्र देखते-देखते सीता सो जाती हैं। इसी बीच दुर्मुख नामक दूत सीता के चारित्र्य के विषय में लोकापवाद की सूचना राम को देता है। राम सीता-त्याग का निश्चय करते हैं और लक्ष्मण से वन में भिजवा देते हैं। दूसरे अङ्क में राम शम्बूकवधके प्रसङ्गसे जनस्थान में जाते हैं। शम्बूक का वध करते हैं। तृतीय अङ्क में पता चलता है कि प्रसव-वेदना से पीडित सीता गङ्गा में कूद गयी थीं। पृथ्वी तथा भागीरथी ने उन्हें गंगा से ले जाकर रखा और लव-कुश नामक दो कुमारों को महर्षि वाल्मीकिके आश्रमपर सौंप दिया। राम वासन्ती, छाया सीता, और तमसा के सामने विलाप करते हैं। है। चतुर्थ अङ्क में कौसल्या, जनक, अरुन्धती अत्यन्त दुःखित दिखाये गये हैं। वे परस्पर मिलते हैं और अपना दुःख प्रकट करते हैं। लव से उनकी भेंट होती हैं। लव के रूप को देखकर वे मुग्ध हो जाते हैं। पञ्चम अङ्क में लव और चन्द्रकेतु की भेंट और युद्ध है जिसका वर्णन विद्याधर और विद्याधरी षष्ठ अङ्क में भी करते हैं। इस अङ्क में राम भी आ जाते हैं और लव-कुश, चन्द्रकेतु से उनकी भेंट होती है। कलह शान्त हो जाता है। लव-कुश राम से रामायणीय आख्यान सुनाते हैं। सातवें अङ्क में राम समग्र प्राणियों के साथ सीता-निर्वासन का अभिनय देखते हैं। राम और सीता के पुनर्मिलन के साथ नाटककी समाप्ति होती है।

इस प्रकार इस नाटक में अपने उपजीव्य ग्रंथ से मुख्य भिन्नतायें ये हैं—(१) रामायण में सीता-त्याग वंशमर्यादा की रक्षा के लिये है, पर उत्तररामचरित में लोकाराधन के लिये, (२) छाया सीता का सम्पूर्ण प्रसङ्ग महाकवि की अपनी निर्मिति है, (३) शम्बूक के दिव्य शरीर की प्राप्ति रामायण से नहीं लिया गया है, और (४) जैसा पहले संकेत किया गया है, रामायण में राम-सीता का पुनर्मिलन नहीं होता पर भवभूति ने उनका पुनर्मिलन कराया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि दोनों महाकवियों ने मूल कथानक में अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया है। दोनों की कथावस्तु में परिवर्तन सोद्देश्य किया गया है। शाकुन्तल में शाप की अवतारणा कर दुष्यन्त के चरित्र की रक्षा की गई है। जो नायक है उसे उदात्तचरित होना चाहिये। यदि शाप की अवतारणा न हुई होती तो दुष्यन्त मात्र लम्पट, कामी और स्वैराचारी होता। वह एक मात्र रसिक ही रह जाता जो जहाँ-कहीं सुन्दरता देखता हो मधुलोभी भौंरे की नाईं रस लेता और रस लेकर उड़ जाता है। वह कथमपि न्यायी और उदात्तचरित्र नहीं होता। यही महाकवि कालिदास की कलाकारिता है कि दुष्यन्त की उन्होंने इस पतन से रक्षा की है; यह महत् साफल्य है। शकुन्तला

का जो राजसभा में वे प्रत्याख्यान करते हैं वह लोकलज्जा की भीति से नहीं, अपितु विस्मृति के कारण—धर्मरक्षा के लिये।

उत्तररामचरित के आख्यान-वस्तु में परिवर्तन भी विशेष महत्त्वपूर्ण है। कवि ने सीता का त्याग लोकरञ्जन के लिये कराया है। राम अपने किसी स्वार्थ के लिये नहीं; मान-सम्मान की रक्षा के लिये नहीं, अपितु लोकरञ्जन के लिये सीता को वन में भेंजते हैं। राजा का प्रजा से भिन्न कोई सुख-दु:ख नहीं है। इसी उद्देश्य के लिये कवि ने सीता का बनवास कराया है। नायक के चरित्र में उत्कर्ष दिखाना ही उसका अभीष्ट है। शूद्रक का दिव्यशरीर की प्राप्ति कवि ने राम का उत्कर्श प्रदर्शित करने के लिये ही दिखाया है। शूद्रक-वध में कवि ने दुहरे लाभ प्रदर्शित किये हैं—एक लोक-हित दूसरे शूद्रक पर अनुकम्पा। शूद्रक को उग्र तपस्या की फलाप्ति हो गयी। छाया सीता का प्रसङ्ग कवि ने अपने नायक के उदात्त रूप को प्रदर्शित करने के लिये ही लाया है। राम ने पतिपरायणा सच्चरित्रा, धर्मपत्नी का केवल लोक के कहने से ही त्याग कर दिया। क्या सीता के प्रति उनका कोई कर्त्तव्य नहीं था? उस सीता के प्रति ऐसा व्यवहार करने पर क्या राम के मन में कोई खेद नहीं हुआ? कवि ने इसी का परिमार्जन किया है छाया अङ्क में। सीता का परित्याग करने से राम को अपार कष्ट और मार्मिक वेदना हुई। कवि ने राम के पक्ष को स्पष्ट करने के लिये ही इस प्रसङ्ग की अवतारणा की है। सीता को प्रजापालन रूप धर्म के लिये त्याग तो दिया, पर उनके पति-हृदय को समाधान न मिल सका। उनका हृदय पुटपाक की भाँति दग्ध होने लगा। वे केवल नाम मात्र के लिये जीवित थे। इस प्रसङ्ग की अवतारणा से एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी सामने आया। सीता का राम के प्रति जो विक्षोभ था, जो असन्तोष था, जो विद्रोह और घृणा थी वह सब एक ही साथ धुल गया। राम का हृदय सीता के सामने खुल गया। सीता और राम का मिलन भी कवि की मौलिक उद्भूति है। वाल्मीकि ने सीता को पृथ्वी में डाल दिया, पर महाकवि भवभूति ने दोनों को मिला दिया। भारतीय मनीषा दु:खान्त नाटकों में विश्वास नहीं करती। उसे यह अभीष्ट नहीं कि सामाजिक अन्त में दु:खी होकर घर जाय और स्थायी अवसाद की छाया उसपर पड़ी रहे। वह रोने के लिए और दु:खी होने के लिये तो नाटक देखने जाता नहीं। वह तो रस-बोध के लिये नाटक देखता है। फिर यदि अन्त में दु:ख ही लेकर वह घर लौटा तो उसका प्रयोजन पूरा कहाँ हुआ? इसी लिये हमारे यहाँ दु:खान्त नाटक की कोई व्यवस्था नहीं—मृत्यु, युद्ध आदि रङ्गमञ्च पर वर्जित ही कर दिये गये। दु:खान्त नाटकों के निषेध का एक यह भी कारण है कि नाटक का नायक प्रधानतः महान् व्यक्ति होता हैं। भले आदमी पर दु:ख

किसको रुचिकर होगा, दु:ख में तो ओछे के साथ भी सहानुभूति हो जाती है। इसी लिये भवभूतिने राम और सीता का मेल कराया है। कवि ने काव्य-सिद्धान्त की रक्षा की है, प्रचलित परम्परा का निर्वाह किया है।

चरित्र-चित्रण—आख्यान-वस्तु के बाद दूसरी महत्त्व की वस्तु चरित्राङ्कन है। अभिज्ञान शाकुन्तल और उत्तररामचरित्र के प्रमुख पात्रों की तुलना करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उत्तररामचरित के पात्र नितान्त ऊँचे हैं। अभिज्ञान शाकुन्तल के नायक हैं दुष्यन्त तथा उत्तररामचरित के नायक हैं श्रीराम। जैसा कि पहले कहा गया है कि महाभारत के दुष्यन्त भीरु और लम्पट हैं और कालिदास ने इसमें सुधार का भरपूर प्रयास किया है। प्रारम्भ में उनके शारीरिक पुष्टि का 'गिरिचर इव नाग:' कह कर वर्णन किया है। किन्तु महाभारत में दुष्यन्त के जो दोष स्पष्ट हैं उनको ढकने का प्रयास करने पर भी कालिदास पूरी तरह ढंक नहीं सके हैं। दुष्यन्त कण्व के आश्रम पर जाकर शकुन्तला का परिणय भले ही कर लेते हों पर यह चारित्रिक प्रौढि का प्रमाण नहीं। उनकी वहाँ की चेष्टायें भी कोई बहुत उत्कृष्ट नहीं कही जा सकती। शकुन्तला के रूप-सौन्दर्य के मधुप वे तुरन्त बन जाते हैं। और अन्त में भूल भी जाते हैं। कालिदास ने उनके चरित्र को तो बचाया पर दोष का समाधान नहीं कर सके। राजा दुष्यन्त अवसर आने पर असत्य भी बोल सकते हैं जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण उनका विदूषक से शकुन्तला का प्रसङ्ग बताकर भी उसे 'परिहासविजल्पित' कह देना है। कवि ने नायक का उत्थान भी स्थान-स्थान पर बहुत अधिक किया है जिसका उदाहरण—येन येन वियुज्यन्ते प्रजा: स्निग्धेन बन्धुना—यह राजा की उक्ति है जो कर्त्तव्य-परायणता का महनीय आदर्श है।

महाकवि भवभूति के राम आदर्श नायक हैं। वे आदर्श राजा, आदर्श प्रजापालक, आदर्श पति, आदर्श पिता हैं। सभी प्रकार के आदर्शों की एकत्र अवस्थिति वहाँ दिखायी पड़ती है। प्रारम्भ में ही इन्होंने प्रतिज्ञा की है कि लोक-रञ्जन के लिये वे सर्वस्व त्याग सकते हैं—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

—उत्तर०, १।१२

परन्तु यहाँ प्रश्न यह आता है कि लोक के प्रति अपने कर्त्तव्य और दायित्व का पालन श्रीराम ने अवश्य किया, पर क्या वे सीता के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह कर सके हैं? लोकरञ्जन के लिये सीता का परित्याग ठीक हो सकता है, पर क्या किसी निर्दोष व्यक्ति को दण्ड देना राम के लिये हितावह था। शास्त्रकारों ने तो अदण्डच व्यक्ति को दण्ड देने की निन्दा ही की है।

अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ।
अयशो महदाप्नोति निरयं चैव गच्छति ।।

भवभूति ने इसी दोष के लिये छाया-प्रसङ्ग की अवतारणा की । राम अपने किये के लिये महान् दुःख उठा रहे हैं । उनकी दुःख-दशा देखे नहीं बनती । राम का शील-सौन्दर्य सभी को आप्यायित किये हुये है । कवि ने अलौकिक और लौकिक का सुन्दर सामञ्जस्य कर दिया है ।

शकुन्तला और सीता——स्त्री-पात्रों में दोनों नाटकों में प्रधान पात्र क्रमशः शकुन्तला (अभिज्ञान शाकुन्तल) और सीता (उत्तररामचरित) हैं । शकुन्तला महर्षि कण्व की पोष्य दुहिता हैं । वह अनुपम सौन्दर्यशालिनी है । उसके रूप को देखते ही राजा दुष्यन्त उसका लोभी बन जाता है । शकुन्तला भी दुष्यन्त के रूप पर रीझ जाती है और परिणामतः गान्धर्व विवाह निष्पन्न होता है । यहाँ शकुन्तला के चरित्र में कुछ लौल्य दिखायी पड़ता है जिसका संकेत कण्व का शिष्य शकुन्तला का राजा द्वारा प्रत्याख्यान किये जाने पर करता है । इससे शकुन्तला के हृदय की ऋजुता भी स्पष्ट होती है जो राजा की बातों में आकर उसे अपना हृदय सौंप देती है । इस ऋजुता के साथ-साथ शकुन्तला के हृदय में दीप्ति और स्वाभिमान भी है । जब दुष्यन्त प्रत्याख्यान करते हैं तो वह बोल उठती है——'अनार्य । तुम अपने हृदय के समान ही सबको देखते हो । तुम धर्म-कन्चुकधारी हो जो तृणावृत कूप के समान है। तेरे जैसा कपटी और कौन होगा ?'' वहाँ शकुन्तला का सतीत्व प्रज्ज्वलित हो उठता है । उसे कोई दिव्य ज्योति आकाश में उठा ले जाती है। अब उसका सारा स्नेह पुत्र के प्रति केन्द्रित हो उठता है । किन्तु, पति के प्रति उसकी समर्पण भावना सजग है । अन्त में वह पति को समर्पण करती है ।

सीता के चरित्र में सर्वत्र महनीयता है । कवि ने अपनी तूलिका से उसे इस प्रकार गढ़ा है कहीं कोई दोष दिखाई ही नहीं पड़ता। जब राम कहते हैं कि प्रजा-रञ्जन के लिये वे सीता तक का त्यागकर सकते हैं तो सीता रुष्ट होने के बदले प्रसन्न हो उठती हैं । राम की महत्ता में ही उनकी भी महत्ता निहित है । पति अपने कर्त्तव्य पालन में संलग्न रहे इससे बढ़कर सतीसाध्वी महिला के लिये और क्या आह्लादकारक हो सकता है ? सीता बोल उठती हैं——'**अत एव राघव-धुरन्धर आर्यपुत्रः** ।' सीता को रावण द्वारा हरी जाने पर कितना कष्ट हुआ होगा इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है । पर, जब लक्ष्मण वनवास का चित्र दिखाते हैं उस समय सीता राम के दुःख को देखकर अपना दुःख

विस्मृत कर जाती हैं। वे कह उठती हैं--

अयि देव रघुकुलानन्द एवं मम कारणात् क्लान्त आसीः। (प्रथम अङ्क) सीता को यहाँ विशेष दुःख इस लिये हो रहा है कि राम को उन्हीं के कारण दुःख हो रहा है। यही बात तृतीय अङ्क में भी दिखायी पड़ती है जब राम सीता के वियोग में मूर्च्छित हो जाते हैं उस समय सीता अपने सम्पूर्ण अवसाद और अपमान को भूलकर दुःख में निमग्न हो उठती हैं। प्रेम की ऐसी अवतारणा धन्य है। जहाँ आत्मसुख का जरा भी ध्यान नहीं, जहाँ अपने अपमान की चिन्ता नहीं, स्वाभिमान का प्रश्न नहीं, केवल प्रिय के सुख का ही ध्यान है। धन्य है वह प्रेम ! वह अलौकिक है। मर्त्यभूमि पर स्वर्ग की अवतारणा है। ऐसा प्रेम विरले को ही प्राप्त होता है। स्वयं भवभूति ने ही कह दिया है--**भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते।** सीता का चरित्र महनीय है। उसकी तुलना नहीं हो सकती। जो कुछ दुःख उन्हें मिला है उसके लिये राम कारण नहीं उनके पूर्वजन्म के कर्म ही कारण हैं। उन्हें राम के हृदय का पूरा ज्ञान है और राम उनके हृदय को पहचानते हैं।[1] 'अहमेतस्य हृदयं जानामि ममाप्येषः' (तृतीय अङ्क १२/१३)। राम के प्रति उनके प्रगाढ़ अनुराग का अनुमान करना भी कठिन है। राम के जाते समय सीता कहती हैं :

नमो नमोऽपूर्वपुण्यजनितदर्शनाभ्यामार्यपुत्रचरणकमलाभ्याम् ॥

(३।४६/४७)

यहाँ शकुन्तला और सीता के चरित्र का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। प्रत्याख्यान करने पर शकुन्तला तो दुष्यन्त को अनार्य कह उठती है, पर सीता में यह बात कहीं दिखायी नहीं पड़ती। सर्वस्व समर्पण, सुख-दुःख में ऐक्य यही सीता की विशेषता है। वस्तुतः सीता का चरित्र अलौकिक है, स्वर्गीय है। शकुन्तला मानवभावभूमि में ही विचर रही है। कालिदास ने शकुन्तला के उज्ज्वल चरित्र को प्रदर्शित करने का उद्देश्य रखकर भी मानवसुलभ दुर्बलताओं को भी चित्रित किया है। सीता के चरित्र की अवतारणा महाकवि भवभूति की कल्पना का अनुपम वैभव है। उसके सामने चरित्र टिक सकते हैं यह वात नहीं। उनके अलौकिक, महनीय और उदात्त चरित्र में भवभूति का मन रम गया था। मानव भावभूमि का ध्यान रखते हुये यह कहा जा सकता है कि शकुन्तला के पात्र अधिक प्रकृत हैं पर जब हम आदर्श चरित्र की कल्पना करते हैं तो भवभूति के

---

१. **तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्।**
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ॥—उ० रा०, ६।३२

पात्र बहुत ऊँचाई पर दिखायी पड़ते हैं। भवभूति के सामने एक उन्नत आदर्श था; भक्त होने से उनकी वृत्ति वहीं रम गयी थी।[1]

नाटकीयता—अभिज्ञानशाकुन्तल और उत्तररामचरित दोनों संस्कृत के प्रशस्त नाटक हैं और दोनों संस्कृत-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। नाटक के प्रधान तत्त्व हैं—कथानक, चरित्र, देशकाल आदि। कथानक के विस्तार में परस्पर सम्वद्धता और ऐक्य होना चाहिये। कथानक का प्रसार एकोन्मुखी होना चाहिये। मुख्य घटना के अलावे उप घटनायें भी हो सकती हैं (पताका और प्रकरी) पर वे मुख्य कथा-भाग की सहायक बन के ही आ सकती हैं, मुख्य कथा से विच्छिन्न नहीं रह सकती। घटनाओं में घात-प्रतिघात, पात्रों के मन में अन्तर्द्वन्द्व, घटना की सार्थकता ये नाटक में अपेक्षित हैं। नाटक के निर्वाह में अन्वितित्रय—स्थान, समय और घटना का ध्यान अपेक्षित है।

जब हम नाटकीयता की दृष्टि से विचार करते हैं तो शाकुन्तल निश्चित रूप से उत्तररामचरित से उच्च ठहरता है। जहाँ तक घटना का प्रश्न है शाकुन्तल की घटना एकोन्मुखी है, उसमें घात-प्रतिघात है और फलप्राप्ति की ओर अग्रसर हो रही है। उसका विषय है दुष्यन्त और शकुन्तला का प्रेम और विभिन्न विघ्न-बाधाओं से चलते-चलाते इस लक्ष्य को पहुँचता है। घात-प्रतिघात का दर्शन शाकुन्तल के प्रथम अङ्क में ही मिल जाता है। दुष्यन्त और शकुन्तला की परस्पर प्रेमल दृष्टि, शंकायें, कण्व का भय, गौतमी की रखवाली—उनके प्रेम में बाधक हैं। पर घटनाक्रम सुन्दरता से आगे बढ़ता है। दुर्वासा का शाप, धीवर द्वारा अंगूठी की प्राप्ति ये सभी घात-प्रतिघातों की जनक हैं। पात्रों के चरित्र में अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति भी सुन्दर बन पड़ी है। शकुन्तला को देखते ही दुष्यन्त की आँखें लुभा जाती हैं पर मन में द्वन्द्व उठता है–यह ग्राह्य है या नहीं। मन में असमञ्जस आ जाता है। पीछे पता चलता है कि विश्वामित्र और मेनका से उत्पन्न होने से ग्राह्य हैं। उसका प्रेमव्यापार प्रारम्भ ही हुआ था कि माता के पास बुलावा आता है। फिर वही असमञ्जस–प्रेम का सौदा करे या माता की आज्ञा पाले। विदूषक को प्रेषित कर इस स्थिति से मुक्ति पाता है। शकुन्तला के प्रत्याख्यान के अवसर पर भी अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति है। एक ओर तो महर्षि कण्व द्वारा प्रेषित कन्या दूसरी ओर मन में अविश्वास दोनों का

---

१. प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीनां
यत्पावनं रघुपते प्रणिनाय वृत्तम्।
भक्तस्य तत्र समरंसत मेऽपि वाच-
स्तत्सुप्रसन्नमनसः कृतिनो भजन्ताम्॥—महावीरचरित १।७

अन्तर्द्वन्द्व उपस्थित है। इन अन्तर्द्वन्द्वों से घटनाचक्र में कुतूहल की सृष्टि के साथ निखार आता गया है।

मुख्य कथा के साथ दुर्वासा-शाप, धीवर द्वारा अभिज्ञान की प्राप्ति, इन्द्र की सहायता करने स्वर्गगमन आदि घटनायें मुख्य घटना की ही सहायक हैं और फलप्राप्ति की ओर घात-प्रतिघात के साथ उन्मुख कर रही हैं। चरित्रचित्रण का निर्देश पहले किया जा चुका है। पात्रों के चरित्र में न्यूनता होने पर भी वे उत्तररामचरित की अपेक्षा अधिक मानवभावभूमि पर हैं।

घटना और अन्तर्द्वन्द्व की दृष्टि से उत्तररामचरित का कथानक शिथिल है। सीता का निर्वासन और पुनः प्राप्ति यह इसका विषय है। बीच में शम्बूक का प्रसङ्ग, चन्द्रकेतु का युद्ध मुख्य कथा से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। छाया सीता वाला प्रसङ्ग भी यद्यपि काव्य की दृष्टि से उत्तररामचरित के उत्कर्ष में अत्यधिक सहायक है, पर मुख्य कथा में कोई प्रत्यक्ष योगदान नहीं करता।[1] चरित्रों में अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति भी कदाचित् ही कहीं आती है। अन्वितित्रय की कमी भी दिखायी पड़ती है।

किन्तु इन त्रुटियों के होने पर उत्तररामचरित के गुण विशेष महत्त्व के हैं जिनका पहले निर्देश किया जा चुका है। शील-सौन्दर्य की ज्योत्स्ना, उदात्त आदर्श, कर्त्तव्यपरायणता, उन्नत कविता, भावों की सघनता जो उत्तररामचरित में : वह शाकुन्तल में मिलने को नहीं।

काव्यप्रकर्ष—कालिदास सुकुमार मार्ग के कवि तथा सौन्दर्य के सच्चे पारखी हैं। उनकी दृष्टि सौन्दर्य पर टिकती है——बाह्य और आन्तर दोनों सौन्दर्य उनके लक्ष्य हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल में भी उनकी सौन्दर्य दृष्टि दिखलाई पड़ती है। शकुन्तला के शरीर-सौन्दर्य का स्थान-स्थान पर बड़ा ही रङ्गीन चित्र प्रस्तुत किया है। सूक्ष्म मनोभावों, मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों का चित्र भी कवि ने अच्छी तरह खींचा है। शकुन्तला का शरीर-सौन्दर्य भी कवि ने खींचकर वर्णित नहीं किया है अपितु प्रसङ्गोपात्त होनेपर ही किया है और उसे मनोवैज्ञानिक धरातल पर रखा है। काव्य की दृष्टि से शाकुन्तल एक उच्चकोटि की कृति है।

उत्तररामचरित में काव्य का परिपाक शाकुन्तल की अपेक्षा कहीं अधिक है। भवभूति को सीता के बाह्य सौन्दर्य-वर्णन का अवकाश नहीं। सीता का माता-रूप, महनीय चरित्र उनके सामने सदैव उपस्थित है। सीता के शील-सौन्दर्य से वे आप्यायित हैं। राम-सीता वे आदर्श हैं जिनसे ऊपर कुछ हो ही नहीं सकता।

---

१. फलप्राप्ति में इस अङ्क का अपरोक्ष रूपसे बहुत महत्त्व है और सीता के अमर्ष और ग्लानि के मिटाने में इस अङ्क का महत्त्व है।

कवि ने भावभूमि की गहराई और चारित्रिक उत्थान उनको पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। भावों की जितनी बहुलता और सघनता भवभूति में मिलती है उतनी संस्कृत के अन्य कवियों में नहीं मिलती। मनोभावना कितनी तरल तथा सघन हो सकती है इसका प्रशस्त उदाहरण है भवभूति की कृति उत्तररामचरित। करुण रस की वर्णना में भवभूति अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते। भवभूति का प्रबल पाण्डित्य उनके काव्य में उत्कर्षाधायक बनकर आया है। भवभूति के काव्य में प्रकृति का रूप भी अपने उद्दाम, विद्रूप, विषम रूप में वर्णित हुआ है। गम्भीरमना भवभूति स्निग्ध, सुकोमल और सुचिक्कण के आग्रही नहीं। उनके लिये तो दण्डकारण्य का भीषण वन ही सुहावना है। वाणी में प्रौढि तथा उदारता और अर्थगौरव ये नाटक वा काव्य के लिये आवश्यक उपादान हैं।[1] ये पाण्डित्य और वैदग्ध्य के गमक हैं। भवभूति में इनका अद्भुत सम्मिश्रण हैं। वस्तुतः सरस्वती उनकी वश्या है। अनुभूति के सच्चाई के साथ पाण्डित्य का प्रकर्ष—इनका भवभूति में मणि-काञ्चन योग है।

निष्कर्ष—कालिदास तथा भवभूति दोनों संस्कृत के महनीय कवि हैं। दोनों के ग्रंथ संस्कृत-साहित्य के शृंगार हैं। संसार की कोई भी वस्तु निर्दोष नहीं। इनकी कृतियों में भी दोष मिल सकते हैं। किन्तु इनसे उनके गुणों में कोई अन्तर नहीं--**एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः**। काल की अपार बाधाओं को पार करते वे आज भी उसी भाँति प्रकाशमान और महत्त्वपूर्ण हैं जिस समय वे लिखे गये। ये कालजयी ग्रंथ महाकवियों की कीर्तिध्वजा के दण्डस्वरूप हैं। इन कवियों की तुलना तो मात्र उपलक्ष है। वस्तुतः अभीष्ट तो उनके महत्त्व की आशंसा है।

३

कालिदास और भवभूति में भावसाम्य

महाकवि कालिदास की कीर्तिकौमुदी भवभूति के समय तक दिग्दिगन्त में प्रसृत हो चुकी थी। उनके ग्रन्थ पण्डित-समाज में प्रचलित हो गये थे। यह सहज बात है कि भवभूति ने उनका निकट से अध्ययन किया होगा। भवभूति में बहुत से भाव ऐसे मिलते हैं जो कालिदास के ग्रंथों में भी उपलब्ध होते हैं। यह हो सकता है भवभूति को कालिदास के वे भाव और श्लोक ध्यान में रहे हों।

---

१. **यत्प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं**
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्धयोः॥--मालतीमाधव १।८

यह भी संभव हो सकता है कि कवि को अनजाने ही वे भाव निरपेक्षरूप से उद्भूत हो गये हैं। किन्तु बहुत संभव यही है कि वे भाव कालिदास से लिये गये हैं। मालतीमाधव में भवभूति ने शकुन्तला-दुष्यन्त और पुरूरवा-उर्वशी का नामशः भी निर्देश किया है। यहाँ यही प्रतीत हो रहा है कि कवि के ध्यान में कालिदास के पात्र ही थे। यहाँ कुछ प्रसिद्ध उदाहरणों को दे रहे हैं जिनमें भावसाम्य स्पष्ट है :

(१) भवभूति

सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा
सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतनं वा।
तस्याः सखे! नियतमिन्दुकलामृणाल-
ज्योत्स्नादिकारणमभून्मदनश्चवेधाः॥
मा० मा० १।२२

कालिदास—

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथन्नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः॥
—विक्रमो०, १।१०

(२) मालतीमाधव के निम्न पद्यों में कालिदास के मेघदूत की छाया स्पष्ट दिखायी पड़ती है। मन्दाक्रान्ता वृत्त में ठीक वैसा ही वर्णन भवभूति कर रहे हैं :

(क) कच्चित्सौम्य प्रियसहचरी विद्युदालिङ्गतित्वा-
मा‍विर्भूतप्रणयसुमुखाश्चातका वा भजन्ते।
पौरस्त्यो वा सुखयति मरुत्साधु संवाहनाभि-
र्विष्वग्विभ्रत्सुरपतिधनुर्लक्ष्म लक्ष्मीवदेतत्॥

× × × ×

(ख) दैवात्पश्येर्जगति विचरन्मत्प्रियां मालतीं चे-
दाश्वास्यादौ तदनु कथयेर्माधवीयामवस्थाम्।
आशातन्तुर्न च कथयतात्यन्तमुच्छेदनीयः
प्राणत्राणं कथमपि करोत्यायताक्ष्याः स एकः॥
—मालती० ९।२५-२६

इन पद्यों पर मेघदूत (पूर्वमेघ) के ९वें और १०वें पद्यों की छाया स्पष्ट है । मेघदूत के १०वें पद्य का उत्तरार्ध तो स्पष्टतः भवभूति में दिखाई पड़ता है :

आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यः पाति प्रणयि हृदये विप्रयोगे रुणद्धि ।।—मेघ० १।१०

(३) भवभूति—

कन्यायाश्च परार्थतैव—महावीरचरित,

कालिदास—

अर्थो हि कन्या परकीय एव—शाकुन्तल, ४।२२

(४) भवभूति—

प्रेयो मित्रं वन्धुता वा समग्रा
सर्वेकामाः शेवधिर्जीवितं वा ।—मालती० ६।१८

कालिदास—

गृहिणी सचिवः सखी मिथः ।—रघुवंश, ८।६७

इन पद्यों के अतिरिक्त बहुत से वाक्यों या वाक्यांशों में भावसाम्य देखा जा सकता है जैसे मालती १०।१३ का शाकुन्तल अङ्क १ के भवितव्यतानां हाराणि इत्यादि से महावीर च० ७।२७ और शकुन्तला ६।१७ ख से; इत्यादि में ।[1]

यहाँ यह भी कह देना उचित होगा कि भले ही भवभूति इनके ग्रहण करने में कालिदास से प्रभावित रहे हों पर ये वचन भवभूति के ग्रंथों में प्रकृत हो गये हैं । वे बाहर से आक्षिप्त नहीं प्रतीत होते ।

१. दोनों कवियों के भावसाम्य के विस्तृत उदाहरणों के लिये द्रष्टव्य, आर. डी. करमरकर कृत भवभूति, पृ० ७३-७८ ।

परिशिष्ट १

भवभूति की पुनरुक्तियाँ

भवभूति अपने पद्यों, पद्य-खण्डों और वाक्यों को अपने ग्रंथों में कई स्थलों पर प्रयुक्त करते हैं। कई पद्य ऐसे हैं जो तीनों नाटकों में मिल जाते हैं। प्रतीत यह होता है कि जो पद्य भवभूति को रुच जाते थे उसे वे अन्यत्र भी प्रयुक्त करने से नहीं चूकते थे। कहीं-कहीं कुछ थोड़ा सा अन्तर भी आ जाता है। महावीर-चरित के ख्यातनामा सम्पादक स्वर्गीय श्री टोडरमल ने इसकी विस्तृत सूची प्रस्तुत की है[1]। यहाँ हम ऐसे स्थलों का निर्देश करेंगे :

मालतीमाधव	उत्तररामचरित	महावीरचरित
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः। —१।९ ग घ	—	१।५ग घ
परिमृदितमृणालीग्लानमङ्गप्रवृत्तिः॥ —१।५ क	१।२४ ग	—
व्यतिजषति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु- र्न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते। विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः॥ —१।२७	६।१२	—
अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पन्दमन्दैः। —१।३१ क	१।२४ क	—
सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदां प्रथममेकरसामनुकूलताम्। पुनरकाण्डविवर्तनदारुणः प्रविशिनष्टि विधिर्मनसोरुजम्॥ —४।७	४।१५	—
त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टिः।	३।२८ क	—

1. द्रष्टव्य महावीरचरित की प्रस्तावना, पृ० ४०-४३; श्लोकों की आधार-संख्या श्री टोडरमल के अनुसार है।

मालतीमाधव	उत्तररामचरित	महावीरचरित
संभूयेव सुखानि चेतसि परं भूमानमातन्वते । यत्रालोकयथावतारिणि रतिं प्रस्तौति नेत्रोत्सवः ॥ —५।९ क ख	—	२।४५ क ख
गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारसंवेल्लित– —५।१९ क	२।२९ क	—
सारङ्गसंहृतिविधाविभकुम्भकूट- कुट्टाकपाणिकुलिशस्य हरेः प्रमादः ॥ —५।३२ ग घ	—	२।३१ ग घ
म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि संतर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि । —६।८ क ख	१।३६ क ख	—
जीवयन्नवि समूढसाध्वस- स्वेदबिन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम् । बाहुरैन्दवमयूखचुम्बित- स्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः ॥—८।३	१।३४	—
दोर्निष्पेषविशीर्णसंचयदलत्कङ्कालमुन्मन्थतः । —८।९ क	—	१।३४ क (पाठान्तर अधिक है)
गम्भीरनूतनघनस्तनितप्रचण्डः । —९।३ क ख	—	५।५४ ख
दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूना- मनुरसितगुरुणि स्त्यानमम्बूकृतानि । शिशिरकटुकषायः स्त्यायते सल्लकीना- मिभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः ॥ —९।६	२।२१	५।४१
स्वयमगृहीतकमनीयकङ्कण- स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः ॥ —९।९ ग घ	१।१८ ग घ	—
दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते वहति विकलः कायो मोहं, न मुञ्चति चेतनाम् । ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात् प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी, न कृन्तति जीवितम् ॥ —९।१२	३।३१	—

मालतीमाधव	उत्तररामचरित	महावीरचरित
एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष- व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः । वाष्पाम्भः परिपतनोद्गमान्तराले दृश्यन्तामविरहितश्रियो विभागः ॥ —९।१४	१।३१	—
मातर्मातर्दलति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः शून्यं मन्ये जगदविकलज्वालमन्तर्ज्वलामि । सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥ —९।२०	३।३८	—
मातर्मातर्दलति हृदयं ध्वंसतेदेहबन्धः —९।२० क	—	१।४० क
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज- —९।२४ क	२।२० ग	५।४० ग
उपचितघनमालप्रौढतापिच्छनीलः श्रयति शिखरमद्रेर्नूतनस्तोयवाहः । —९।२४ गघ	—	५।४२ गघ
—९।२४ घ	१।३३ ख	५।४२ घ
प्रगल्भव्यापारश्चरति हृदि मुग्धश्च वपुषि । —९।२९ घ	६।३५ घ	—
लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु सम्पादिताः पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः । सेकः सीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन- र्न स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम् ॥ —९।३४	३।१६	—
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न मुसलैर्बत कुट्टनानि ॥ —९।५१ गघ	१।१४ गघ	—
व्यतिकर इव भीमस्तामसो वैद्युतश्च —९।५४ क; १०।८ क	५।१३ क	—

मालतीमाधव | उत्तररामचरित | महावीरचरित

अनियतरुदितस्मितं विराज-
त्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम् ।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि
स्खलदसमञ्जसमुग्धजल्पितं ते ॥

—१०।२ | ४।४ | —

को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तो-
र्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे ॥

—१०।१३ गघ | ७।४ गघ | —

किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातंत्र्यमपकर्षति ।
सङ्कटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता ॥

— | —१।८ | ४।३३

तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ।

— | —१।१३ गघ | ४।२७ गघ

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा
परः सहस्राः शरदस्तपांसि ।
एतान्यपश्यन्गुरवः पुराणाः
स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि ॥

— | —१।१५; ६।१५ | १।४२

गौतमश्च शतानन्दो जनकानां पुरोहितः ॥

— | —१।१६ गघ | १।१९ गघ; २।४२ गघ

जनकानां रघूणां च ।

— | —१।१७क; १।५१क; ६।४२क। ७।१५ग | १।५७ क

जनकाणां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः ।
यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिकनन्दनः ॥

— | —१।१७ | १।५७

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम् ।
धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम् ॥

— | —१।२२ | ४।५२
(उत्तरार्ध में भिन्न है)

— | वयं च भुवनानि च ॥—१।३२ घ | ४।१३ घ

मालतीमाधव	उत्तररामचरित	महावीरचरित
—	मत्सम्बन्धात्कश्मला किम्वदन्ती —१।४२ ग —१।५१ क ख=६।४२ क ख	विरमिति न कथञ्चि- त्कश्मला किंवदन्ती ।। ३।४ घ
—	चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् । त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्धानो रणे हताः ।। —२।१५	५।१३
—	न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति । तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियोजनः ।। —२।१९ = ६।५	—
—	इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरवीरुत् प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति । फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज- स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः ।। —२।२०	५।४०
त्वं कौमुदी नयन- योरमृतं त्वमङ्गे —३।२६ ख	या कौमुदी नयनयोर्भवतः सुजन्मा —१।३७ क	—
—	स्वयं कृत्वा त्यागः विलपनविनोदोऽप्यसुलभम् —३।३० ग	५।२८ ख
भद्रं भद्रं वितर भगव- न्भूयसे मङ्गलाय —१।५ घ	३।४८ घ	—
—	याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपरायणं जगुः ।। —४।९ ग घ	१।१४ ग घ
—	चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो भस्मस्तोकपवित्रलाञ्छनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम् । मौर्व्या मेखलया नियंत्रियमधोवासश्च माञ्जिष्ठकं पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः ।। —४।२०	१।१८

मालतीमाधव	उत्तररामचरित	महावीरचरित
	ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र- मुद्गारिघोरघनघर्घरघोषमेतत् । ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र- जृम्भाविडम्बिविकटोदरमस्तु चापम् ॥	
—	—४।२९	३।२९
	पर्याप्तिसप्तभुवनामयदक्षिणानि	
—	—५।३३ ग	२।४० क (परिवर्तन के साथ)
	त्रातुं लोकानिव परिणतः कायवानस्त्रवेदः क्षात्रो धर्मः श्रित इव तनुं ब्रह्मकोषस्य गुप्त्यै । सामर्थ्यानामिव समुदयः संचयो वा गुणाना- माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशिः ॥	
—	—६।९	२।४१
	अमृताध्मातजीमूतस्निग्धसंहननस्य ते ।	
—	—६।२१ क ख	२।४६ क ख
	प्रादुर्भूय स्थित इव बहिश्चेतनाधातुरेव ।	
—	—६।२२ ख	२।४१ घ
जगज्जीर्णारण्यं कथमसि विधातुं व्यवसितः । —५।३० घ	६।३९ (कुछ परिवर्तन)	—

इन पद्यों वा पद्यांशों के अतिरिक्त गद्यखण्डों की भी पुनरुक्तियाँ हुई हैं जिनकी सूची इस प्रकार है—

मालतीमाधव		उत्तररामचरित	महावीरचरित
१।५/८	भगवत्यः·····समर्पितवान्	१।१/२ अद्य·····पुत्रः	१।१/५ भगवत्यः·····कुर्वन्तु
१।२५/२६	अमृतवर्तिरिव चक्षुषो	—	१।२८/२९
१।२६/२७	स्नेहश्च·····एतत्	६।११/१२	—
४।१/२	जानादि·····मन्तेदुम्	—	२।३६/३७
४।१/२	हिअ भरिउव्वमन्त	—	२।३३/३४
५।११ ग	किलकिलाकोलाहल	—	६।२९/३०
५।१४ क	चक्रमक्रम	—	४।२९/३०
६।७/८	समग्ग·····मङ्गलम्	—	६।४०/४१

मालतीमाधव	उत्तररामचरित	महावीरचरित
६।९/१० इयम्····अभ्युदयनम्	७।२०/२१	—
६।१५/१६ तत्किमिति····भगवत्याः	—	२।४४।४५
६।१६/१७ अहो····प्रसङ्गः	—	१।५५/५६
८।८/९ साक्खेव····दण्ड	—	२।२२/२३
—	१।४/५ स्वजातिसमयेन	३।४४
—	१।१७/१८ गोदानमङ्गल	१।५८/५९
—	१।२५/२६ अयमविरल···नामा	५।१५/१६
—	१।३०/३१ मन्वन्तरपुराण	५।४/५
—	१।३०/३१ हा तात····सम्भवः	५।२३/२४
—	१।३०/३१ अयमसौ····भागः	५।२६/२७
—	१।३०/३१ श्रमणी····तापसी	५।२७
—	१।४२/४३ हा महारण्य···सखी =३।९/१०; ७।२/३	५।३०/३१
५।३०	१।४६/४७ जीर्णारण्यम्····संसारः	—
—	२।२/४ ब्रह्मपारायण=६।९	१।१७
—	२।७/८ दिव्यास्त्रसम्प्रदाय	१।४७ ग
—	२।१५/१६ उन्मत्त····अभिवर्तते	५।२६/२७
—	२।१९/२० अतिसम्भ्रान्त···यूथानि	५।२६/२७
—	२।२६ व्रणोरूढग्रन्थि	१।३४
—	३।१४/१५ हृदय···उद्घाताः	५।२४/२५
९।३३/३४	३।१५/१६ कान्ता····वत्सेन	—
	३।३८/३९ कथमय····उच्छ्वसिति =७।१८/१९	४।५५/५६
	४।२०/२१ भिद्येत····वृत्तम्	४।१/२
—	४।२१/२२ शिरसा····पर्यायः	४।२४/२५
—	४।२२/२३ न केनचित्···आक्रमितव्या	१।१२/१३
—	५।८/९ सत्यम्···खल्वसि	२।३०/३१
—	५।१०/११ प्रसन्नकर्कशा	१।२
—	५।३४/३५ अतिहि···प्रगल्भसे	२।४८/४९
—	५।३४/३५ मय्येव···संवृत्तः	२।४६/४७
—	६।०/१ उद्भ्रान्तदेवासुराणि	५।३०/३१

मालतीमाधव	उत्तररामचरित	महावीरचति
—	६।५/६ मेघमेदुरित	५।१५/१६
—	६।१४/१५ सरहस्य···जृम्भक	१।४१/४२
—	६।१५/१६ प्रकृष्ट···महिमा	४।१३/१४
—	७।२/३ असंविज्ञात···निबन्धन	२।३३/३४
—	७।६/७ आपात···संवेगः	६।५२/५३

परिशिष्ट २

अन्य ग्रंथों में भवभूति के उल्लेख तथा उद्धरण

विभिन्न ग्रंथों में भवभूति का नामोल्लेख पाया जाता है। वे ग्रंथ जिनमें भवभूति का उल्लेख है ये हैं :

(१) कल्हणकृत राजतरङ्गिणी, ४,१४४; (२) राजशेखर का बालरामायण, १.१६, (३) बल्लाल का भोजप्रबन्ध पृ० ९६—वाराणसी नगरात् कोऽपि भवभूतिनामा कविर्द्वारि वर्तते; (४) वाक्पतिराज का गौडवध, ७९९ (५) आर्यासप्तशती, ३६; (५) विश्वेश्वर पण्डित का कवीन्द्रकर्णभरण।

इन स्थलों पर नामोल्लेख के अतिरिक्त भवभूति के उद्धरण निम्न स्थलों पर मिलते हैं (१) उज्ज्वलदत्त की उणादिसूत्र की टीका में; (१) अमरकोष पर रायमुकुट की टीका में; (३) अमरकोश पर क्षीरस्वामीकृत टीका में; (४) श्रीलहनूमान् कृत महानाटक में।[1]

सूक्तिसंग्रहों में निम्न स्थलों पर उद्धरण मिलते हैं—(५) सुभाषितावली, (६) शार्ङ्गधरपद्धति (७) कवीन्द्रवचनसमुच्चय

अलङ्कारग्रंथ—(८) दशरूपक, (९) साहित्यदर्पण, (१०) सरस्वतीकण्ठाभरण, (११) काव्यप्रकाश (१२) रसगङ्गाधर, (१३) काव्यलङ्कारवृत्ति (१४) अलङ्कारसर्वस्व, (१६) सुवृत्ततिलक, (१७) काव्यानुशासन (१८) काव्यप्रदीप, (१९) अलङ्कारशेखर (२०) अलङ्कारकौस्तुभ (२१) पद्यरचना, (२२) चित्रमीमांसा, (२३) रसरत्नहार।[2]

१. महानाटक में भवभूति के उद्धरणों के लिये द्रष्टव्य, डा० गंगासागर राय कृत महानाटक की प्रस्तावना, चौखम्बा, प्रकाशन।

२. तत्तद् ग्रंथों के स्थलनिर्देश के लिये देखिये, टोडरमल सम्पादित महावीरचरित की प्रस्तावना, पृ० ४३-४७।

परिशिष्ट ३

भवभूति के छन्द

भवभूति साहित्यशास्त्र के परिनिष्ठित पण्डित थे। इन्होंने अपने नाटकों में छन्दों का प्रयोग उन्मुक्तरूप से किया है। इसमें अनुष्टुप् जैसे छोटे और शार्दूलविक्रीडित जैसे बड़े छन्द भी है। जिन छन्दों का इन्होंने प्रयोग किया है उनमें अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता मालिनी, उपजाति, इन्द्रवज्रा, प्रहर्षिणी, हरिणी, पुष्पिताग्रा, पृथ्वी, शालिनी, आर्या, वंशस्थ, रथोद्धता, मञ्जुभाषिणी, द्रुतविलम्बित, उपेन्द्रवज्रा, नर्दटक, शालिनी, अपरवक्त्र, औपच्छन्दसिक, वियोगिनी, तथा दण्डक हैं।

नाटकों के क्रम से महावीरचरित में १७ छन्द प्रयुक्त हैं; मालतीमाधव में २४ छन्द हैं और उत्तररामचरित में २४ छन्द हैं। उत्तररामचरित तथा महावीरचरित में अनुष्टुप् छन्दों की संख्या अधिक है।

परिशिष्ट ४

अलङ्कार-विधान

छन्द-वैविध्य के साथ-साथ भवभूति में अलङ्कार-वैविध्य भी पाया जाता है। अलङ्कारों में शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार दोनों पाये जाते हैं। प्रमुख अलङ्कारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, श्लेष, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना, दृष्टान्त, विरोधाभास, प्रतिवस्तूपभा, अतिशयोक्ति, आक्षेप, काव्यलिंग, सन्देह और स्वभावोक्ति हैं।

भवभूति की उपमा में एक वैशिष्टच यह है कि वे सूक्ष्म मनोभावों की तुलना स्थूलपदार्थों से करने में रुचि दिखाते हैं। जैसे—**करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी**—में जानकी की शरीरधारिणी विरहव्यथा से तुलना की गई है।

परिशिष्ट ५

भवभूति द्वारा अन्य ग्रंथों के उद्धरण

भवभूति ने अपने ग्रन्थों में कुछ प्राचीन ग्रन्थों का नामनिर्देश किया है। उत्तररामचरित ६-३०।३१ में भवभूति ने रामायण के बालकाण्ड का निर्देश किया है और दो श्लोकों को उद्धृत किया है (६।३१।३२); उत्तररामचरित ६.३६ रामायण २.९५.५–६ का उद्धरण है। उत्तररामचरित २.५ भी रामायण १.२.१५ में दिखाई पड़ता है। इनका प्रथम निर्देश डा० वेबर ने अपने 'आन रामायण' नामक निबन्ध में किया था। इसके अतिरिक्त महावीरचरित ५.२४ (रामायण ३.६७.१५) तथा महा० ५.३४ क (रामायण, ४.४.१५) भी मिलते हैं।

मालतीमाधव, २।२/३ में अङ्गिरस, का निर्देश है; मालती० ७१०/१ में भवभूति ने कामसूत्र का उद्धरण दिया है; महावीरचरित ४।७।८ कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र ७.५ का उद्धरण है। उत्तररामचरित में अश्वमेध अश्व के प्रसङ्ग में लव ब्राह्मण ग्रंथ के अश्वमेध भाग वाले काण्ड का निर्देश करता है जो स्पष्टतः शतपथब्राह्मण के त्रयोदश काण्ड का निर्देश है। इसी नाटक के चौथे अङ्क में 'समांसो मधुपर्को भवति, कहकर धर्मसूत्रकारों का निर्देश किया गया है। यह स्पष्टतः किसी सूत्रग्रंथ का निर्देश है।

परिशिष्ट ६

भवभूति के नाटकों के सुभाषित

१. मालतीमाधवम्

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ —१।६

बहिः सर्वाकारप्रगुणरमणीयं व्यवहरन्—
पराभ्यूहस्थानान्यपि तनुतराणि स्थगयति ।
जनं विद्वानेकः सकलमतिसन्धाय कपटै—
स्तटस्थः स्वानर्थानघटयति च मौनं च भजते ॥ —१।१५

प्रायः शुभं च विदधात्यशुभं च जन्तोः
सर्वङ्कषा भगवती भवितव्यतैव ॥ —१।२४ ग घ

व्यतिजषति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु—
र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते ।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥ —१।२५

प्रत्यक्ष सौख्यदायिनः परोक्षदुःखदुःसहाः सज्जनसमागमा भवन्ति—२।१/२

इतरेतरानुरागो हि विवाहकर्मणि पराध्यं मङ्गलम्—२।२/३

कुतो ऽपत्यस्नेहः कुटिलनयनिष्णातमनसाम् ।—२।७ ख

प्रभवति प्रायः कुमारीणां जनयिता दैवं च ।—२।७/८

कुतो वा महोदधिं वर्जयित्वा पारिजातस्योद्गम इति ।—३।३।४

शास्त्रे प्रतिष्ठा सहजश्च बोधः
प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी ।
कालानुरोधः प्रतिभानवत्व—
मेते गुणाः कामदुघाः क्रियासु ॥—३।११

वाक्प्रतिष्ठानि देहिनां व्यवहारतन्त्राणि । वाचि पुण्यापुण्यहेतवो व्यवस्थाः सर्वथा जनानामायतन्ते ॥ —४।४/५

न खलु स उपरतो यस्य वल्लभः स्मरति (णहुसोऽवरदो जस्स वल्लहो सुमरेदि ।)--५।२४/२५

शान्तिः कुतस्तस्य भुजङ्गशत्रो—
यस्मिन्निबद्धानुशया सदैव ।
जागर्ति दंशाय निशातदंष्ट्रा—
कोटिर्विषोद्गारगुरुर्भुजङ्गी ॥—६।१

माधवः—परवानस्मि साध्वसेन । मकरन्दः—इयमेव नेदीयसां प्रकृति-रभ्युदयानाम् ।—६।९/१०

प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा
सर्वे कामाः शेवधिर्जीवितं वा ।
स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसा—
मित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु ॥—६।१८

दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते ।
वहति विकलः कायो मोहं, न मुञ्चति चेतनाम् ।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः, करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥—९।१२

मातर्मातर्दलति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यंमन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धे तमसिविधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ॥--९।२०

नवेषु लोध्रप्रसवेषु कान्ति—
र्दृशः कुरङ्गेषु गतं गजेषु ।
लतासु नम्रत्वमिति प्रमथ्य
व्यक्तं विभक्ता विपिने प्रिया मे ॥—९।२७

सुहृदि गुणनिवासे प्रेयसि प्राणनाथे
कथमिव सहपांसुक्रीडनप्रौढसख्ये ।
प्रियजनविरहाधिव्याधिखेदं दधाने
हतहृदय विदीर्य त्वं द्विधा न प्रयासि ॥—९।२८

सुलभानुकारः खलु जगति वेधसो निर्माणसंनिवेशः ॥—९।२८/२९

आपूर्णश्च कलाभिरिन्दुरमलो यातश्च राहोर्मुखं
संजातश्च घनाघनो जलधरः शीर्णश्च वायोर्जवात् ।
निर्वृत्तश्च फलैग्रहिर्द्रुमवरो दग्धश्च दावाग्निना
त्वं चूडामणितां गतश्च जगतः प्राप्तश्च मृत्योर्वशम् ॥—९।३९

आ जन्मनः सह निवासितया मयैव
मातुः पयोधरपयोऽपि समं निपीय ।
त्वं पुण्डरीकमुख बन्धुतया निरस्त—
मेको निवापसलिलं पिबसीत्ययुक्तम् ॥—९।४०

प्रियस्य सुहृदो यत्र मम तत्रैव सम्भवः ।
भूयादमुष्य भूयोऽपि भूयासमनुसञ्चरः ॥—९।४१

कुमुदाकरेण शरदिन्दुचन्द्रिका
यदि रामणीयकगुणाय संगता ।
सुकृतं तदस्तु कतमस्त्वयं विधि-
र्यदकालमेघविततिर्व्ययूयुजत् ॥—९।४९

नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्नमुसलैर्वत कुट्टनानि ॥—९।५१

को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तो—
र्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे ॥—१०।१३

२. उत्तररामचरित

यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ॥ --१।५

किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति ।
सङ्कटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता ॥ —१।८

सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति ॥ —१।८/९

एते हि मर्मच्छिदः संसारभावा येभ्यो बीभत्समानाः संत्यज्य सर्वान्कामान् अरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिणः ॥ —१।८।९

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत
राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते ।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि पार्थिवानां
येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ॥--१।९

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ॥ --१।१०

युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः ॥—१।११

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः ।
तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ॥ --१।१३

कष्टं जनः कुलधनैरनुरञ्जनीयः—
स्तन्नो यदुक्तमशिवं न हि तत्क्षमं मे ।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ॥ --१।१४

जनकाणां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः ।
यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिकनन्दनः ॥ —१।१७

जीवत्सु तातपादेषु नवे दारपरिग्रहे ।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः ॥—१।१९

जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै-
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ॥ --१।२८

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेवं व्यरंसीत् ॥--१।२७

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमुमदः ।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च संमीलयति च ।। —१।३५

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु य—
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते । —१।६९

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम् ।
यत्पूरितं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता ।। —१४१

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः ।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ।। —१।४३

श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विवाकं विषद्रुमम् ।। —१।४६

सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति ।। —२।१

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ।। —२।२

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
न च खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा ।।
भवति च तयोर्भूयान् भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदां चयः ।। —२।४

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ।।—२।६

सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति ।। २।११

न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति ।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ।। —२।१९

अन्तः करणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात् ।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्य इति बध्यते ।। —३।१७

कर्त्तव्यानि खलु दुखितैर्दुःखनिर्वापणानि—
पूरोत्पीडे तडाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया ।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ।। —३।२९

एको रसः करुण एव निमित्तभेदा-
भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम् ॥ —३।४७

अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकास्तेभ्य प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यन्ते—४।३/४

सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां
दुःखानि सद्बन्धुवियोगजानि ।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि
स्रोतः सहस्रैरिव संप्लवन्ते ॥ —४।५

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः । —४।११ घ

पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति । —४।१२

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां
ये व्याहारास्तेषु मा संशयोभूत् ।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषिक्ता
नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति ॥ —४।१८

भूयसा जीविधर्म एष यद्रसमयीं कस्यचित्क्वचित्प्रीतिः, यत्र लौकिकानामुपचारस्तारामैत्रकं चक्षूराग इति । तमप्रतिसंख्येयमनिबन्धनं प्रेमाणमामनन्ति ।

अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया ।
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्मर्माणि सीव्यति ॥ —५।१७

वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते । —५।१९

मनोरथस्य यद्बीजं तद्दैवेनादितो हृतम् ।
लतायां पूर्वलूनायां प्रसवस्योद्भवः कुतः ॥ —५।२०

ऋषयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः ।
सा योनिः सर्ववैराणां सा हि लोकस्य निर्ऋतिः ॥—५।३०

कामान्दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं
कीर्तिं सूते दुष्कृतं या हिनस्ति ।
तां चाप्येतां मातरं मङ्गलानां
धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः ॥ —५।३१

वृद्धास्ते न विचारणीयचरिता—५।३५

न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति ।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ॥ —६।५

व्यतिजषति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते ।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥ —६।१२
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ॥ —६।३२

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयः । तेषाममृतसाराणि भगवतां परोरजांसि प्रज्ञानानि न क्वचिद्व्याहन्यन्त इत्यनभिशङ्कनीयानीति ॥ —७।१/२

यद्वा सर्वसाधारणो ह्येष मनसो मोहग्रन्थिरन्तश्चरश्चेतनावतामनुपप्लवः संसारतन्तुः । —७।३/४

को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तोर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे ॥ —७।४

३. महावीरचरितम्

न वसन्त्येकत्र सर्वे गुणाः । —१।३३

सर्वं प्रायो भजति विकृतिं भिद्यमाने प्रतापे ।।—२।४

अमोघमस्मं क्षत्रस्य ब्राह्मणानामनुग्रहः ।
दुरासदं च तत्तेजः क्षत्रं यद् ब्रह्मसंयुतम् ।।—२।५

नोत्सवाः परावधीरणावैरस्यमर्हन्ति ।।—२।१८/१९

सुलभद्वेषं हि वीरव्रतम् ।।—३।३

यशसि निरवकाशे विश्वतः श्वेतमाने
कथमपि वचनीयं प्राप्य यत्किञ्चिदेव ।
कृतविततिरकस्मात्प्राकृतैरुत्तमानां
विरमति न कथञ्चित्कश्मला किम्वदन्ती ।।—३।४

अज्ञो वा यदि वा विपर्ययगत ज्ञानोऽथ सन्देहभृ-
द्दृष्टादृष्टविरोधि कर्म कुरुते यस्तस्य गोप्ता गुरुः ।
निःसन्देहविपर्यये सति पुनर्ज्ञाने विरुद्धक्रियं
राजा चेत्पुरुषं न शास्ति तदयं प्राप्तः प्रजाविप्लवः।।—३।३५

लघ्वपि व्यसनपदमभियुक्तस्य कृच्छ्रसाध्यं भवति ।।—४।७/८

असाध्यमन्यथादोषं परिच्छिद्य शरीरिणः ।
यथा वैद्यस्तथा राजा शस्त्रपाणिर्भविष्यति ।।—४।२३

निसर्गतः पवित्रस्य किमन्यत्पावनं तव ।
तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ।।—४।२७

किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातंत्र्यमपकर्षति ।
संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता ।।—४।३३

अन्योन्यमाहात्म्यविदोरन्यैरविदितात्मनोः ।
विभ्राजते विरोधोऽपि नाम स्नेहे तु का कथा ।।—४।३४

शक्तिर्हि कालस्य विभोर्जराख्या शक्त्यन्तराणां प्रतिबन्धहेतुः—५।४

विषयबाहुल्यं कालविप्रकर्षश्च स्मृतिं प्रमुष्णाति ।।—५।९/१०

प्रणैरपि हिता वृत्तिरद्रोहो व्याजवर्जनम् ।
आत्मनीव प्रियाधानमेतन्मैत्रीमहाव्रतम् ।।—५।५९

पतिव्रतामयं ज्योतिः शान्तं दीपं च घुष्यते ।।—६।६

समुदायः खलु शङ्क्यते ।।—६।११/१२

महात्मानोऽपि वात्सल्यपरतन्त्राः ॥—७।२८/२९

परिशिष्ट ७

भवभूति की प्रशस्तियाँ

(१)

मान्यो जगत्यां भवभूतिरार्यः
सारस्वते वर्त्मनि सार्थवाहः ।
वाचं पताकामिव यस्य दृष्ट्वा
जनः कवीनामनुपृष्ठमेति ॥——उदयसुन्दरी

(२)

बभूव वल्मीकभवः कविः पुरा
ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः ॥—बालरामयण, १·१६

(३)

रत्नावलीपूर्वकमन्यदास्ता-
मसीमभोगस्य वचोमयस्य ।
पयोधरस्येव हिमाद्रिजायाः
परं विभूषा भवभूतिरेव ॥——सूक्तिमुक्तावली

(४)

सुबंधौ भक्तिर्नः क इह रघुकारे न रमते
धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिचन्द्रोऽपि हृदयम् ।
विशुद्धोक्तिः शूरः प्रकृतिमधुरा भारविगिरः
तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते ॥—सदुक्तिकर्णामृत

(५)

स्पष्टभाषरसा चित्रैः पादन्यासैः प्रवर्तिता ।
नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना ॥—धनपाल, तिलकमञ्जरी

(६)

सुकविद्वितयं मन्ये निखिलेऽपि महीतले ।
भवभूतिः शुकश्चायं वाल्कीकिस्त्रितयोऽनयोः ॥—भोजप्रबन्ध ५·१९१

(७)

भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ।।
—गोवर्धनाचार्य, आर्यासप्तसती

(८)

भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी ।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति ।।—क्षेमेन्द्र, सुवृत्तितिलक

(९)

भवभूतिमनादृत्य निर्माणमतिना मया ।
मुरारिपदचिन्तायामिदमाधीयते मनः ।।
—सूक्तिमुक्तावली, शार्ङ्गधरपद्धति

(१०)

भवभूइजलहिणिग्गदकव्वामयरसकणा इव फुरंति ।
जस्स विसेसा अज्ज वि वियडेसु कहाणिवेसेसु ।।
—वाक्पतिराज, गउडवहो

(११)

कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते

(१२)

उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।—विक्रमार्क

(१३)

कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः ।

(१४)

भव्यां यदि विभूतिं त्वं तात कामयसे तदा ।
भवभूतिपदे चित्तमविलम्बं निवेशय ।।

(१५)

नाटके भवभूतिर्वा वयं वा वयमेव वा ।
उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ।।

(१६)

प्राचेतसेन याऽऽनीता पालिता भवभूतिना ।
सर्वतश्चर्व्यते वाणी सैवाद्य कविमानिभिः ।।

× × ×

In Bhavabhūti brilliant thoughts occur, the justice and beauty of which cannot be surpassed in any literature.—Wilson.

Kālidāsa seems to have moved in a world of conventionalaties, while Bhavabhūti is an unsophisticated child of nature.—P. V. Kane.

He is master of style and expression, and his cleverness in adapting his words to the sentiment is unsurpassed.—Bhandarkar,

We find in fact in Bhavabhūti in a degree unknoun to Kālidāsa, child of fortune, to whom life appeared as an ordered whole, the sense of tystery of things.—A. B, Kieth.

सहायक ग्रन्थ

१. महावीरचरित—सम्पादक टोडरमल, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

२. महावीरचरित—चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

३. मालतीमाधव—सम्पादक, डा० भण्डारकर

४. मालतीमाधव—त्रिपुरारिजगद्धर टीकायुत, बम्बई

५. मालतीमाधव—चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

६. उत्तररामचरित—चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

७. उत्तररामचरित—सम्पादक, म. म. डा. पी. वी. काणे

८. उत्तररामचरित—व्याख्याकार श्री आनन्दस्वरूप गुप्त

९. उत्तरामचरित—डा० बेलवल्कर द्वारा सम्पादित तथा व्याख्यात, हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९१५

१०. उत्तररामचरित—सम्पादक, एस० राय

११. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर (क्लासिकलपीरियड)—डे तथा दासगुप्त,

१२. संस्कृत ड्रामा—ए. बी. कीथ

१३. संस्कृतसाहित्य का इतिहास—आचार्य बलदेव उपाध्याय, वाराणसी

१४. संस्कृत साहित्य का इतिहास—श्री वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

१५. संस्कृत सुकवि समीक्षा—बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

१६. स्टडीज इन इण्डोलाजी, भाग १—डा० वी. वी. मिराशी

१७. हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र—डा. पी. वी. काणे

१८. भवभूति—आर. डी. करमरकर

१९. कालिदास और भवभूति—डी. एल. राय

२०. भवभूति—एस. वी. दीक्षित

२१. काव्यमीमांसा—चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसो

२२. स्टडीज इन द ज्याग्राफी आफ एन्स्येण्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया—डा. डी. सी. सरकार

२३. संस्कृतकविजीवित—हैदराबाद

पत्रिकायें—

१. सागरिका

२. जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी

३. भारतीसुषमा

★

महा भवभूति : डॉ॰ गंगासागर राय